CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषय-प्रवेश

किसी निर्जन वन-प्रदेश की शैवालिनी की भाँति हिन्दी साहित्य की धारा अबाध रूप से अवश्य प्रवाहित होती रही, किन्तु उसके उद्गम और विस्तार पर आद्यन्त विस्तृत दृष्टि डालने का प्रयास बहुत दिनों तक नहीं हुआ। अपभ्रन्श के भग्नावशेषों को लेकर हिन्दी के निर्माण काल के समय (लगभग सं० ७००) से विक्रम की १९वीं शताब्दी के अन्त तक हिन्दी साहित्य का इतिहास बिखरी हुई रत्न-राशि के समान पड़ा रहा; उसके संग्रह करने का प्रयास किसी के द्वारा नहीं हुआ। किसी काल-विशेष के कवि के द्वारा किये गये अपने पूर्ववर्ती कवि अथवा भक्त के विषय में उल्लेख अवश्य मिलते हैं, पर वह व्यष्टि रूप से हैं, समष्टि रूप से नहीं। जायसी के द्वारा अपने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख, नाभादास के द्वारा भक्तमाल में भक्तों और कवियों का विवरण, गोकुलनाथ के द्वारा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में पुष्टि-मार्ग में दीक्षित वैष्णवों का जीवन चरित्र, कुछ लेखकों द्वारा अनेक कवियों की नामावली और काव्य संग्रह आदि हमें अवश्य प्राप्त हैं, पर इन्हें हम इतिहास नहीं कह सकते। इन कवियों का निर्देश धर्म की भावना को लेकर किया गया है, व्यक्तित्व और कवित्व को ध्यान में रखकर नहीं। इनमें साहित्य की प्रगति और विचारों की प्रवृत्ति का भी विवरण नहीं है। लल्लूदास और सदल मिश्र ने क्रमशः 'प्रेम-सागर' और 'नासिकेतोपाख्यान' में हिन्दी गद्य के स्वरूप का निर्देश करते हुए तत्कालीन गद्य साहित्य की परिस्थितियों का आभास दिया है, परन्तु वह इतिहास नहीं कहा जा सकता। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद ने भाषा के इतिहास पर एक निबंध लिखा था; परन्तु साहित्य के विकास पर नहीं। इस प्रकार १९ वीं शताब्दी तक हिन्दी का कोई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रम-बद्ध इतिहास नहीं मिलता है। कवियों के नामों का सबसे पहला संग्रह जो इतिहास के रूप का आभास मात्र है, फ्रेंच साहित्य में गार्से द तासी लिखित "इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदूई ऐं ऐंदुस्तानी" है। इसका प्रथम संस्करण दो भागों में प्रकाशित हुआ था। प्रथम भाग तथा द्वितीय भाग क्रमशः सन् १८३९ ई० तथा सन् १८४६ ई० में प्रकाशित हुये थे। इनमें अँग्रेजी वर्णमाला से हिन्दी तथा मुसलमान कवियों एवं कवियित्रियों का विवरण दिया गया है। इसमें यत्र-तत्र प्रमुख कवियों की जीवनियों के साथ उनके काव्य के उदाहरण भी दिये गये हैं।

हिन्दी का प्रथम इतिहास फ्रेंच भाषा में लिखा गया परन्तु द्वितीय श्री महेश दत्त शुक्ल द्वारा हिन्दी में लिखा गया। 'भाषा काव्य-संग्रह' नामक इतिहास में संग्रहकर्ता ने सर्वप्रथम कवियों की रचनाओं का उल्लेख किया है, तत्पश्चात् उन्हीं कवियों की जीवनी दी गई है और अन्त में कठिन शब्दों का कोष भी है। इसका प्रकाशन संवत् १९३०में नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से हुआ। इसके पश्चात् संवत् १९४० में शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह सरोज' नामक संग्रह प्रस्तुत किया। यद्यपि तासी के ग्रंथ की अपेक्षा इसमें कवियों की संख्या अधिक है; तथापि शैली में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। 'सरोज' के आधार पर सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान' की रचना की (संवत् १९४६)। काल विभाग के साथ समय-समय पर उठी हुई प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन ही पुस्तक की विशेषता है।

संवत् १९६६ तथा १९७१ में बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित 'हिन्दी कोविद रत्नमाला' के दो भाग प्रकाशित हुये। इसमें आधुनिक ८० लेखकों के जीवन चरित्र तथा कृतियों का उल्लेख है। इसमें इतिहास का कोई सूत्र नहीं है।

केवल ब्रजभाषा के २६ प्रमुख कवियों का जीनववृत्त और उनका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मधुर काव्य संकलित कर श्री वियोगी हरि ने संवत् १९८० में 'व्रजमाधुरी सार' नामक संग्रह ग्रंथ प्रस्तुत किया। इस ग्रंथ के संग्रह की प्रेरणा संग्रहकार को सर्वप्रथम गोलोकवासी पं० राधाचरण गोस्वामी से मिली थी। इस संग्रह में कोई ऐतिहासिक काव्य मीमांसा नहीं है। कवियों का काव्य संग्रह काल क्रमानुसार अवश्य किया गया है। ग्रंथ में आये हुये प्रत्येक कवि की जीवनी के आदि में नाभा जी का या उन्हीं की शैली में भा० हरिश्चन्द्र या गो० राधाचरण या स्वयं संग्रहकर्ता का छप्पय दिया गया है। कविताओं का संग्रह अत्यन्त सुरुचिपूर्ण और माधुर्य से ओतप्रोत है। वृज भाषा का काव्य वैभव इस संग्रह में पूर्णतः संचित है। संवत् १९९० में इस ग्रन्थ का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। इसमें परमानन्ददास और कुंभनदास के नाम जोड़ कर कवि संख्या २८ कर दी गई और संग्रह के दो खंड कर दिए गए। पहले खंड में सूरदास से लेकर ललित किशोरी तक और दूसरे में बिहारी, देव, हरिश्चन्द्र, रत्नाकर और सत्यनारायण कविरत्न रखे गए। पहले खंड के कवियों ने केवल कृष्ण भक्ति पर काव्य रचना की, दूसरे खंड के कवियों ने कृष्ण भक्ति के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी लिखा। इस ग्रन्थ का तृतीय संस्करण सं० १९९६ में प्रकाशित हुआ।

व्रज-माधुरी सार

हिन्दी साहित्य के इतिहास को आलोचनात्मक ढंग से समझाने का श्रेय श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी को है, जिन्होंने संवत् १९८० में 'हिन्दी साहित्य विमर्श' नामक १९६ पृष्ठ की पुस्तक लिखी। यह पुस्तक वस्तुतः उनके हिन्दी साहित्य के विकास के संबंध में लिखे गए कुछ निबन्धों का संग्रह है। प्रस्तावना में साहित्य की आत्मा और उसकी रूपरेखा पर गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि डालते हुए हिन्दी साहित्य का आदि काल, संतवाणी संग्रह, हिन्दी साहित्य और मुसलमान कवि, हिन्दी साहित्य का मध्य काल, हिन्दी काव्य और कवि कौशल, हिन्दी साहित्य

हिन्दी साहित्य विमर्श

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और पाश्चात्य विद्वान् और आधुनिक हिन्दी साहित्य विषय पर लेखक ने गंभीर अनुशीलन किया है। इन निबन्धों में साहित्य की विविध प्रवृत्तियों का पांडित्यपूर्ण विभाजन और मूल्यांकन किया गया है तथा कवियों और लेखकों के साहित्यगत व्यक्तित्व पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। पुस्तक में दोष यही है कि वह अपने विषय से संश्लिष्टात्मक नहीं है। निबन्ध यद्यपि एक क्रम से सजाये गये हैं किन्तु वे अलग-अलग हैं। लेखक ने ऐतिहासिक शैली से पुस्तक लिखी भी नहीं है। इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस प्रकार का आलोचनात्मक विवेचना एक क्रम से पहली बार किया गया।

हिन्दी

संवत् १९८२ में श्री बद्रीनाथ भट्ट ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन की रिपोर्टों, मिश्रबन्धु विनोद, शिवसिंह सरोज आदि ग्रन्थों की सहायता से ९६ पृष्ठ की हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली एक छोटी-सी पुस्तिका 'हिन्दी' नाम से लिखी। पुस्तिका की तीसरी आवृत्ति संवत् १९८८ में प्रकाशित हुई। इसमें हिन्दी भाषा और साहित्य की रूपरेखा मात्र है। मनोरंजक भाषा में साहित्य की प्रवृत्तियों और कवियों की आलोचना अवश्य है किन्तु यह आलोचना विहंगावलोकन के रूप भी है। यद्यपि इस पुस्तक से कवियों और लेखकों की अंतर्दृष्टि और उनकी क्रमागत परम्पराएँ स्पष्ट नहीं होतीं तथापि उससे हिन्दी भाषा और साहित्य की जानकारी अच्छी हो जाती है।

हिन्दी के मुसलमान कवि

संवत् १९८३ में श्री अखौरी गंगाप्रसाद सिंह ने 'हिन्दी के मुसलमान कवि' नाम ग्रंथ में १५२ मुसलमान कवियों का जीवन चरित्र और काव्य संग्रह किया। सन् १९२१ के असहयोग आंदोलन में हिन्दू मुसलमानों की एकता के फलस्वरूप पूर्व तथा वर्तमान कालीन हिन्दू मुसलमानों की साहित्यिक एकता का दिग्दर्शन कराने के निमित्त ही श्री रामनारायण मिश्र की प्रेरणा से ग्रंथ का संकलन हुआ। इस ग्रंथ की भूमिका खोज

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और अध्ययन के साथ लिखी गई है। इसमें हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक रूप-रेखा भी है। कवियों का क्रम ऐतिहासिक काल क्रम के अनुसार है। प्रारम्भ में कवि की जीवनी है, फिर उसकी कविता का अत्यन्त ललित और सुन्दर संग्रह है।

इतिहास का इतिवृत्तात्मक-लेखन सबसे पहले मिश्रबन्धुओं के 'विनोद' में पाया जाता है। 'विनोद' चार भागों में लिखा गया जिसके प्रथम तीन भाग सं० १९७० में प्रकाशित हुए और चतुर्थ भाग सं० १९९१ में प्रकाशित हुआ। इसमें कवियों के विवरणों के साथ साहित्य के विविध अंगों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। यद्यपि कवियों के काव्य की समीक्षा प्राचीन काल के आदर्शों के आधार पर की गई है, पर उसकी विवेचना में हम आधुनिक दृष्टिकोण नहीं पाते। जीवन की आलोचना, कवि का सन्देश इत्यादि के आधार पर साहित्यकारों की आलोचना नहीं की गई है, फिर भी हिन्दी के प्रथम इतिहास को विस्तारपूर्वक लिखने का श्रेय मिश्र बन्धुओं को अवश्य है।

प० रामनरेश त्रिपाठी लिखित 'कविता-कौमुदी' का प्रकाशन संवत् १९७४ में हुआ। इसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पूर्व तक के ८९ कवियों का जीवन-चरित्र उनकी कविता के साथ दिया गया है। यह न तो इतिहास ग्रंथ है और न आलोचनात्मक अध्यन, वरन् कवियों का परिचय मात्र है।

संवत् १९७५ में एडविन ग्रीव्स ने 'ए स्केच आव हिन्दी लिटरेचर' के नाम से हिन्दी साहित्य का एक इतिहास लिखा। उपर्युक्त सभी ग्रंथों के आधार पर इस ग्रंथ का प्रणयन हुआ। ग्रीव्स महोदय ने हिंदी साहित्य के इतिहास को पाँच भागों में विभाजित किया है। पुस्तक की रचना ११२ पृष्ठों में होने के कारण विषय-विवेचना अत्यन्त संक्षिप्त है। यह पुस्तक साहित्य की गति-विधि का परिचय मात्र है।

श्री एफ० ई० 'के' महोदय ने संवत् १९७७ में 'ए हिस्ट्री आव लिटरेचर' की रचना ११६ पृष्ठों में की। इसमें साहित्य की प्रगतियों के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृष्टिकोण से इतिहास की रूप रेखा निर्धारित की गई है। यह भी साहित्य का परिचय मात्र है।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्पादित 'शब्दसागर' की आठवीं जिल्द में हिन्दी साहित्य के इतिहास की यथेष्ट रूप से परिष्कृत रूप-रेखा दृष्टिगोचर होती है। इसके लेखक पं० रामचन्द्र शुक्ल थे। उसी सामग्री का प्रयोग करके शुक्ल जी ने सविस्तार हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा। इसमें कवियों की संख्या की अपेक्षा उनके महत्व पर विशेष ध्यान दिया गया। इतिहास के साथ इसमें समालोचना और आधुनिक दृष्टिकोण से कवियों का निरूपण किया गया है। काव्य-धाराओं का विवेचन जैसा इसमें है, वैसा अन्यत्र नहीं।

एक वर्ष बाद सं० १९८७ में (श्री पश्चात् डा०) श्यामसुन्दर दास का 'हिन्दी भाषा और साहित्य' ग्रन्थ लिखा गया। इसका 'भाषा' भाग बाबू साहब लिखित 'भाषा-विज्ञान' पुस्तक का एक परिवर्तित भाग मात्र है। 'साहित्य' भाग में हिन्दी की प्रमुख धाराओं, उनके विकास और विस्तार का निरूपण किया गया है। संवत् २००१ में इसका संशोधित संस्करण 'हिन्दी साहित्य' के नाम से प्रकाशित हुआ।

इसी समय पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने बाबू रामदीन सिंह रीडर-शिप के सम्बन्ध में पटना विश्वविद्यालय में "हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास" विषय पर व्याख्यान दिये। इसमें भाषा और साहित्य पर पांडित्यपूर्ण आलोचना की गई और इतिहास का विकास भी अच्छी तरह से दिया गया है। कविता के उदाहरण अत्यन्त सुरुचिपूर्ण और मनोरम हैं।

सं० १९८७ में सूर्यकान्त शास्त्री ने 'हिन्दी साहाय का विवेचनात्मक इतिहास' लिखा। प्रस्तुत इतिहास में लेखक ने अँगरेजी साहित्य के भावों का प्रमाण देते हुए हिन्दी साहित्य को समझाने का प्रयत्न किया है जो असंगत-सा लगता है। साहित्य की विवेचना के साथ उन्होंने अपनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भाषा में गद्यकाव्य की छटा भी छिटका दी है जो सम्भवतः इतिहास के विषय के अनुपयुक्त है।

संवत् १९८८ में श्री (अब डा०) रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने एक बहुत बड़ा हिंदी का इतिहास लिखा। इसमें साहित्य की सभी ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डाला गया है।

संवत् १९९१ में श्री कृष्ण शंकर शुक्ल का 'आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास' प्रकाशित हुआ। इसमें आधुनिक काल का इतिहास विस्तार सहित दिया गया है, परन्तु ग्रंथकार की अपनी कोई धारणा नहीं है। उसने प्रत्येक कवि के विषय में ज्ञातव्य बातों का उल्लेख अवश्य कर दिया है।

मार्डन हिन्दी लिटरेचर

संवत् १९९६ में डा० इन्द्रनाथ मदन ने अँग्रेजी में 'माडर्न हिंदी लिटरेचर' नाम का ग्रन्थ लिखा। यह पंजाब यूनीवर्सिटी में पी० एच० डी० के लिए स्वीकृत थीसिस है। इसमें आधुनिक हिंदी साहित्य का एक संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। विषय विवेचन वैज्ञानिक दृष्टिकोण युक्त है, किंतु ग्रन्थ के अंतर्गत अनेक प्रयोगों को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से अनुचित महत्व दिया गया है। अँग्रेजी के पाठकों के लिए ग्रन्थ की उपादेयता अस्वीकृत नहीं की जा सकती।

राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा

संवत् १९९६ में पं० मोतीलाल मेनारिया, एम० ए० ने 'राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा' ग्रन्थ प्रस्तुत किया। इसमें राजस्थानी भाषा, साहित्य तथा कवियों का विवेचनात्मक परिचय है। वस्तुतः डिंगल को हिंदी की एक शैली ही माननी चाहिए। यदि हिंदी साहित्य के चारण काल में हम डिंगल की कृतियों का समावेश करते हैं तो कोई कारण नहीं कि आगे के साहित्य में भी हम उनका समावेश क्यों न करें। इस दृष्टि से राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा को हमें हिंदी साहित्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के इतिहास के अंतर्गत ही मानना चाहिए। इस ग्रन्थ में लेखक ने राजस्थान के डिंगल और पिंगल दोनों के बहुत प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों को चुना है। यह चुनाव काव्योत्कर्ष, भाषा-शास्त्र और इतिहास की दृष्टि से ही हुआ है। राजस्थानी साहित्य के प्राचीनकाल से लेकर आज तक के इतिहास का यह पहला व्यवस्थित और क्रमबद्ध रूप है। पुस्तक अध्ययन और खोज के साथ लिखी गई है। परिशिष्ट में फुटकर कवियों की कविता के उदाहरण दिये गए हैं।

जैन इतिहास की पूर्व पीठिका और हमारा अभ्युत्थान

संवत् १९९६ में 'जैन इतिहास की पूर्व पीठिका और हमारा अभ्युत्थान' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसके लेखक प्रो० (अब डाक्टर) हीरालाल जैन हैं। पुरातत्व निबंधावली के निबंधों की भाँति इसके विविध अध्याय भी पत्र-पत्रिकाओं और सभा-पत्रों द्वारा जनता तक पहुँच चुके थे। समाज पर इनका प्रभाव अधिक पड़ने की दृष्टि से ही वे अध्याय इस व्यवस्थित और स्थायी रूप में प्रकाशित किये गये। हमारे इतिहास के आदि काल में डा० जैन की यह सामग्री लाभप्रद सिद्ध होगी।

खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास

संवत् १९९८ में श्री ब्रजरत्नदास ने 'खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ लिखा। इसमें राष्ट्र-भाषा हिंदी खड़ी बोली को तथा उसमें प्राप्त साहित्य को लेकर ही ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विषय विवेचन किया गया है। अभी तक के इतिहासों में ब्रजभाषा, अवधी, डिंगल आदि ही के साहित्य का विशेष रूप से विवरण दिया गया है, खड़ी बोली हिंदी अर्थात् राष्ट्र भाषा की ओर ध्यान भी नहीं दिया गया है। स्व० लाला भगवानदीन जी के काशी साहित्य विद्यालय के एक वार्षिक अधिवेशन में स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्द जी ने भी कहा था कि हिंदी में प्राचीन साहित्य ही कहाँ है, ब्रजभाषा अवधी का साहित्य हिंदी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का साहित्य नहीं है। पुस्तक अपने दृष्टिकोण से हिन्दी में प्रथम है और इससे खड़ी बोली साहित्य के विकास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अत्यक्ष डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, डी० लिट० के निर्देशन में हिन्दी साहित्य के इतिहास पर विशेष कार्य हुआ। सम्वत् १९९८ में डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय एम० ए०, डी० फिल० ने 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें सन् १८५० से १९०० ई० तक के साहित्यिक विकास पर अत्यन्त खोजपूर्ण अध्ययन है। यह पुस्तक डा० वार्ष्णेय के अँग्रेजी में लिखे हुए मूल थीसिस का हिन्दी में संक्षिप्त रूपान्तर है जिस पर उन्हें प्रयाग विश्वविद्यालय ने डी० फिल्० की उपाधि प्रदान की। इस उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्ध के हिन्दी साहित्य के इतिहास में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए विषयों की नवीनता और अनेकरूपता की ओर संकेत किया गया है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य

संवत् १९९९ में डा० श्रीकृष्णलाल एम० ए०, डी फिल्० ने डा० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, डी०, लिट्० के निर्देशन में 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' ग्रन्थ प्रस्तुत किया। यह डी० फिल्० के लिए स्वीकृत उनकी थीसिस 'दि डेवलपमेंट आव् हिन्दी लिटरेचर इन दि फर्स्ट क्वार्टर आव् दि ट्वेंटिएथ सेंचुरी' का रूपान्तर है। अविकल होते हुए भी इस रूपान्तर में कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन भी हुआ है। यह अध्ययन सन् १९०० से १९२५ ई० तक के साहित्य के विकास पर अत्यन्त स्पष्ट प्रकाश डालता है। पहली बार वर्तमान हिन्दी साहित्य के विकास का ऐसा सूक्ष्म, निष्पक्ष तथा आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन को वर्तमान हिन्दी साहित्य की दिशा, कविता, गद्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध और समालोचना तथा

आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपसंहार के अन्तर्गत उपयोगी साहित्य, पत्र-पत्रिकाएँ, गम्भीर साहित्य में विभाजित कर अत्यन्त विश्लेषणात्मक शैली में लेखक ने अपने ग्रन्थ में सुसज्जित किया है।

हमारे इतिहास की विशेषताएँ

हमारे साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता दर्शन और धर्म के उच्च आदर्श के रूप में है। हृदय को परिष्कृत करने के साथ ही जीवन को पवित्र और सदाचारानुमोदित बनाने में हमारे साहित्य का बहुत बड़ा हाथ है, यों तो हिन्दू जीवन में दर्शन और धर्म में पार्थक्य नहीं है। हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में यह बात और भी स्पष्ट है। दर्शन ही धर्म का निर्माण करता है और धर्म ही दर्शन के लिए जीवन की पवित्रता प्रस्तुत करता है। इस प्रकार दर्शन और धर्म हमारे साहित्य के निर्माता हैं। दर्शन की जटिल विचारावली का प्रवेश तो हमारे साहित्य में संस्कृत से हुआ और धर्म की भावना का प्राधान्य राजनीतिक परिस्थितियों से हुआ। एक बार धर्म की भावना के जाग्रत होते ही दर्शन के लिए एक उर्वर क्षेत्र मिल गया और हमारे धार्मिक काल की कविता भक्ति की आह्लादकारिणी भावना लिए अवतरित हुई। तुलसी और मीराँ की कविता ने हमारे साहित्य को कितना गौरवान्वित किया, यह समय ने प्रमाणित कर दिया है। धर्म का शासन इतने प्रधान रूप से हम साहित्य में देखते हैं कि रीतिकाल में भी भाषा को माँजने वाले कवि धर्म के वातावरण की अवहेलना नहीं कर सके। नायक-नायिका भेद, नख-शिख आदि में श्री राधाकृष्ण की अनेक शृंगार चेष्टाएँ पार्थिवता के बहुत समीप होते हुए भी प्रदर्शित हुईं। धर्म के आलोचकों ने राधा-कृष्ण के इस सम्बन्ध को आत्मा और परमात्मा के मिलन का रहस्यवाद-मय रूप दिया है, यद्यपि जीवन की भौतिकता का निरूपण इतने नग्नरूप में है कि ऐसा मानने में हमें संकोच है। जो हो, धर्म का अधिकारपूर्ण प्रभाव साहित्य में स्पष्टतया देखते हैं। आजकल भी व्रजभाषा कविता के आदर्श वही राधाकृष्ण हैं। इस प्रकार चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमारे साहित्य ने दर्शन और धर्म की भावना का संचित कोष प्रकारांतर से हमारे सामने रक्खा है, यही उसकी प्रमुख विशेषता है।

साहित्य का महत्त्व

हमारे साहित्य ने इतिहास की बहुत रक्षा की है। चारणों के रासो और ख्यातों ने तथा राजाओं द्वारा सम्मानित राजकवियों के ऐतिहासिक काव्यों ने साहित्य के सौन्दर्य के साथ इतिहास की सामग्री भी सञ्चित कर रक्खी है। टाड का राजस्थान के लेखन में चारणों की रचनाओं से बहुत सहायता मिलती है।

इतिहास लेखन में कठिनाइयाँ

हिन्दी साहित्य में अभी तक ऐसे बहुत से स्थल हैं, जिनके निर्धारण में शंका की जाती है। गोरखनाथ का समय, जटमल का गद्य, सूरदास जी की जन्मतिथि, कबीर का चरित्र आदि विषयों पर अभी तक मत निश्चित नहीं हो पाया। उसके दो कारण हैं। एक तो हमारे यहाँ इतिहास-लेखन की प्रथा ही नहीं थी। यदि घटनाओं और व्यक्तियों पर कुछ लिखा भी गया तो उनकी तिथि आदि के विषय में कोई महत्व नहीं दिया जाता था। भक्तमाल, वार्त्ता आदि में यद्यपि भक्तों और कवियों के चरित्र वर्णित हैं, पर उनमें तिथियों का किंचित् भी निर्देश नहीं है। दूसरे, कवियों ने स्वयं अपने विषय में भी कुछ नहीं लिखा। वे या तो आवश्यकता से अधिक नम्र थे, या अपने सांसारिक जीवन को तुच्छ समझ कर पारलौकिक सत्ता पर दृष्टि गड़ाए हुए थे। 'कवित विवेक एक नहिं मोरे' अथवा 'हौं प्रभु सब पतितन को टीकौ' कह कर वे अपनी हीनता वर्णित करते थे। राष्ट्र निर्माण की भावना अथवा सम्मिलित सङ्गठन का दृष्टिकोण तो हमारे कवियों के सामने था ही नहीं। प्रत्येक कवि व्यक्तित्व की परिधि में सीमित होकर परमात्मा की प्रार्थना में ही अपने को भुला देना चाहता था। इसीलिए केशवदास के पूर्व तक किसी कवि ने अपना यथेष्ट परिचय नहीं दिया। यह बात दूसरी है कि कवि ने ग्लानि अथवा अपनी हीनता के प्रदर्शन में अज्ञात रूप से अपने जीवन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की घटनाओं का निर्देश कर दिया हो। तुलसीदास ने ही अपने जीवन की घटनाओं का वर्णन अपनी आत्मग्लानि के वशीभूत होकर किया है। रीतिकाल में न तो कार्य की भावना ही प्रबल रह गई थी और न आत्मग्लानि से व्यक्तित्व ही क्षुद्र रह गया था। शृङ्गार और शृङ्गारजनित जागृति ने प्रत्येक कवि को विलासी नहीं तो भावुक तो अवश्य बना दिया था। इसी कारण रीतिकाल में हमें कवियों का यथेष्ट-परिचय मिलता है। केशवदास जो धार्मिक काल की सन्ध्या में देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति उदित होते हैं, अपना परिचय देते हैं। भिखारीदास तो अपने काव्य निर्णय में काव्यकौशल के द्वारा चमत्कारपूर्ण परिचय देने में व्यग्र जान पड़ते हैं। कवियों का पूर्ण परिचय न पाने के कारण हमें इतिहास में कहीं लगभग का सहारा लेना पड़ता है, कहीं वाह्य साक्ष्य का। कहीं हम किसी ऐतिहासिक घटना के आधार पर कवि का जीवन जानने की चेष्टा करते हैं, कहीं उसकी कविता के उद्धरण अथवा भाषा के विकास के सहारे उससे परिचय प्राप्त करते हैं। किन्तु ऐसे आधार का आश्रय लेने पर हमें कवि-विशेष के जीवन की एक दो घटनाएँ ही मिलती हैं। उनमें भी कुछ न कुछ सन्देह बना ही रहता है। तिथियों को निश्चयात्मक रूप से न जान सकने के कारण हमें साहित्य के काल-विभाजन में भी कठिनाई पड़ती है। ऐसी परिस्थितियों में भाषा तथा शैली में परिवर्तन, धार्मिक दृष्टिकोण से भेद अथवा राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर ही काल विभाजन की रेखा खींचनी पड़ती है। कवियों का अपना परिचय देने का संकोच हमारे सामने उनका अक्षम्य अपराध समझा जाना चाहिए।

हिन्दी साहित्य का इतिहास अपने प्रारम्भ से ही उन समस्त सांस्कृतिक परम्पराओं से ओतप्रोत रहा है जो हिन्दी के जन्म के पूर्व ही अखिल भारतीय रूप में प्रचलित रहीं। संस्कृत साहित्य में वैदिक धर्म की बहुमुखी प्रवृत्तियाँ शताब्दियों तक लोकमत का शासन करती रहीं। वैदिक धर्म के कर्म कांड की प्रतिक्रिया ने बौद्ध धर्म को प्रचारित होने का अवसर दिया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और यह बौद्ध धर्म न केवल राजनीतिक केन्द्रों में शासक वर्गों की रुचि का विषय रहा प्रत्युत जनता के विश्वास का मेरुदण्ड बन गया। वैदिक धर्म का शास्त्रीय विवेचना जहाँ एक ओर आचार्यों की बुद्धि-वैभव बन कर रही, वहाँ बौद्ध धर्म की महायान शाखा जनता की मनोवृत्तियों में परिव्याप्त होकर उनके जीवन के समानान्तर प्रवाहित होती रही। वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म में समय-समय पर संघर्ष होते रहे और जब शंकर और कुमारिल आदि आचार्यों की प्रतिभा से वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ तब भी बौद्ध धर्म के प्रभाव से चले हुए सम्प्रदाय जनता को अपनी ओर आकर्षित करते ही रहे।

आठवीं शताब्दी में भी बौद्ध धर्म की महायान शाखा जिसने जनता में वर्ग-भेद को हटा कर धर्म की साधना का मार्ग अत्यन्त सुगम कर दिया था, आकर्षण का केन्द्र बनी ही रही। यह महायान शाखा आगे चल कर अनेक सम्प्रदायों में विभाजित हो गई जिनमें वज्रयान और सहजयान सम्प्रदाय प्रमुख थे। जनता की सहानुभूति प्राप्त कर ये स्वाभाविक और सरल साधना के सम्प्रदाय पुष्ट होते रहे। ईसा की पहली शताब्दी से प्रारम्भ होकर महायान सम्प्रदाय ने अपने सात-आठ सौ वर्षों की यात्रा में जनता के हृदय में काफी गहरा स्थान बना लिया और वह विविध रूपों में परिवर्तित होकर लोक रुचि के अत्यन्त समीप आ गया। जब वैदिक धर्म में शैव सम्प्रदाय को प्रमुखता प्राप्त हुई तब भी बौद्ध धर्म के संस्कार शैव सम्प्रदाय से प्रभावित होकर नाथ सम्प्रदाय के रूप में प्रतिफलित हुए। इस प्रकार बौद्ध और शैव साधनाओं के संयोग से नाथपंथी साधनाओं का एक नया सम्प्रदाय चला।

बौद्ध धर्म के समानान्तर ही जैन धर्म चलता रहा, यद्यपि जैन धर्म का विकास उतनी व्यापकता से नहीं हुआ जितना बौद्ध धर्म का।

इस प्रकार यह स्पष्टतः देखा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रारम्भ होने के पूर्व ही बौद्ध धर्म और जैन धर्म की प्रवृत्तियाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और उनके संस्कार जनता के हृदय पर विशेष रूप से अंकित थे और जब हिन्दी का विकास अपनी पूर्ववर्ती अपभ्रंश की स्थिति से हुआ तो इन्हीं धार्मिक संस्कारों से हमारे साहित्य का निर्माण हुआ। फलस्वरूप सिद्धों द्वारा प्रचारित बौद्ध धर्म के वज्रयान और सहजयान सम्प्रदाय की तथा जैन आचार्यों द्वारा प्रचारित जैन धर्म के दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय की रूप-रेखा साहित्य में देखने को मिलती है।

यों तो इस देश में मुसलमानों का आगमन ईसा की सातवीं शताब्दी से ही हो गया था किन्तु देश की विचारधारा पर उनके व्यक्तित्व का प्रभाव ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्व नहीं पड़ सका।

साहित्य का विस्तार

हिन्दी साहित्य का विस्तार अनेक बोलियों में पाया जाता है। उन बोलियों में साहित्य का निर्माण होने के कारण उनके रूप अभी तक वर्तमान हैं और साहित्य के साथ जीवित हैं। भंडारकर के अनुसार हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं। राजस्थान में प्रयुक्त बहुत-सी बोलियों में दो प्रधान हैं। मेवाड़ी और उसके समीपवर्ती भागों में बोली जाने वाली मारवाड़ी। इन दोनों बोलियों की भौगोलिक स्थिति से यह तो जाना जा सकता है कि वे गुजराती और ब्रजभाषा के बीच की बोलियाँ हैं जिनमें दोनों भाषाओं की विशेषताएँ हैं। उत्तर में ब्रजभाषा है जो मथुरा के समीप बोली जाती है। पूर्व में कन्नौजी है। दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता और बल्लभी सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों की भाषा जो ब्रज मानी जाती है, कन्नोजी व्याकरण के रूप भी रखती है। सुदूर उत्तर में गढ़वाली और कुमायूँनी है जो गढ़वाल और कुमायूँ में बोली जाती है। पूरब में अयोध्या की बोली अवधी है और दक्षिण में बुन्देली और बघेली। सुदूर पूर्व में भोजपुरी तथा बिहार और बङ्गाल की सीमा पर प्रचलित मैथिली तथा अन्य बोलियाँ हैं। डिंगल, राजस्थानी, पिंगल, ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली और खड़ी बोली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में साहित्य की रचना हुई। वस्तुतः इस समस्त साहित्य का नाम हिन्दी साहित्य दिया जाना चाहिये। हिन्दी की भिन्न-भिन्न बोलियों में साहित्य का निर्माण होने तथा जन समाज को व्यापक और शतरूपा वृत्ति का प्रदर्शन करने के कारण हिन्दी साहित्य का दृष्टिकोण विस्तृत है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जीवन का सबसे अधिक स्पर्श करने वाले शृङ्गार और शान्त रस का परमोत्कृष्ट और विस्तृत निरूपण होने के कारण भी हिन्दी साहित्य विश्वजनीन भावनाओं को लिये हुये है।

इन बोलियों के आधार पर जिस प्रकार साहित्य रचना हुई है, उस पर संक्षेप में विचार करना उचित होगा।

सिद्ध युग का साहित्य

हिन्दी का प्रारम्भ मगही भाषा में उन सिद्धों की कविता में हुआ जिन्होंने बौद्ध धर्म के वज्रयान सिद्धान्त का प्रचार आठवीं शताब्दी से करना प्रारम्भ किया है। ये सिद्ध संख्या में चौरासी माने गये हैं। इन्होंने किसी साहित्य भाषा को न लेकर जन साधारण की भाषा ही में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। इस भाषा के नमूने साहित्य में सुरक्षित नहीं हैं। इनका अनुवाद भोटिया में हुआ है और ये कविताएँ तिब्बत के स स्क्य विहार के पाँच प्रधान गुरुओं की ग्रन्थावली 'स स्क्य ब्कं बुम्' में है।

पुरानी हिन्दी का साहित्य

अपभ्रंश की विकसित अवस्था जब हिन्दी का रूप ले रही थी उस समय जैन आचार्यों ने अपने धार्मिक सिद्धांत इस अपभ्रंश से निकलती हुई भाषा में प्रारम्भ कर दिये थे। यद्यपि इस भाषा में जैन धर्म के सिद्धांत ही लिखे गए हैं पर भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हमें इसमें अपनी भाषा के विकास की सामग्री पर्याप्त मात्रा में मिल सकती है। जैन धर्म के दिगम्बर सम्प्रदाय ने हिन्दी में अपने धर्म के प्रचार की चेष्टा भी की। श्वेताम्बर सम्प्रदाय ने तो अधिकतर गुजराती भाषा का ही आश्रय ग्रहण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया। जैन धर्म के प्रचार पर अधिक ध्यान रहने के कारण कोई भी जैनी उत्कृष्ट कवि नहीं हुआ। उसे अपने सिद्धांतों को दुहराने से अवकाश ही नहीं मिलता था जिससे वह काव्य के अंग पर विचार करे।

राजस्थानी का साहित्य डिंगल

नागर अपभ्रन्श से प्रभावित राजस्थान की बोली साहित्यिक रूप में डिंगल के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसमें बीसलदेव रासो सबसे प्रथम गीति-ग्रन्थ है जो नरपति द्वारा सं० १२१२ में लिखा गया। इसके बाद तो बहुत से प्रबन्ध काव्य और वर्णनात्मक काव्य लिखे गये जिनमें पृथ्वीराज रासो का भी नाम लिया जाता है, यद्यपि इसके प्रामाणिक होने में अभी हिन्दी के विद्वानों को सन्देह है। इस साहित्य में पृथ्वीराज राठौर का भी नाम सम्मान सहित है जिन्होंने 'बेलि क्रिसन रुकमिणी री' की रचना की। इस साहित्य की रचना अधिकतर चारणों द्वारा हुई। अतएव इसमें वीर और रौद्र रस की प्रधानता है। यद्यपि इस साहित्य में भाषा का अधिक सौन्दर्य नहीं है, तथापि भावों का वर्णन स्वाभाविक और उत्कृष्ट है। इस साहित्य से हमारे देश के इतिहास की भी यथेष्ट रक्षा हुई है।

ब्रजभाषा का साहित्य पिंगल

शौरसेनी अपभ्रश से उत्पन्न ब्रज बोली में साहित्य की रचना विक्रम की बारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुई। उस समय इसका नाम पिंगल था। यह राजस्थानी साहित्य डिंगल के समान मध्यदेश की साहित्यिक रचना का नाम था। इस साहित्य का विस्तार हिन्दी की अन्य बोलियों के साहित्य के विस्तार से अधिक रहा। सोलहवीं शताब्दी में कृष्ण पूजा का आश्रय पाकर इस साहित्य ने बहुत उन्नति की। सूरदास, नन्ददास, सीताराम, अष्टछाप के अन्य कवि, सेनापति, बिहारी, चिन्तामणि, रसखान, देव, घनानन्द, पद्माकर तथा रीतिकाल के समस्त कवि इसी साहित्य की श्रीवृद्धि करते रहे। भारतेन्दु ने खड़ी बोली का उद्धार करते हुए भी काव्य की भाषा ब्रजभाषा ही रखी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवधी साहित्य का सब से प्रथम प्रदर्शन आख्यानक कवियों ने अपनी प्रेम-गाथाओं में किया। उन्होंने अर्ध मागधी प्राकृत के विकसित रूप में अवधी भाषा को अपने साहित्य-निर्माण का साधन बनाया। इन प्रेमाख्यानक कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी प्रमुख थे। उन्होंने अवधी का सरल और साधारण रूप ही रक्खा है, जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का स्थान नहीं के बराबर है। इस प्रेम-काव्य की धारा के बाद अवधी का प्रयोग राम साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास ने किया। तुलसीदास की सर्वोत्तम कृति मानस की रचना इसी भाषा में हुई। इसमें सन्देह नहीं कि तुलसी ने अवधी को परिष्कृत कर उसे संस्कृतमय कर दिया है तथापि भाषा का यह गौरव क्या कम है कि उस समय की काव्य परम्परा में प्रचलित व्रजभाषा की उपेक्षा कर तुलसी ने अपनी मौलिकता अवधी में दिखलाई। अवधी के व्रजभाषा के समान साहित्यक रूप देने का श्रेय तुलसीदास जी ही को है।

अवधी का साहित्य

व्रजभाषा के साहित्यिक महत्व के कारण यद्यपि अन्य बोलियों का विकास साहित्य-रचना के लिए रुक-सा गया, तथापि बुन्देलखंडी भाषा ने कुछ अंशों में अपने अस्तित्व की रक्षा अवश्य की। सबसे प्रथम रचना जगनिक के द्वारा आल्हखंड की हुई। आल्हखण्ड का साहित्यिक रूप अप्राप्य है, वह जनता के कंठ की वस्तु है। यही कारण है कि अभी तक उसका प्रामाणिक पाठ नहीं मिल सका। भाषा के क्रमिक विकास और परिवर्तन के कारण उसमें भी परिवर्तन होता रहा। उसका मूलरूप क्या था, यह जानना भी अब कठिन है। आल्हखण्ड में व्रजभाषा के कलेवर में बुन्देलखंडी भाषा बैठी हुई है।

बुन्देलखंडी का साहित्य

पंद्रहवीं शताब्दी में विद्यापति ठाकुर ने मैथिली साहित्य में अपनी फ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पदावली की रचना की। बिहारी भाषा के अन्तर्गत मैथिली बोली ही ऐसी है जिसमें साहित्य रचना हुई है। यद्यपि मैथिली को मागधी अपभ्रंश से निकलने के कारण हिन्दी के अंतर्गत मानने में आपत्ति हो सकती है, पर शब्द भंडार की व्यापकता और हिन्दी से मैथिली का अधिक साम्य होने के कारण वह हिन्दी की एक शाखा ही मान ली गई है। इसीलिए विद्यापति की कविता हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत मानी जाती है।

मैथिली का साहित्य

खड़ी बोली दिल्ली, मेरठ आदि स्थानों के जनसमुदाय की बोली रही है जो समय-समय पर साहित्य में प्रयुक्त हुई। खड़ी बोली में प्रथम लिखने वाले अमीर खुसरो हुए, जिन्होंने अपनी पहेलियों, मुकरियों आदि में इस भाषा का प्रयोग किया। यद्यपि ब्रजभाषा को ही उन्होंने विशेष रूप से प्रश्रय दिया, पर उन्होंने खड़ी बोली को भी उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा। 'एक नार ने अचरज किया' कहकर वे उस समय की बोली में कविता कर हमें भी अचरज में डाल देते हैं। कबीर ने भी फारसी शब्दों के मेल से अपने समय की खड़ी बोली में कविता की 'हमारा यार है हम में हमन को इन्तजारी क्या' लिखकर वे जनसमुदाय की भाषा के बहुत निकट आ गए हैं। यद्यपि ब्रजभाषा के महत्व के कारण खड़ी बोली का प्रचार न हो सका, तथापि समय-समय पर साहित्य में उसके चिह्न अवश्य मिलते रहे। मुसलमानों ने भी इस बोली का आधार लेकर उसमें फारसी शब्द मिला कर अपने उर्दू साहित्य की सृष्टि की। आश्चर्य तो इस बात का है कि यह बोली उत्तर की होती हुई भी दक्षिण में पल्लवित हुई और वहाँ से भारत के अन्य स्थानों में फैली। ब्रजभाषा के क्षेत्र से निकल कर लल्लूलाल आदि ने पहले गद्य रूप में इस खड़ी बोली का प्रचार किया। बाद में हरिश्चन्द्र ने इसकी बहुत उन्नति की। यद्यपि उन्होंने भी इसे पद्य का रूप नहीं दिया, पर उनकी

खड़ी बोली का साहित्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कविता पर इसका प्रभाव दीख पड़ने लगा था। महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय में इसने विशेष उन्नति की तथा श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त जैसे उत्कृष्ट कवि इस भाषा में हुए। अब तो खड़ी बोली ही गद्य और पद्य की भाषा है।

अँगरेजी साहित्य के प्रभाव ने हिन्दी साहित्य को अनेक दिशाओं में विकसित होने की प्रेरणा दी। कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना तथा उपयोगी साहित्य की रचना में अद्भुत प्रगतिशीलता आ गई। कविता में वस्तुवाद की छाया तथा जीवन के संघर्षों का चित्रण हिंदी काव्य का विषय बना। साथ ही मध्य युग से चली आने वाली काव्य की परम्परा ने लोकोत्तर भावनाओं में रहस्य और संकेत के रूपकों की भी रक्षा की। अतः हिन्दी काव्य का विकास एक ओर तो अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को साथ लिए रहा और दूसरी ओर जीवन में घटित होने वाली अनेक समस्याओं और उनके हल खोजने में सचेष्ट रहा। इसके साथ ही इंडियन नेशनल कांग्रेस ने जो स्वतन्त्रता का सन्देश समस्त भारत में फैलाया उससे अनुप्राणित होकर कवियों ने देश प्रेम और राष्ट्रीयता से ओतप्रोत कविताओं की रचना की।

हिंदी कविता के विकास में प्रमुखतः तीन परिस्थितियाँ देखने में आती हैं। पहली परिस्थिति पूर्णतः वर्णनात्मक है, दूसरी परिस्थिति रहस्यात्मक और तीसरी परिस्थिति वस्तुरूपात्मक और प्रगतिशील है। वर्णनात्मक कविता अधिकतर धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक इतिवृत्तों में सीमित रही। ऋतु वर्णन, प्राकृतिक दृश्य और वीर-पूजा इन रचनाओं के विषय रहे। श्री मुकुटधर पांडेय, श्री मैथिलीशरणगुप्त और श्री रामचरित उपाध्याय इस क्षेत्र में विशेष प्रमुख थे। रहस्यात्मक कविताओं के दो प्रमुख आधार थे। प्रथम आधार तो उपनिषद् की विचार-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धारा से निकली हुई परम्परा रही जिसमें कबीर और मीरा आदि का नाम आता है और दूसरा आधार अँगरेजों के युगांतरकालीन कवि शैली, कीट्स, बाइरन और वर्डस्वर्थ की रचनाएँ तथा विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की काव्य पुस्तकें थीं। इस क्षेत्र में श्री जयशंकर प्रसाद, श्री सुमित्रानंदन पंत, श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और श्री महादेवी वर्मा के नाम विशेष महत्वपूर्ण हैं। वस्तुरूपात्मक रचनाओं ने जीवन की नग्न और विषय परिस्थितियों का विशेष चित्रण किया। किसान और मजदूर इस प्रकार की रचनाओं के प्रमुख विषय रहे। उनकी हृदयद्रावक परिस्थितियो के तथा पूँजीपति और शोषक वर्ग के कुम्भकर्णों की क्रूरता के अनेक चित्र इन रचनाओं में मिलते हैं। इस प्रकार की रचनाओं में वेग और आक्रोश है और इस स्वतंत्रत और अमर्यादित दृष्टिकोण के कारण काव्य की अनेक मान्यताओं की अवहेलना भी उसमें देखी जाती है। ऐसे कवियों में 'सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री बच्चन, श्री नरेन्द्र प्रमुख हैं।

नाटक के क्षेत्र में सर्वश्री माधव शुक्ल, बद्रीनाथ भट्ट, गोविन्द-वल्लभ पंत, माखनलाल चतुर्वेदी और बल्देवप्रसाद मिश्र ने विशेष रचनाएँ की; किन्तु इनके नाटकों में घटनाओं की कुतूहलता होते हुए भी चरित्रों का अंतर्द्वंद्व और परिस्थितियों का संघर्ष नहीं था। यह अभाव श्री जयशंकर प्रसाद ने पूर्ण किया। उन्होंने अनेक ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर हर्षवर्धन के ऐतिहासिक, राज-नीतिक, सामाजिक और दार्शनिक आदर्शों पर उन्होंने अपने विविध नाटकों की रचना की। उन्होंने अपने पाठकों में परिस्थितियों की स्पष्ट रूपरेखा और चरित्रों के आंतरिक संघर्षों की संवेदना अत्यन्त कुशलता से स्पष्ट की। उनसे मार्ग दर्शन पाकर सर्वश्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी और सेठ गोविन्ददास ने अनेक नाटकों की रचना की।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन नाटकों के साथ ही साथ एकांकी नाटकों की रचना भी पश्चिमी साहित्य के दिशा संकेत से हुई। इन नाटकों में चारित्रिक द्वन्द्व विशेष रूप से स्पष्ट हुआ है, साथ ही सामाजिक समस्याओं का हल भी खोजा गया है। ऐसे नाटककारों में सर्वश्री उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशङ्कर भट्ट, गणेश प्रसाद द्विवेदी, सेठ गोविन्ददास और भुवनेश्वर प्रमुख हैं। श्री सुमित्रानन्दन पंत ने ज्योत्सना नाम से एक प्रतीक नाटक लिखा है जिसमें प्रकृति के विविध विधानों के सहारे भविष्य के मानव समाज के विकास की अत्यन्त विशद कल्पना की गई है। हिन्दी में यह नाटक अपने ढङ्ग का अकेला है।

उपन्यास और कहानियों के क्षेत्र में जीवन की मनोविज्ञानक स्थितियाँ अनेक रूपों में प्रस्तुत की गई हैं। देवकीनन्दन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी केवल आश्चर्यजनक और चमत्कारपूर्ण घटनाओं की एक काल्पनिक कथा शैली दे सके थे। मुन्शी प्रेमचन्द ने जीवन के वास्तविक चरित्रों को घटनाओं की विषमताओं से संघर्ष करते हुए चित्रित किया। उन्होंने हमारे देश के ग्रामीण जीवन का जैसा रूप उपस्थित किया है वह आगे आने वाले युगों के लिए अध्ययन, मनन, और मनोरंजन, की सामग्री होगा। सामाजिक आदर्शवाद के साथ प्रेमचन्द्र ने जीवन के समस्त अनुभव को ग्राम्य जीवन तथा नागरिक जीवन में घटित किया है।

उनके सेवासदन, रङ्गभूमि, प्रेमाश्रय, गबन, कर्मभूमि और गोदान उपन्यास हमारे समाज के सच्चे और करुण चित्र हैं। उनके गोदान में होरी एक अमर चरित्र है जिसमें भारतीय किसान का जीवन साकार हो उठा है। उपन्यासों के साथ श्री प्रेमचन्द्र ने अनेक कहानियाँ भी लिखी हैं जो कला की दृष्टि से अभूतपूर्व हैं। प्रेमचन्द्र के पश्चात् सर्व-श्री सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्रकुमार, विश्वम्भरनाथ कौशिक,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भगवती चरण वर्मा और यशपाल आदि अनेक सफल उपन्यासकार और कहानी लेखक हैं। श्री वृन्दावन लाल वर्मा एक सफल ऐतिहासिक उपन्यास लेखक हैं और वे अपने क्षेत्र में अकेले हैं।

निबंध और समालोचना के क्षेत्र में हिन्दी ने विशेष उन्नति की है। निबंध लेखन जो श्री बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी में आरम्भ किया है, वह श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अत्यन्त सुथरे ढङ्ग से उपस्थित किया। उनके बाद सर्वश्री माधव प्रसाद, अध्यापक पूर्णसिंह शर्मा और डा० श्यामसुन्दर दास ने उसमें बड़ी उन्नति की। इन लेखकों के बाद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध साहित्य को बहुत उत्कर्ष दिया। उन्होंने निबंध में मनोविज्ञान के तत्व को जोड़कर अपनी रचनाओं को भाव और कला की दृष्टि से अच्छी तरह सँवारा।

उनका चिन्तामणि ग्रन्थ निबन्ध साहित्य में सर्वोत्कृष्ट है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के साथ ही सर्वश्री पदुमलाल बख्शी, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० धीरेन्द्र वर्मा और गुलाबराय निबन्ध लेखन में आदर के साथ स्मरण किये जाते हैं। इन लेखकों ने आलोचना के क्षेत्र को भी अलंकृत किया है। मिश्र बन्धुओं की आलोचना के युग से निकल कर आधुनिक हिन्दी पश्चिम की आलोचना पद्धति का अनुसरण करती हुई नवीन शैलियों में समालोचना साहित्य को जन्म दे रही है। आज की आलोचना खोज का आधार लेकर साहित्य की सद्वृत्तियों को प्रोत्साहित करती हुई दुष्प्रवृत्तियों को दूर हटा रही है।

ललित साहित्य के साथ ही साथ हिन्दी में उपयोगी साहित्य की रचना भी हो रही है। संस्कृति, दर्शन, राजनीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र और पुरातत्व विषयों पर स्थायी कार्य हो रहा है। सर्वश्री काशीप्रसाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जायसवाल, डा० भगवानदास, सम्पूर्णानन्द (संस्कृति), सर्वश्री डा० गंगानाथ झा, बलदेव उपाध्याय, रामदास गौड़, गुलाबराय (दर्शन), सर्वश्री डा० वेणीप्रसाद, डा० ताराचन्द (राजनीति), सर्वश्री डा० गोरख प्रसाद, सत्यप्रकाश, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (विज्ञान), सर्वश्री दयाशंकर दुबे, भगवानदास केला (अर्थशास्त्र), सर्वश्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, राहुल सांकृत्यायन, जयचन्द विद्यालंकार (पुरातत्व साहित्य), की रचनायें अग्रगण्य हैं। पारिभाषिक शब्दकोष संग्रह में श्री सुख संपति राय भंडारी का नाम उल्लेखनीय है।

जीवन चरित्र लेखकों में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी सर्वप्रथम हैं, जिन्होंने श्री सत्यनारायण कविरत्न की जीवनी लिखी। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने मालवीय जी के साथ इकतीस दिन के अनुभवों को लिखा है। श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द ने 'प्रेमचन्द घर में' लिखकर प्रेमचन्द की मानसिक भाव भूमि पर प्रकाश डाला है।

आत्मचरित्र साहित्य में सर्वश्री श्यामसुन्दरदास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, वियोगीहरि और पदुमलाल बख्शी की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

ग्राम-गीतों के संकलन में श्री रामनरेश त्रिपाठी ने सब से प्रथम प्रयास किया। अब तो मैथिली के लोकगीत और भोजपुरी तथा छत्तीसगढ़ी के लोकगीत भी प्रकाशित हो गये हैं। इस प्रकार खड़ी बोली हिन्दी साहित्य की उन्नति सर्वाङ्गरूप से हो रही है। इस साहित्य को लोकव्यापी बनाने में मासिक पत्रों को भी काफी श्रेय है जिनमें सरस्वती, माधुरी, हंस, विशालभारत, विश्ववाणी, विश्वमित्र और वीणा प्रमुख हैं।

हिन्दी साहित्य को समृद्धिशाली बनाने में विविध संस्थाएँ विशेष कार्य कर रही हैं, इनमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, नागरी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रचारिणी सभा, काशी; हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग; राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, वार्धा; वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् ओरछा और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास प्रमुख हैं। हिन्दी जिस गति से उन्नति कर रही है, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि निकट भविष्य में ही वह अन्य भारतीय भाषाओं से अधिक समृद्धिशाली हो जायगी।

हिन्दी साहित्य के इतिहास की सामग्री दो रूपों में मिलती है, प्रथम अन्तर्साक्ष्य और द्वितीय बाह्यसाक्ष्य के रूप में। साहित्य के प्रामाणिक ग्रन्थों से उपलब्ध सामग्री अन्तर्साक्ष्य के रूप में मिलती है। निम्नलिखित प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत होता है :—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, भक्तमाल, गोसाईं चरित्र, भक्तनामावली, कविमाला, कालिदास हजारा, कवि नामावली, शृङ्गार संग्रह, चन्द्रोदय, कवित्त रत्नाकर, शिवसिंह सरोज, व्रजमाधुरी सार तथा सूक्ति सरोवर।

बाह्यसाक्ष्य के अन्तर्गत हमें अपने साहित्य के इतिहास के लिये मुख्य-मुख्य निम्नलिखित पुस्तकों से सामग्री मिलती है :— आदि ग्रंथ, टाड राजस्थान, नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट इत्यादि।

हमारा साहित्य राजनीतिक परिस्थितियों से कुछ कम प्रभावित नहीं है। वीर तथा शृङ्गार रसों की साहित्य में अभिव्यंजना अपने अपने समय पर, राजनीतिक परिस्थितियों के ही आधार पर हुई। इस प्रकार हम राजनीतिक पट परिवर्तन के साथ साहित्य को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित कर सकते हैं :—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

सं०	काल विभाग	विस्तार	संस्कृति का स्थान	विचार धारा	विशेषता
१	चारण काल	संवत् १०००-१३७५	राजस्थान	लौकिक	पुरानी हिन्दी का जन्म, काव्य की अपेक्षा भाषा का उत्कर्ष, अधिक वर्णनात्मक काव्य, काव्य क्षेत्र में वीर रस का महत्व, राष्ट्र भावना का प्रभाव।
२	भक्ति काल	सं० १३७५ १७००	राजस्थान व मध्यदेश	पार-लौकिक	भाव तथा भाषा का उत्कर्ष। वर्णनात्मककाव्य के साथ रीति काव्य की प्रधानता। कविता के क्षेत्र में शृङ्गार तथा शान्त रसों की प्रधानता। धार्मिक भावों का उत्कर्ष। राष्ट्र भावना का अभाव। क्रियात्मक साहित्य का प्रणयन।
३	रीति काल	सं० १७००-१९००	राजस्थान मध्य प्रदेश तथा दक्षिण	पार-लौकिक के वेश में लौकिक	भाषा का उत्कर्ष। भावों की पुरानी परम्परा का आवर्तन। कला का अधिक प्रदर्शन। वर्णनात्मक कविता का प्राधान्य। भावों की आवश्यकता, अधिक विस्तार। शृङ्गार रस का प्राधान्य। मौलिकता का प्रभाव। आचार्यत्व का अधिक प्रदर्शन।
४	आधुनिक काल	सं० १९००	सम्पूर्ण भारत	लौकिक व पार-लौकिक	गद्य का विकास तथा विस्तार। भावों का जीवन स्वरूप। धार्मिक भावनाओं का आधुनिक दृष्टिकोण। जीवन के सभी विभागों पर दृष्टिकोण। राष्ट्र भावना का सूत्रपात। क्रियात्मक साहित्य का प्रणयन।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri
Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पहला प्रकरण

सन्धि काल

सिद्ध साहित्य : जैन साहित्य

(सं० ७५०-१२००)

हिन्दी साहित्य के विकास काल को सन्धिकाल कहना अधिक उपयुक्त है। इस काल में अपभ्रंश की गौरवशालिनी कृतियों के बीच में भाषा विषयक वह सरलता दृष्टिगोचर होने लगी थी जो जनता की स्वाभाविक मनोवृत्ति से प्रेरित होकर अपने को साहित्यिक विधानों से मुक्त करती है। साहित्यिक जड़वाद से जनता सन्तुष्ट नहीं होती। वह अपनी चेतना सरल भाषा में विकसित करती है और साहित्यिक शैली के रूढ़ि होते ही अपनी स्वाभाविक बोली में अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए सीधे मार्ग का अन्वेषण करती है। किन्तु यह पार्थक्य एक साथ ही नहीं हो जाता। उसके लिए तो अनेक युगों की आवश्यकता है। अतः जब साहित्य के वृन्त पर जन भाषा अपनी पंखुड़ियाँ खोलना प्रारम्भ करती है तो उसके ऊपर पुरातन अनुबंधों का आग्रह तो रहता ही है, जनता के मनोभावों से प्रेरित ऐसे साहित्य में प्राचीन शैली के भीतर नवीन प्रयोगों की कसमसाहट दीख पड़ती है। यह कसमसाहट धीरे-धीरे उभरती हुई अपने पंख खोलती है और अपने लिए साहित्य में मान्यता प्राप्त कर लेती है। अतः अपने विकास में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साहित्य ऐसे स्थल पर आता है जहाँ दो भाषाओं या दो शैलियों में संधि होती है और साहित्य के इस काल को सन्धि काल कहना ही अधिक समीचीन है।

अपभ्रंश जब अपनी साहित्यिक शैली में रूढ़ होने जा रहा था तब उसमें जनता की मनोवृत्ति से नवीन प्रयोग हुए जो सिद्धों और जैन कवियों की रचनाओं में पाये जाते हैं। सिद्धों की भाषा जन-रुचि के नवीन प्रयोगों के रूप में अर्ध मागधी अपभ्रंश से विकसित हुई और जैन कवियों की भाषा नागर अपभ्रंश से। इस प्रकार इन दोनों अपभ्रंशों के क्रोड में ऐसी भाषा पोषित होने लगी जो लोकरुचि का आधार पाकर अपने लिए एक आलोकमय भविष्य का निर्माण करने जा रही थी। यद्यपि हिन्दी का विकास मूलतः शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ, अर्ध मागधी या नागर अपभ्रंश से नहीं किन्तु शौरसेनी का देश व्यापी महत्व इतना अधिक रहा कि अर्ध मागधी और नागर अपभ्रंश भाषाएँ उसके प्रभाव से अपने को नहीं बचा सकीं। परिणामस्वरूप अर्ध मागधी अपभ्रंश और नागर अपभ्रंश के क्रोड से निकलने वाली जन भाषाएँ अपने आदि रूप में शौरसेनी से निकलने वाली हिन्दी के आदि रूप के अत्यन्त निकट आ जाती हैं। यही कारण है कि अर्धमागधी और नागर अपभ्रंश से निकलने वाली सिद्ध और जैन कवियों की भाषा हिन्दी के प्रारम्भिक रूप की छाप लिए हुए हैं। इस प्रकार इसे हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत स्थान मिलना चाहिए।

सिद्ध-साहित्य

सिद्धों का समय सं० ८१७ से माना जाता है क्योंकि सिद्धों के प्रथम कवि सरहपा का आविर्भाव का सं० ८१७ वि० है। ये सिद्ध कौन थे, इस पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। सिद्धों की परम्परा बौद्धधर्म के सिद्धान्तों की एक विकृति ही माननी चाहिए। बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में देश की बदलती हुई परिस्थितियों ने जिन नवीन भावनाओं की सृष्टि की, उन्हीं

सिद्ध युग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के परिणामस्वरूप सिद्ध साहित्य की रूप-रेखा तैयार हुई। बुद्ध देव का निर्माण ई० पूर्व ४८३ में हुआ। वे लगभग ४५ वर्ष तक अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे। इस प्रकार ई० पू० पाँचवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध से बौद्ध मत का प्रचार हुआ। यह धर्म अपनी पूर्ण शक्ति के साथ देश-विदेश में अपनी विजय की दुन्दुभी बजाता रहा। वैदिक कर्मकांड की जटिलता और हिंसा की प्रतिक्रिया में सहानुभूनि और सदाचार द्वारा आत्मवाद के विनाश से तृष्णा और दुःखरहित निर्वाण की प्राप्ति करना ही बौद्ध धर्म का आदर्श रहा। ईसा की पहली शताब्दी में बौद्ध धर्म महायान और हीनयान दो सम्प्रदायों में विभाजित हुआ। महायान में सिद्धान्त परम्परा अधिक नहीं रही उसमें लोक भावना का मेल इतना अधिक हो गया कि निर्वाण के लिए संन्यास और विरक्ति के पर्याय लोक कल्याण और आचार की पवित्रता प्रधान हो गई तथा वह वर्ग भेद से उठ कर एक सार्वजनिक धर्म बन गया। हीनयान में ज्ञानार्जन, पांडित्य और व्रतादि की कठिन मर्यादा बनी रही। बौद्धधर्म का चिंतन पक्ष हीनयान में रहा और व्यावहारिक पक्ष महायान में। यों तो बौद्ध धर्म को समय-समय पर संघर्षों का सामना करना पड़ा, गुप्त वंश के परम भागवत नरेशों द्वारा भी बौद्धधर्म की गति में बाधा पड़ी लेकिन उसे सबसे बड़ा आघात ईसा की आठवीं शताब्दी में कुमारिल और शंकराचार्य द्वारा वैदिक धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा में सहन करना पड़ा। श्री शंकराचार्य के शैवधर्म से प्रभावित होकर तथा जनता को अपने प्रभाव में लाने के अभिप्राय से बौद्ध सम्प्रदाय ने तन्त्र, मन्त्र और अभिचार आदि का आश्रय ग्रहण किया जिससे चमत्कारपूर्ण शक्तियों का आविर्भाव किया जा सके और जनता के हृदय में अपनी मान्यता सुरक्षित रखी जा सके। परिणामस्वरूप बौद्धधर्म जो अपनी साधना की सरलता और सदाचार की महानता से, कर्म के परिष्कार में वैदिक धर्म की यज्ञ सम्बन्धी जटिलता से लोहा लेकर सफल हुआ था, पुनः साधना की उलझनों और मन्त्रों की जटिलताओं में आबद्ध होने लगा और योग समाधि, तन्त्र मन्त्र और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

डाकिनी शाकिनी की सिद्धि में प्रयत्नशील हुआ। यद्यपि बुद्धदेव के समय में भी गांधारी विद्या या आवर्तनीय विद्या मंत्र कल्प से प्रचलित थी और बुद्धदेव ने उन्हें मिथ्या जीव की संज्ञा दी थी तथापि उनके कुछ शिष्यों में इस विद्या के प्रति आकर्षण अवश्य था। बुद्धदेव के निर्वाण के बाद तो यह आकर्षण अधिकाधिक मात्रा में बढ़ता गया और जब जनता को अपनी ओर आकर्षित करने की भावना प्रमुख हुई तो मन्त्र चमत्कार की सिद्धि और भी बढ़ गई। इस प्रकार महायान की यह सरल साधना मंत्र-यान में परिवर्तित हुई और ४०० से ७०० ईस्वी के लगभग अपने प्रचार में व्यापक रूप से कार्य करने लगी।

मंत्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की उक्ति प्रचारित करने वाले साधक सिद्ध नाम से प्रसिद्ध हुए। शंकराचार्य का शैव मत बौद्धों के विरोध में था। अतः जब उत्तर भारत में शैव धर्म का प्रचार अत्यधिक बढ़ा तो बौद्धों के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं रह गया। दक्षिण भारत में उस समय आंध्र शासकों का अनुराग बौद्ध धर्म पर बना हुआ था। उनकी राजधानी प्रतिष्ठान् (पैठन) में थी। उसके बाद की राजधानी धान्य-कटक बनी। इसके समीप ही श्रीपर्वत सिद्धों का महान् केन्द्र हुआ। यहीं मंत्रयान का प्रसिद्ध ग्रन्थ मंजुश्री मूलकल्प लिखा गया। मंजुश्री मूलकल्प में अनेक तंत्रों और मंत्रों का विधान है। इन तंत्रों और मंत्रों की सिद्धि के लिए दक्षिण का यह श्रीपर्वत बहुत प्रसिद्ध है। यहीं पर सिद्धों का स्थान माना गया है। श्री नागार्जुन अपनी साधना से मंत्रयान के प्रसिद्ध आचार्य हुये। यह मंत्रयान ईसा की सातवीं शताब्दी तक अपनी शक्ति का विकास करता रहा। इसके विकास की चरम अवस्था तो अब आती है जब वह भैरवीचक्र के रूप में सदाचार की अवहेलना करता है। यहीं से मंत्रयान बज्रयान में परिवर्तित होता है। यह समय ई० ८०० के लगभग प्रारम्भ होता है। मंजुश्री मूलकल्प में भैरवीचक्र का निर्देश नहीं है। अतः वह मंत्रयान का ही ग्रन्थ है। बाद में जब मंत्रयान में मद्य और मैथुन का प्रवेश हुआ तो वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बज्रयान में परिवर्तित होता है। इस प्रकार बज्रयान में मंत्रयान के मंत्र और हठयोग के साथ मद्य और मैथुन भी जोड़ दिये गये और महायान अपने ८०० वर्ष के जीवन क्रम में बज्रयान होकर सदाचार से हाथ धो बैठा। यह बज्रयान ई० ८०० से ११७५ तक चलता रहा। बाद में धीरे-धीरे इसका पतन हुआ।

उपर्युक्त चौरासी सिद्धों में अनेक सिद्ध काव्य रचना में समर्थ हुये। जिन सिद्धों ने अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन काव्य द्वारा किया उनमें निम्नलिखित मुख्य हैं :—

१ सरहपा	(सं० ८१७) सिद्ध ६	८ गुंडरीपा	(सं० ८९७)	सिद्ध	५५
२ शबरपा	(सं० ८३७) सिद्ध ५	९ कुकुरिपा	(सं० ८९७)	सिद्ध	३४
३ मुशुकुपा	(सं० ८५७) सिद्ध ४१	१० कमरिपा	(सं० ८९७)	सिद्ध	४५
४ लुइपा	(सं० ८८७) सिद्ध १	११ कह्नपा	(सं० ८९७)	सिद्ध	१७
५ विरूपा	(सं० ८८७) सिद्ध ३	१२ गोरक्षपा	(सं० ९०२)	सिद्ध	९
६ डीम्बिपा	(सं० ८९७) सिद्ध ४	१३ तिलोपा	(सं० १०७)	सिद्ध	२२
७ दारिकपा	(सं० ८९७) सिद्ध ७७	१४ शान्तिपा	(सं० १०५७)	सिद्ध	१२

यद्यपि बज्रयान की परम्परा लेकर ही इन सिद्ध कवियों ने अपने सिद्धांतों का प्रदिपादन किया, तथापि इनके काव्य को देखने से ज्ञात होगा कि इन्होंने तत्कालीन वज्रयानी वातावरण में अद्भुत क्रांति उपस्थित की। इन्होंने जिस स्वाभाविक धर्म और आचार का प्रतिपादन किया वह वज्रयान के सिद्धांत से भिन्न था। इन सिद्धों के दृष्टिकोण में एक विशेष बात यह है कि वह ईश्वरवाद की ओर अग्रसर हो रहा है। निरीश्वरवादी बौद्ध धर्म के क्रोड में पल्लवित होने वाले महायान, मंत्रयान और बज्रयान से सम्बन्ध विच्छेद सा करते हुए ये सिद्ध धर्म महासुख की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिसमें ईश्वरवाद का प्रतिफलन होता है।

चौरासी सिद्धों का समय सं० ७९७ से १२५८ तक माना गया है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यद्यपि सिद्धों की परम्परा इसके बाद भी अनेक वर्षों तक चलती रही। इस परम्परा को नाथपन्थ का नाम देना उचित है। यह नाथपन्थ मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ द्वारा चलाया गया था जो बारहवीं शताब्दी के अन्त तक अपने चरमोत्कर्ष पर था। इसी ने हमारे साहित्य में संत साहित्य की नींव डाली, जिसके सर्वप्रथम कवि कबीर (जन्म सं० १४५६) थे।

डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने सरहपा का समय सं० ६९० माना है किन्तु श्री राहुल सांकृत्यायन के कथनानुसार वे संवत् ८१७ में आविर्भूत हुए। सरहपा एक ब्राह्मण भिक्षु थे। साथ ही वज्रयान के विशेषज्ञ भी थे। बौद्धों की परम्परा में होने के कारण इन्हें राहुल भद्र और वज्रयानी होने के कारण इन्हें सरोजवज्र भी कहते हैं। प्रारम्भ में इनका निवास स्थान नालन्दा था। बाद में वज्रयान के प्रभाव में आकर इन्होंने शर (सर) बनाने वाले की कन्या को जोगिनि बनाकर उसके साथ अरण्यवास किया और स्वयं शर (सर) बनाने का कार्य स्वीकार किया। अपने इस कार्य के कारण ही ये सरहपा कहलाये। इनके लिखे हुए ३२ ग्रन्थ कहे जाते हैं जिनमें दोहा कोष विशेष प्रसिद्धि पा सका।

शबरपा (सं० ८३७) शबरपा शबरों की वेषभूषा में रहने के कारण इनका नाम शबरपाद पड़ा। ये सरहपाद के शिष्य तथा लुईपाद के गुरु थे। इनकी रचनाओं में रहस्योन्मुख भावनाएँ और महासुख प्राप्ति के विचार अधिक हैं।

भुसुकुपा (सं० ८५७) भुसुकुपा क्षत्रिय भिक्षु थे। इनका निवास स्थान नालन्दा में था और ये नालन्दा नरेश राजा देवपाल सं० ८६६-९०६ के समकालीन थे। एक बार राजा देवपाल ने इनकी अस्तव्यस्त वेशभूषा देखकर इन्हें भुसुक कह दिया। उस समय से ये भुसुकपा कहलाने लगे। ये तंत्र संबंधी तथा रहस्योन्मुख विचारों से ओतप्रोत रचनाएँ किया करते थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लुइपा अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध थे, इसीलिए सिद्धों में इनका स्थान प्रथम है। ये सिद्ध शबरपा के शिष्य तथा राजा धर्मपाल के लेखक थे। ये अपनी साधना में इतने ऊँचे थे कि उड़ीसा के राजा दारिकपा और उनके मन्त्री डेगीपा तक उनके शिष्य बन गये थे। इन्होंने रहस्यात्मक विचारों से परिपूर्ण रचनाएँ की हैं।

लुइपा (सं० ८८७)

इन कवियों के अतिरिक्त अन्य सिद्ध कवियों ने भी अपने सिद्धान्तों का प्रचार कविता द्वारा किया जिनमें चंचिपा, महीपा, भदेपा, धर्मपा आदि का नाम लिया जा सकता है। उपर्युक्त कवियों की रचनाओं से ज्ञात हो सकता है कि सिद्ध साहित्य की रूपरेखा क्या थी। संक्षेप में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

वर्ण्य विषय

सिद्ध कवियों ने बज्रयान में तंत्र का प्रचार किया जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि बज्रयान में तंत्र की प्रधानता थी और अपने उत्कर्ष में धर्म का आश्रय लेकर उसमें मद्य और मैथुन का प्रचार भी हो गया था। इन सिद्ध कवियों ने यद्यपि तंत्र और हठयोग का अनुसरण किसी मात्रा में तो किया किन्तु मद्य और मैथुन को उन्होंने कभी प्रश्रय नहीं दिया। सदाचार में उन्होंने आस्था रखी और जीवन के स्वाभाविक यापन में उन्होंने अपना विश्वास प्रगट किया। जीवन की नैसर्गिक प्रवृत्तियों का अनुचित रूप से दमन या प्रश्रय वे धार्मिक जीवन के लिए हितकर नहीं समझते थे। तिलोपा ने तो संसार के विष को दूर करने के लिए संसार का प्रयोग करना ही उचित समझा है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सदाचार की मर्यादा तोड़ दी जावे। प्राकृतिक नियमों के अनुसार जीवन यापन करना ही सिद्धि का सोपान है। सिद्धि साधना में मंत्र और देवता व्यर्थ ज्ञात होते हैं और संकीर्ण सम्प्रदाय को स्वीकार करना तथा दम्भपूर्ण पंडितों का अंधानुकरण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करना असम्भव हो जाता है। ये दोनों ही क्रियात्मक और प्रतिक्रियात्मक भाव महासुख की दिशा में ले जाते हैं जो शून्य तत्व का परम फल है। उसी महासुख को रहस्यवाद का नाम दिया जा सकता है।

भाषा

सिद्धों की भाषा जनसमुदाय की भाषा का आश्रय लेकर अपभ्रंश की उस अवस्था का संकेत करती है जिसमें आधुनिक भाषा के चिन्ह विकसित होने लगे थे। इसलिए कि ये सिद्ध अधिकतर नालंदा और विक्रमशिला में रहे, उनकी भाषा बिहार की जनता द्वारा बोली जाने वाली अर्धमागधी अपभ्रंश के निकट की भाषा है। अतः उनकी भाषा में जन-बोली मगही का आभास देखा जाता है। इस भाषा को संध्या भाषा का नाम भी दिया गया है।

रस

सिद्ध कवियों की रचना में विशेषकर शृङ्गार और शांत रस हैं। किन्हीं सिद्धों की कविता में वज्रयान के प्रभाव से कहीं-कहीं उत्तान शृङ्गार अवश्य हो गया है।

काव्य के लक्षणों को ध्यान में रखते हुए इन सिद्धों की रचना में चाहे रस का परिपाक न हुआ हो फिर भी उसमें जो अलौकिक आनन्द और आत्मसन्तोष का प्रवाह है उससे उसे अलौकिक रस की संज्ञा दी जा सकती है। यही अलौकिक रस कबीर, मीरा, दादू, आदि की रचनाओं में है जिनमें काव्य-लक्षणों की उतनी अधिक व्यवस्था नहीं है जितनी मनोवैज्ञानिक रस संचार की। यह रस अपनी पूर्णता में किसी काव्य लक्षण की अपेक्षा नहीं रखता।

छन्द

यों तो साहित्य की अधिकांश रचना चर्यागीतों में हुई है, तथापि इसमें दोहा, चौपाई जैसे लोकप्रिय छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। यह पहले ही कहा जा चुका है कि यह साहित्य जनता की बोली में उसी के जीवन परिष्करण के लिये लिखा गया था। अतः जनता के हृदय में पैठ जाने वाले छोटे-छोटे छंदों और गीतों में ही इस साहित्य की रचना हुई। सिद्ध कवियों के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिए दोहा बहुत प्रिय छंद है। यह अधिकतर सिद्धांत प्रतिपादन के लिए प्रयुक्त हुआ है। जहाँ वर्णन-विस्तार है, वहाँ चौपाई छंद है। यों कहीं-कहीं सोरठा और छप्पय हैं, किंतु दोहे का प्राधान्य सर्वत्र है।

(१) सिद्ध साहित्य का महत्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदि रूप की सामग्री प्रामाणिक ढङ्ग से प्राप्त होती है।

विशेष साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम माना जाने वाला चारणकालीन साहित्य तो केवल मात्र तत्कालीन राजनीतिक जीवन की प्रतिच्छाया है। यह सिद्ध साहित्य शताब्दियों से आने वाली धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का एक स्पष्ट उल्लेख है।

(२) इस साहित्य की भाषा ने भाषा-विज्ञान-विशारदों के समक्ष बड़ी मनोरंजक सामग्री प्रस्तुत की है। संध्या भाषा में अपभ्रंश से निकलती हुई जनभाषा की रूपरेखा जितना अधिक ऐतिहासिक महत्व रखती है, उतना अधिक साहित्यिक भी।

(३) सिद्ध साहित्य की रचना में हमें रहस्यवाद का बीज मिलता है।

जैन-साहित्य

जैन धर्म के संस्थापन की एक परम्परा है। जैन पुराणों का कथन है कि मनुष्य को संसार का सर्वप्रथम ज्ञान चौदह कुलकरों ने सिखलाया। सबसे प्रथम कुलकर का नाम प्रतिश्रुति था जिन्होंने मनुष्यों को सूर्य और चंद्र का ज्ञान दिया। कुलकरों के पश्चात् श्री ऋषभदेव हुए जो धर्म के प्रथम संस्थापक हुए। उन्होंने जनता को असि, मसि और कृषि का उपदेश दिया। अपनी ज्येष्ठ पुत्री ब्राह्मी के लिए उन्होंने लेखन-कला और लिपि का निर्धारण किया। इसलिए उस लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि हुआ। श्री ऋषभदेव जी के पश्चात् होने वाले अनेक तीर्थंकारों का वर्णन जैन ग्रन्थों में है। नेमिनाथ बाइसवें तीर्थंकर हुए जिन्होंने श्री ऋषभदेव द्वारा संस्थापित धर्म को आगे बढ़ाया। तेइसवें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ थे। इनके समय का समर्थन इतिहास सम्मत प्रमाणों से होता है। चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर थे जिन्होंने जैन धर्म को अत्यन्त व्यवस्थित रूप देकर उसका सङ्गठन किया। श्री महावीर के समय से ही जैन धर्म का सर्वमान्य इतिहास हमें प्राप्त होता है।

वेबर, व्हीलर, जैकोबी, हार्नल आदि विदेशी विद्वानों ने तथा डा० हीरालाल जैन, श्री नाथूराम प्रेमी, श्री अगरचन्द नाहटा, श्रीजुगल किशोर मुख्तार आदि देशी विद्वानों ने जैन धर्म का अध्ययन कर उसका इतिहास हमारे सम्मुख उपस्थित किया।

जैन धर्म वस्तुतः बौद्ध धर्म की अपेक्षा हिंदू धर्म के अधिक समीप है। उसमें परमात्मा की स्थिति तो मानी गई है किन्तु वह सृष्टि का नियामक न होकर केवल चित्त और आनंद का अनन्द-स्रोत है। वह एक ऐसी आदर्श सत्ता है जो संसार से परे है तथा संसार चक्र से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह सम्पूर्ण तथा एक विशुद्ध एवं परम आत्मा है। प्रत्येक जीव अपनी साधना से अपने पौरुष से परमात्मा हो सकता है। उसे उस परमात्मा से मिलने की आवश्यकता नहीं है।

जैन धर्म में अनुमान और कल्पना की अपेक्षा जीवनगत सत्य ही मान्य है। उसमें जीवन के प्रति चरम श्रद्धा का विकास हुआ है। आचार को सुदृढ़ अनुशासन में रख कर सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव के प्रति भी दया और करुणा का व्यवहार करना कर्म का आदर्श है। न केवल मनुष्यों, जन्तुओं और वनस्पतियों में जीव है प्रत्युत प्रकृति के तत्वों में जीवन का निवास है। इस परिस्थिति में ऐसी सावधानी से जीवन व्यतीत किया जाय जिससे किसी जीव की हानि या हिंसा न हो। इस अहिंसा ने जैन धर्म में त्याग की भावना का सूत्रपात किया। यह त्याग न केवल इन्द्रियों के अनुशासन में है प्रत्युत कष्ट-सहन में भी है। स्वादिष्ट भोजन का परित्याग, सुविधाजनक वस्तुओं का परित्याग, यहाँ तक कि वस्त्रों का परित्याग भी जैन साधुओं का आदर्श हो गया। शरीर को कष्ट-सहन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने की क्षमता प्रदान करने में शरीर के लोभों का लुंचन और उपवास भी साधना का अंग बन गया।

श्री महावीर इस धर्म के बड़े प्रभावशाली प्रचारक हुये। ईसा की छठी शताब्दी पूर्व जैन बौद्ध धर्म के समानान्तर लोकमान्य हुआ। श्री महावीर ने अपनी तपस्या और जितेन्द्रियता से जो आत्म-ज्ञान प्राप्त किया उससे उन्होंने जैन धर्म को बड़े व्यावहारिक ढङ्ग से संसार के समक्ष रक्खा। उन्होंने कर्मकांड और वर्ण-भेद हटा कर ब्राह्मण और शूद्र को समान रूप से मुक्ति का अधिकारी बतलाया। उन्होंने परिभ्रमण करके साधारण जनता को उन्हीं की भाषा में उपदेश दिया। श्री महावीर का जन्म कुंडग्राम (वैशाली) में हुआ था। मगध के क्षत्रिय वंशों की परम्पराओं में पोषित होकर इनकी प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से सदाचार की ओर गई। जब इनकी तीस वर्ष की अवस्था में पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला की मृत्यु हो गई तो इन्होंने संन्यास ले लिया और बारह वर्ष तक कठोर तपस्या की। अड़तालीस वर्ष की अवस्था में इन्हें श्रेष्ठ ज्ञान की प्राप्ति हुई और इन्होंने तीस वर्ष तक जैन धर्म का प्रचार किया।

वास्तव में हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति और विकास में जैन धर्म का बहुत हाथ रहा है। अपभ्रंश में जैनियों के मूल सिद्धान्तों की रचना हुई। अपभ्रंश का विकास हिन्दी में होने के कारण हिन्दी की प्रथमावस्था में भी इन सिद्धान्तों पर रचनाएँ हुईं। अतएव भाषा-विज्ञान की दृष्टि से ही नहीं, वरन् हिन्दी के प्रारम्भिक रूप का सूत्रपात करने में भी जैन साहित्य का महत्त्व है।

स्वयंभूदेव

हिन्दी के जैन कवियों में सब से पहला नाम स्वयंभूदेव का आता है। ये अपभ्रंश भाषा के महाकवि थे। किन्तु इन्होंने अपने ग्रन्थ पउम-चरिउ 'पद्मचरित्र जैन रामायण' में ऐसी अपभ्रंशभाषा का प्रयोग किया है जिससे प्राचीन हिन्दी का रूप इंगित है। इनका समय विक्रम की आठवीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शताब्दी ज्ञात होता है। इसका कारण यह है कि इन्होंने अपने ग्रन्थ पउमचरिउ और रिट्ठिनेमि चरिउ में अपने पूर्ववर्ती कवियों और उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है। इन कवियों में एक रविषेणाचार्य हैं। रविषेण के 'पद्म चरित' का लेखन काल विक्रम सं० ७३४ है। अतः स्वयंभूदेव का समय सं० ७३४ के बाद है।

स्वयंभूदेव बहुत अच्छे कवि थे। उन्होंने जीवन की विविध दशाओं का बड़ा हृदयाकर्षक वर्णन किया है। पउमचरिउ में वे विलाप और युद्ध लिखने में विशेष पटु हैं। उन्होंने नारी विलाप, बन्धु विलाप, दशरथ विलाप राम विलाप, भरत विलाप, रावण विलाप, विभीषण विलाप आदि बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिखे हैं। युद्ध में वे योद्धाओं की उमंगें रण-यात्रा, मेघवाहन, हनुमान युद्ध, कुम्भकर्ण युद्ध, लक्ष्मण युद्ध बड़े वैरत्वपूर्ण ढङ्ग से स्पष्ट करते हैं।

आचार्य देवसेन

डा० हीरालाल जैन ने बरार प्रदेश के कारजा नामक स्थान के दो बड़े प्राचीन शास्त्र भांडारों को देखकर अनेक ग्रन्थों की खोज की है, जिनमें अपभ्रंश भाषा से निकली हुई प्राचीन हिन्दी ग्रन्थों के अतिरिक्त भी मुनिजिनविजय और श्री नाथूराम प्रेमी के परिश्रम से अनेक जैनाचार्यों और उनके ग्रन्थों का परिचय प्राप्त हुआ है। इनमें प्रमुख आचार्य श्री देवसेन सूरि हैं। वे श्री विमलसेन गणधर के शिष्य थे। श्री देवसेन का आविर्भावकाल विक्रम की दसवीं शताब्दी है। कवि ने अपने ग्रन्थ दर्शनसार में उसकी रचना-तिथि विक्रम संवत् ९९७ लिखी है। अतः यह स्पष्ट है कि देवसेन विक्रम की दसवीं शताब्दी उत्तरार्ध में हुए।

माइल्ल धवल

श्री माइल्ल धवल श्री देवसेन आचार्य के शिष्य थे। इन्होंने अपने गुरु की रचना नयचक्र को अपने ग्रन्थ दव्य सहाव पयास में अन्तर्गर्भित कर उसे गाहा रूप दिया। इनका समय भी दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। ये १८००

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकों से रचित हरिवंश पुराण के कर्त्ता भी हैं। इन्होंने जैन धर्म के चरित नायकों का वर्णन किया है।

महाकवि पुष्पदंत जैन साहित्य के अत्यन्त प्रसिद्ध महाकवि थे। इन्होंने अपने ग्रन्थ णायकुमार चरिउ (नाग कुमार चरित) के अन्त में अपने माता पिता का संकेत करते हुए सम्प्रदाय का भी उल्लेख किया है। उसके अनुसार इनके पिता प्रथम शिव भक्त थे। किन्तु बाद में किसी जैन संन्यासी के उपदेश से जैन धर्म में दीक्षित हो गए थे। पिता के सम्प्रदाय परिवर्तन के साथ ये भी जैन हो गए। पिता का नाम केशव भट्ट था और माता का नाम मुग्धा देवी।

महाकवि पुष्पदन्त

महाकवि पुष्पदन्त एक महान् पंडित और प्रतिभाशाली कवि थे। इनका काव्य पक्ष अत्यन्त विस्तृत और उत्कृष्ट था। अलंकारों का प्रयोग इनकी निरीक्षण और अध्ययन शक्ति का परिचायक है।

श्री धनपाल अपभ्रंश भाषा के बहुत प्राचीन कवि हैं। उनकी भाषा जनता की भाषा के बहुत समीप है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने अपभ्रंश का जो रूप दिया है, उससे भी पहले की भाषा में महाकवि धनपाल की रचना है। इस प्रकार इनका आविर्भाव काल विक्रम की दसवीं शताब्दी माना गया है। इनका केवल एक ही ग्रन्थ प्रसिद्ध है। यह है भविसयत कहा (भविष्यदत्त कथा)। ये दिगम्बर सम्प्रदाय के थे तथा धक्कड़ वैश्य थे।

धनपाल

मुनि रामसिंह जैन रहस्यवाद के बहुत बड़े कवि हुए। इनकी विचार धारा बहुत कुछ सिद्ध कवियों की विचार-धारा से साम्य रखती है। इनका पाहुड़ दोहा नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। पाहुड़ दोहा में देवसेन-कृत सावयधम्म दोहा के उद्धरण हैं। अतः इनका समय देवसेन के समय (सं० १९९०) के बाद ही होगा। पुनः पाहुड़ दोहा के छन्द आचार्य

मुनि रामसिंह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत हैं। हेमचन्द्र का समय सं० ११५७ है अतः मुनि रामसिंह का आविर्भाव सं० ९९० से ११५७ के बीच हुआ होगा। डा० हीरालाल मुनि रामसिंह का आविर्भाव काल सं० १०५७ के लगभग मानते हैं।

मुनि रामसिंह जैन साहित्य में सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि कहे जा सकते हैं। इनकी विचार-धारा प्रायः वही है जो प्रायः सिद्धों के काव्य में पाई जाती है। सरहपा, गुन्डरीपा, वीणापा, डोम्बिपा के चर्यापदों के दृष्टिकोण के समानान्तर ही मुनि रामसिंह ने पाहुड़ दोहा की रचना की। इनका दृष्टिकोण यही है कि इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना सबसे बड़ा सुख है। तीर्थों में स्नान करने से आत्मा शुद्ध नहीं होती है। आत्मा की शुद्धि तो राग, द्वेष आदि प्रवृत्तियों को रोकने से ही होती है। इन्द्रिय सुख न तो स्थायी है और न कल्याणकारी। वह हृदय को अनन्त दोषों से भर देता है। ऊपरी वेश भी अहंकार को उत्पन्न करता है। साधना का सबसे सरल उपाय आत्मानुभव है। इसीलिए मुंडन, केशलुंचन और वस्त्र परित्याग से कोई संसार से विरक्त नहीं हो सकता। संसार परित्याग करने का सरल मार्ग तो प्रत्याहार द्वारा संसार के विषयों से मन को खींच लेना है। ईश्वर न तो मूर्ति में है और न मन्दिर में। ईश्वर तो हृदय के भीतर निवास करने वाला है, इसलिए आत्मदर्शन की बड़ी आवश्यकता है।

श्री अभयदेव सूरि

श्री अभयदेव सूरि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आचार्य थे। व्याख्या और टीका करने की अपूर्व पटुता के कारण इन्हें नवांग वृत्तिकार भी कहा गया है। इनका जन्म सं० १०७२ वि० में हुआ था और संवत् १०८८ में इन्हें आचार्य पद प्राप्त हुआ था। लगभग ८९ वर्ष की अवस्था में ही आप जैन साधु हो गए थे।

जैन साहित्य की रचना का क्षेत्र जीवन के सभी विभागों में फैला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुआ है। जहाँ भावों के दृष्टिकोण से उसमें चरम व्यापकता है, वहाँ शैली के दृष्टिकोण से भी वह अत्यन्त विस्तृत है।

वर्ण्य विषय भाव पक्ष के चार विभाग किये जा सकते हैं :

१. प्रथमानुयोग (तीर्थंकरों की जीवनियाँ)
२. करणानुयोग (विश्व-वर्णन)
३. करणानुयोग (श्रावकों का चित्रण)
४. द्रव्यानुयोग (सांसारिक वर्णन)

इस प्रकार यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि लौकिक पक्ष और अलौकिक पक्ष दोनों ही में जैन आचार्यों और कवियों ने अपनी अमित साधना और अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया है। जैन साहित्य के पुराणों और काव्यों की कथावस्तु प्रमुख रूप से त्रैसठ शलाका पुरुषों के चरित्रों (त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित) से सम्बन्ध रखती है।

इसी प्रकार महाभारत की कथा जैन कवियों द्वारा विविधता से लिखी गई है। पुन्नार सङ्घ के आचार्य जिनसेन ने 'हरिवंश पुराण' में 'महाभारत' की कथा का वर्णन किया है। सकल कीर्ति, देव प्रभसूर, शुभचन्द्र आदि इस इतिवृत्त के लिखने में विशेष रूप से सफल हुए हैं।

जैन साहित्य में प्रेम-कथाएँ अनेक रूपों में लिखी गईं। वे प्रेम-कथाएँ पूर्ण भौतिक उत्कर्ष में हैं, किन्तु इन भौतिक उत्कर्षों में नश्वरता की भावना लेकर अलौकिक पक्ष या आध्यात्मिक पक्ष की ओर संकेत किया गया है।

अपभ्रंश से निकलती हुई हिन्दी के प्राचीन रूप हमें इस समय की भाषा में मिलते हैं। इस पर विशेष कर नागर अपभ्रंश का अधिक प्रभाव है और उसी के व्याकरण के अनुसार शब्द

भाषा योजना है। यह भाषा अधिकतर पद्य रूप में ही है, गद्य रूप में कम। बादीयसिंह का 'गद्य चिन्तामणि' तथा धनपाल की 'तिलक मंजरी' गद्यकाव्य के अच्छे उदाहरण हैं। आगे चल कर जैन आचार्यों ने गद्य में यथेष्ट रचना अवश्य की है। इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समय यदि हमें कहीं गद्य के दर्शन होते हैं तो वे केवल टिप्पणियों के रूप ही में। जैन साहित्य में उनका नाम टब्बा है।

रस

जैन साहित्य सम्पूर्ण रूप से शान्त रस में लिखा गया है। यद्यपि शृङ्गार रस का भी अनेक कथानकों में पूर्ण परिपाक हुआ है। प्रेम-काव्यों में तो इस रस को उभारने का पूर्ण अवसर मिला है।

छन्द

जैन साहित्य में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। चरित्र रास, चतुष्पदी, चौढालिया, ढाल, सिज्झाय, कवित्त, छन्द, दोहा आदि। किन्तु इस काल की कविता में दोहे की ही प्रधानता है। इस प्रकार की रचना 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में दोहाविद्या के नाम से कही गई है। रड्डा का प्रयोग भी यथेष्ट किया गया है।

विशेष

१. जैन साहित्य द्वारा इतिहास की विशेष रक्षा हुई है। पौराणिक चरित्र के अतिरिक्त ऐतिहासिक व्यक्तियों के चरित्र भी लिखे गये हैं। हेमचन्द्र का कुमारपाल चरित, सोमप्रभुसूरि का कुमारपाल प्रतिबोध, धर्मसूरी का जम्बू स्वामी रासा, विजयसेन सूरी का रेवंतगिरि रासा, अंबदेव का संघपति समरा रासा, मेरुतुंग का प्रबन्ध चिन्तामणि, विजयभद्र का गौतम रासा, ईश्वरसूरि का ललितांग चरित्र आदि इतिहास की प्रधान घटनाओं और व्यक्तियों के सम्बन्ध में यथेष्ट प्रकाश डालते हैं।

२. जैन साहित्य में अनुवादित ग्रन्थों की अधिकता है। स्वतंत्र ग्रंथ कम हैं। पूर्ववर्ती कवियों के ग्रन्थों अथवा छंदों के उद्धरण ही साहित्य का कलेवर बढ़ाने में सहायक हुए हैं। कारण यह है कि हिन्दी जैन साहित्य अधिकतर गृहस्थ या श्रावकों द्वारा लिखा गया है। गृहस्थ या श्रावकों को भय था कि वे स्वतन्त्र ग्रन्थ रचना करते समय कहीं धर्म विरुद्ध कोई अनुचित बात न कह दें। अतएव उन्होंने अपने पूर्ववर्ती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्यों के सिद्धांतों का ही अनुसरण किया और उन्हीं के ग्रन्थों को अनुवादित किया।

३. जैन साहित्य में कोई बड़ा लक्षण कवि नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि प्रत्येक आचार्य का आदर्श धर्म की व्याख्या करना प्रमुख था, काव्य का शृङ्गार करना गौण। इसीलिये काव्य लक्षणों पर बहुत कम कवियों का ध्यान गया। केवल सिद्धान्तों के प्रतिपादन में अच्छी कविता नहीं हो सकती। प्रसिद्ध जैन कवि बनारसी दास (जन्म सं० १६४३) ने शृङ्गार रस की रचनाओं का एक संग्रह किया था। पर जैन होने के कारण उन्हें बाद में इस विषय से इतनी घृणा हो गई कि उन्होंने उसे यमुना में बहा दिया, जिससे उसका अस्तित्व ही न रहे।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संधिकाल का उत्तरार्ध

विविध साहित्य

१. नाथ संप्रदाय

संधिकाल के उत्तरार्ध के सिद्धों के वज्रयान की सहज साधना नाथ सम्प्रदाय के रूप में पल्लवित हुई। जीवन के जिस रूप को सिद्धों ने कर्मकांडों के जाल से मुक्त कर सहज रूप दिया था उसे सम्प्रदाय के रूप में आगे बढ़ाने का श्रेय नाथों को ही दिया जाना चाहिये। इस प्रकार नाथ सम्प्रदाय को सिद्ध सम्प्रदाय का विकसित और शक्तिशाली रूप ही समझना चाहिये। सिद्धों की विचार-धारा और उनके रूपकों को लेकर ही नाथ वर्ग ने उनमें नवीन विचारों की प्रतिष्ठा की और उनकी व्यंजना में अनेक तत्वों का सम्मिश्रण किया। इसी शैली का अनुसरण करते हुए उन्होंने निरीश्वरवादी शून्य को ईश्वरवादी शून्य बना दिया।

नाथ सम्प्रदाय पर कौल पंथ के कुछ प्रभाव हैं। कौल पंथ में अष्टांग योग की जो भावना है वह साधना रूप से नाथ सम्प्रदाय में अवश्य चली आई है, किन्तु अभिचारों में प्रवृत्ति का तीव्रतम विरोध नाथ सम्प्रदाय ने किया है। इसका प्रमुख कारण यही है कि अभिचारों और क्रिया पक्ष में प्रवृत्ति होने पर जीवन के सहज रूप में विकृति की सम्भावना होने लगती है और तब ऐसे पंथ का अनुसरण करना हिंस्र व्याघ्र की गर्दन का आलिंगन करने, विषैले सर्प से क्रीड़ा करने अथवा नंगे कृपाण की तीक्ष्ण धार पर चलने के समान भयानक हो जाता है। अष्टांग योग की साधना वज्रयान की साधना में भी रही।

कुछ तो अष्टांग योग और रसायन की कष्टसाध्य क्रियाओं के कारण नाथ सम्प्रदाय लोकधर्म रूप में प्रचलित नहीं हो सका और कुछ नाथ सन्तों के साधना सम्बन्धी नियंत्रणों के कारण साधारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जनता उसकी दीक्षा प्राप्त करने में असमर्थ रही। इस प्रकार यद्यपि नाथ सम्प्रदाय एक सार्वजनिक धर्म नहीं बन सका तथापि उसने जीवन के सदाचार की ओर अत्यन्त वेग से गमन किया और कर्मकांडों की रूढ़ियों के प्रति दुर्निवार प्रहार किया।

गोरखनाथ या गोरक्षपा

इस नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री गोरखनाथ कहे जाते हैं। इनके आविर्भाव के सम्बन्ध में अभी तक बहुत-सी भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं।

भारतीय दन्त कथाओं में श्री गोरखनाथ सर्वव्यापक और सर्व-शक्तिमान माने गए हैं। ये मत्स्येन्द्रनाथ के प्रतिद्वन्द्वी थे और गोरखा (सं० गोरक्ष) राज्य के संरक्षक सन्त थे। मत्स्येन्द्रनाथ से रक्षित नैपाल राज्य को ये अनेक वर्षों के अथक परिश्रम के बाद अपने संरक्षण में ला सके। इसके बाद इन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ का शिष्यत्व ग्रहण किया। तिब्बती जनश्रुति के अनुसार गोरखनाथ एक बौद्ध बाजीगर थे और उनके सारे कनफटे शिष्य भी आदि में बौद्ध थे। किन्तु बारहवीं शताब्दी के अन्त में सेन वंश के नाश होने पर ये शैवमत में हो गए।

नैपाल की एक दूसरी जनश्रुति के अनुसार गोरखनाथ ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं होने दी, वह भी एक साधारण कौशल के द्वारा। इन्होंने पानी के सभी उद्गमों की खोज की और उन्हें मन्त्र द्वारा एक ही सूत्र में बाँध लिया। इसके बाद ये उन सभी उद्गम सूत्रों पर बैठ गए। बारह वर्षों तक पानी किसी प्रकार भी नहीं बरस सका। चारों ओर हाहाकार मच गया। पानी किस प्रकार बन्धन से मुक्त किया गया, इस पर बौद्ध और ब्राह्मण जनश्रुतियाँ सहमत नहीं, किन्तु यह घटना प्राचीन किम्वदन्तियों में महत्वपूर्ण है।

राजस्थान की जनश्रुतियाँ गोरखनाथ के अनेक नाम बतलाती हैं, जिनमें मुख्य गुग्ग या गूग है। ये जहरपीर भी कहे जाते हैं, क्योंकि इन्होंने अपने शिशुपन में ही एक सर्प खा लिया था। ये बागर या उत्तरी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजस्थान के शासक भी कहे गये हैं, इसलिये इनका नाम नागर वीर भी कहा जाता है।

गोरखनाथ का अभी तक कोई सम्बद्ध विवरण नहीं मिलता। यह सन्ताप की बात अवश्य है कि जिस गोरखनाथ का भारत के धार्मिक इतिहास में इतना बड़ा महत्त्व है, उसके विषय में प्रामाणिक अन्वेषण अभी तक संतोषजनक रूप से नहीं हुआ।

श्री गोरखनाथ के सम्बन्ध में अभी पूर्ण प्रामाणिक खोज नहीं हो पाई। जो सामग्री अभी तक उपलब्ध हुई है उसकी पूर्ण विवेचना करने के उपरान्त सिद्धों की परम्परा और ज्ञानेश्वरी के प्रमाण की सार्थकता मानते हुए मैं गोरखनाथ का समय तेरहवीं शताब्दी का मध्य भाग ही स्थिर कर सका हूँ।

गोरखनाथ धर्म की जिस शाखा-विशेष के प्रवर्त्तक माने जाते हैं वह शाखा दार्शनिकता की दृष्टि से तो शैवमत के अन्तर्गत है और व्यावहारिकता की दृष्टि से पतंजलि के हठयोग से सम्बन्ध रखती है। गोरखनाथ का मत धर्म साहित्य में नाथ पन्थ के नाम से विख्यात है। उसकी महत्ता सिद्धों के वज्रयान की विकसित अवस्था मानी जा सकती है। इस नाथ सम्प्रदाय ने चौदहवीं शताब्दी तक साहित्य और धर्म का शासन किया। इसमें अनुभूति और हठयोग का प्रधान स्थान है और इन्हीं विशेषताओं ने कबीर के निर्गुण पन्थ का बहुत कुछ साधनरूप निर्धारित किया।

नाथ पन्थ में ईश्वर की भावना शून्यवाद में है, जो सम्भवतः वज्रयान से ली गई है। इसी शून्य को कबीर ने आगे चल कर सहस्र दल-कमल का शून्य माना है, जहाँ अनहदनाद की सृष्टि होती है और ईश्वर की ज्योति के दर्शन होते हैं।

गोरखनाथ धर्म साहित्य के एक बड़े सन्त कवि हैं। उनकी ग्रन्थ रचना संस्कृत में ही अधिक कही जाती है। उनकी बहुत सी संस्कृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुस्तकें आज भी उपलब्ध हैं, पर उनकी प्रामाणिकता के विषय में सन्देह है। उनकी लिखी संस्कृत पुस्तकों में प्रधान निम्नलिखित हैं :—

गोरक्ष शतक, चतुर्शीत्यासन, ज्ञानामृत, योगचिन्तामणि, योग सिद्धांत-पद्धति, विवेक मार्तण्ड और सिद्धसिद्धान्त पद्धति।

डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने गोरखबानी (जोगेसुरी बानी, भाग १) में श्री गोरखनाथ की रचनाओं का संग्रह प्रकाशित किया है। इस गोरखबानी में निम्नलिखित रचनाएँ संग्रहीत हैं :—

सबदी, पद (राग सामग्री), सिष्या दरसन, प्राण सङ्कली, नरवै बोध, आत्म बोध, अभै मात्रा जोग, पन्द्रह तिथि, सप्तवार, मछीन्द्र गोरखबोध, रोमावली, ग्यान तिलक और पंच मात्रा।

मिश्र बन्धुओं ने उनके दस ग्रन्थ प्रामाणिक समझे हैं—गोरखबोध, दत्त गोरख सम्वाद, गोरखनाथ जी के पद, गोरखनाथ जी के स्फुट ग्रन्थ, ज्ञान सिद्धान्त योग, ज्ञान तिलक, योगेश्वरी साखी, नरवै बोध, विराट पुराण और गोरखसार।

गोरखनाथ ने अपने नाथ पन्थ के प्रचार के लिए जनसमुदाय की भाषा का आश्रय ग्रहण किया। गौतम बुद्ध ने भी अपने मत का प्रचार संस्कृत को छोड़कर जन समुदाय की भाषा पाली में किया था। सर्वसाधारण को अपने सिद्धांत समझाने के लिए गोरखनाथ भी जनभाषा में कुछ लिखने के लिये बाध्य हुए। पर उनके ग्रन्थ पूर्ण प्रामाणिकता के साथ अभी निश्चित नहीं हो सके हैं।

नाथ सम्प्रदाय प्रधान रूप से निवृत्तिमार्गी ज्ञान योग के अंतर्गत है। नाथ का अर्थ इस सम्प्रदाय में मुक्तिदान करने वाला माना गया है। मुक्ति का दान वही कर सकता है जो स्वयं मुक्त हो। अतः नाथ सम्प्रदाय में संसार के बंधनों से मुक्त होने की ही विधि विशेष रूप से मान्य है। संसार के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध विषयों से स्वतन्त्रता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तभी मिल सकती है, जब वैराग्य की भावना मन में स्थिर हो जावे। यह वैराग्य गुरु की सहायता से ही हो सकता है। अतः नाथ सम्प्रदाय अपने क्रिया पक्ष में गुरु मन्त्र या गुरु दीक्षा से प्रारम्भ होता है। गुरु भी शिष्य की दृढ़ता और योग्यता देख कर उसे दीक्षा देता है।

वैराग्य की भावना जब हृदय में दृढ़ता से स्थिर हो जाती है तब वह अपनी अभिव्यंजना में तीन मार्ग ग्रहण करती है। पहला मार्ग, इन्द्रिय निग्रह का है, दूसरा, प्राण साधना का और तीसरा, मन साधना का है। पहला मार्ग सब से प्रमुख है। नाथ सम्प्रदाय में इन्द्रिय-निग्रह पर बड़ा जोर दिया गया है। इंद्रियों के लिए सब से बड़ा आकर्षण नारी है। इस इंद्रिय निग्रह पर श्री गोरखनाथ ने सम्भवतः इसीलिए इतना जोर दिया कि उन्होंने बौद्ध विहारों में भिक्षुणियों के प्रवेश का परिणाम बौद्ध धर्म के अधःपतन में देखा हो, अथवा कौल पद्धति या वज्रयान में उन्होंने भैरवी और योगिनी रूप नारियों की ऐंन्द्रिक उपासना में धर्म को विकृत होता हुआ देखा हो। उन्होंने कौल पद्धति में मद्य और मानवी की ओर प्रवृत्ति की भयानकता का अनुभव किया हो।

शिव ही नाथ सम्प्रदाय के आराध्य देव हैं। उन्होंने ही सर्वप्रथम योग की शिक्षा पार्वती (शक्ति) को दी। मत्येस्न्द्रनाथ ने उस शिक्षा को मछली का रूप धारण कर चोरी से सुना। इस प्रकार योग की शिक्षा पा कर मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने शिष्य गोरखनाथ को उसी का ज्ञान दिया। गोरखनाथ अपनी साधना और अनुभूति में अपने गुरु की महत्ता से भी आगे बढ़े। गुप्त रूप से योग की शिक्षा सुनने के कारण जब मत्स्येन्द्रनाथ मोह में फँस जाने के लिए अभिशप्त हुए तो गोरखनाथ ने ही उनका उद्धार किया था। गोरखनाथ ने योगमार्ग का जो प्रचार किया उसमें शिव और शक्ति को आदि तत्व माना गया है।

मत्स्येन्द्रनाथ को मीनानाथ और मछेन्द्रनाथ भी कहा गया है। वे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोरखनाथ के गुरु थे। ये चौथे बोधिसत्व अवलोकितेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये नेपाल के आराध्यदेव रूप से गोरखनाथ के पूर्व मान्य रहे। इन्होंने योग की शिक्षा आदिनाथ (शिव) से प्राप्त की। सागर के तट पर शिव जी योग विद्या का रहस्य पार्वती को समझा रहे थे। पार्वती को नींद आ गई किन्तु मत्स्येन्द्रनाथ मछली रूप से उस योग विद्या के रहस्य को सुनते रहे। उनके इसी कार्य से उनका नामकरण हुआ।

मत्स्येन्द्रनाथ

मत्स्येन्द्रनाथ की कविता पर राजस्थानी का अधिक प्रभाव है। मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा रचित संस्कृत की किसी कौलीय पुस्तक का पता अवश्य लगा है, किंन्तु वह अभी तक प्रकाश में नहीं आई।

गाहिणीनाथ गोरखनाथ के शिष्य थे। इन्होंने ज्ञानेश्वर महाराज के पितामह श्री गोविंदपंत को ब्रह्मोपदेश दिया था। ये ज्ञानेश्वर के पिता विट्ठल के भी गुरु कहे जाते हैं। इन्हें गेनीनाथ या गाहिणीनाथ भी कहा गया है। इनका समय तेरहवीं शताब्दी का मध्य भाग है।

गाहिणीनाथ

मनुखेट पत्तन में चर्पटनाथ का जन्म हुआ। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनका पूर्वनाम श्री चरकानंदनाथ था। ये कहीं गोरखनाथ के और कहीं बालानाथ के शिष्य कहे गए हैं।

चर्पटनाथ

ज्वालेन्द्रनाथ गोपीचन्द्र के गुरु थे। गोपीचन्द्र की माता मैनावती भी ज्वालेन्द्रनाथ से प्रभावित थी। मैनावती आध्यात्मिक दृष्टि से अपने पुत्र गोपीचन्द्र को चाहती थी। गोपीचन्द्र ने इसका सांसारिक दृष्टि से दूसरा ही अर्थ लगाया। मैनावती के मनोभावों में ज्वालेन्द्रनाथ का हाथ देखकर गोपीचन्द्र ने ज्वालेन्द्रनाथ को कुएँ में डाल दिया किन्तु वे मरे नहीं। अपने योगबल से वे कुएँ में समाधि लगाकर बैठ गए। गोरखनाथ ने कुएँ पर आकर ज्वालेन्द्रनाथ से निकलने की प्रार्थना की। ज्वालेन्द्रनाथ मौन रहे।

ज्वालेन्द्रनाथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तब गोरखनाथ ने गोपीचन्द्र की प्रतिमा कुएँ पर रख कर उनसे बाहर आने का आग्रह किया। गोरखनाथ जानते थे कि यदि स्वयं गोपीनाथ को कुएँ पर खड़ा किया जायगा तो गोपीचन्द्र भस्म हो जायेंगे। हुआ भी यही। श्री ज्वालेन्द्रनाथ के योगबल से गोपीचन्द्र की प्रतिमा जलकर भस्म हो गई। दुबारा प्रतिमा रखने पर भी ऐसा ही हुआ। अंत में गोपीनाथ को अत्यन्त विनय और प्रार्थना से खड़े करते हुये गोरखनाथ ने ज्वालेन्द्र-नाथ से कुएँ से बाहर निकलने का अनुरोध किया। ज्वालेन्द्रनाथ प्रसन्न हुए और वे गोपीचन्द्र को अमरत्व का आशीर्वाद देते हुए कुएँ से बाहर निकले।

भर्तृनाथ

भर्तृनाथ का दूसरा नाम भर्तृहरि या भरथरी भी प्रसिद्ध है। ये जालंधरपा के शिष्य थे। इन्होंने अपने गुरु से प्रार्थना की कि मुझे धर्म का कोई विशिष्ट चिन्ह दीजिए। जालंधरपा ने उनके कानों के मध्य में छेद कर उसमें कुंडल डाल दिया।

गोपीचन्द्रनाथ

गोपीचन्द्र का विवरण ज्वालेन्द्रनाथ के प्रसङ्ग में आ ही गया है। गोपीचन्द्र ने जब राज्य छोड़ा तो उनकी रानियों, पुत्रियों और माता ने उन्हें रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उन्होंने स्नेह-बन्धन तोड़ कर योग-साधना में ही जीवन की सार्थकता समझी। भर्तृहरि और गोपीचन्द्र के नाम से जनता में अनेक लोक-गीत प्रचलित हैं। इन लोक-गीतों में संसार की नश्वरता और वैभव-विलास की निस्सारता बड़े भावनामय शब्दों में कही गई है। साथ ही योग के सिद्धान्तों को अत्यन्त व्यावहारिक रूप से समझाने का प्रयत्न किया गया है। भर्तृहरि और गोपीचन्द्र के गीतों ने शताब्दियों तक जिस धार्मिक जीवन में आस्था रखने का सन्देश दिया है, वह बड़े-बड़े तत्त्व-वादियों द्वारा नहीं दिया जा सका।

इन लोक-गीतों ने नाथ-सम्प्रदाय के प्रभाव को जनता के हृदय में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूर तक पहुँचा दिया और योग की कठिन साधनाएँ भी जीवन के लिए अत्यन्त हितकर रूप में उपस्थित हो सकीं।

२—शृङ्गारी और मनोरंजक साहित्य

सिद्ध और जैन कवियों ने यद्यपि धार्मिक जीवन की व्यवस्था की ओर पूर्ण बल से जनता का ध्यान आकर्षित किया था तथापि उन्होंने अपने लक्ष्य की ओर चलते हुए संसार की पूर्ण उपेक्षा नहीं की थी। उन्होंने आध्यात्मिक जीवन के निर्माण में लौकिक जीवन के विकारों की ओर संकेत अवश्य किया था, और यह संकेत अपने समस्त पार्थिव आकर्षणों के साथ था। किसी भी रोग का निदान उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि उसके लक्षणों की पूर्ण व्याख्या न कर दी जावे। इसी प्रकार संसार की माया का तिरष्कार उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि माया के समस्त आकर्षणों और प्रलोभनों की व्याख्या करते हुए उनके पास से मुक्त होने का उपाय न बतला दिया जावे। ऐसे प्रसङ्गों में सिद्ध और जैन कवियों ने क्रमशः रूपकों और कथानकों का आश्रय लेकर माया के आकर्षणों की ऐंद्रिकता का परिपूर्ण चित्रण किया है। माया के आकर्षणों में नारी प्रमुख है। अतः नारी का रूप वर्णन, उसकी वेशभूषा, उसके संयोग की अवस्थाएँ, उसके हास-विलास में ऋतु वर्णन आदि विषयों पर सन्धिकाल के सिद्ध और जैन कवियों ने यथेष्ट लिखा है। यह बात अवश्य है कि उन्होंने इन समस्त आकर्षणों की नश्वरता दिखलाकर उनके सौन्दर्य और वैभव को नींव में डाल कर अपने आध्यात्मिक जीवन का प्रासाद खड़ा किया है। उन्होंने प्रेय को साधना में रख कर श्रेय की सिद्धि की ओर संकेत किया है। दूसरे शब्दों में उन्होंने प्रवृत्ति का परिष्कार कर निवृत्ति का पथ प्रशस्त किया।

इन कवियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कवियों का भी वर्ग था जिन्होंने संसार के सौन्दर्य वर्णन में एकमात्र लौकिक दृष्टिकोण ही लिया है। उन्होंने संसार के वस्तुवाद का यथातथ्य चित्रण करते हुए जीवन की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपयोगिता और उसकी नैतिक दृष्टि की ओर ध्यान दिया। उन्होंने संयोग और वियोग के बड़े हृदयाकर्षक चित्र खींचे। ऐसे चित्रों में प्रकृति वर्णन और उसके अनुरूप संयोग या वियोग की बड़ी सुन्दर मनोवैज्ञानिक झाँकियाँ हैं। कभी-कभी केवल मनोरंजनार्थ कौतूहलजनक शब्द-चमत्कार भी प्रस्तुत किये गए हैं। ऐसे कवियों में तीन प्रमुख हैं :—अब्दुर्रहमान, बब्बर और अमीर खुसरो।

अब्दुर्रहमान

अब्दुर्रहमान जुलाहा वंश में उत्पन्न एक यशस्वी मुसलमान कवि थे। इनका आविर्भाव काल संवत् १०६७ है। ये मुल्तान निवासी थे। इनकी कविता पर भारतीय आदर्शों का बड़ा प्रभाव है। यद्यपि ये मुसलमान थे तथापि इनकी कविता में हिन्दू संस्कारों की आत्मा निवास कर रही है। इनका संनेह रासय (संदेश रासक) ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इसमें एक वियोगिनी का संदेश विविध ऋतुओं के उद्दीपन से बड़े स्वाभाविक क्रिया-कलापों में वर्णित है। अब्दुर्रहमान की कविता में प्रौढ़ता तथा सजीवता है। इनकी शैली विशेष मँजी हुई है। कविता को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की होगी जो अब प्राप्त नहीं है।

बब्बर

बब्बर का आविर्भाव काल सं० ११०७ माना गया है। ये राजा कर्ण कलचुरी के दरबारी कवि थे। इनका निवासस्थान त्रिपुरी (आधुनिक जबलपुर, मध्यप्रदेश) था। इनकी रचना-शैली भी प्रौढ़ है। इनका कोई विशिष्ट ग्रन्थ देखने में नहीं आता, स्फुट रचनाएँ ही प्राप्त होती हैं।

अमीर खुसरो

संधिकाल की संध्या में अमीर खुसरो ने साहित्य को विविध रंगों से रंजित किया। जब कि लौकिक साहित्य के आदर्श निश्चित नहीं थे और रचनाएँ धर्म या राजनीति के संकेतों पर नाचती थीं, उस समय विनोद और मनोरंजन की प्रवृत्तियों को जन्म देना साधारण काम नहीं था। यही अमीर खुसरो की विशेषता थी। साहित्य की तत्कालीन परिस्थिति अपभ्रंश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिश्रित काव्य की रचनाओं तक ही सीमित थी। पूर्व में उससे भी गंभीर धर्म की भावना गोरखनाथ के शिष्यों द्वारा प्रचारित हो रही थी, उस समय अमीर खुसरो ने साहित्य के लिए एक नवीन मार्ग का अन्वेषण किया और वह था जीवन को संग्राम और आत्म-शासन की सुदृढ़ और कठोर शृङ्खला से मुक्त कर आनन्द और विनोद के स्वछन्द वायुमण्डल में विहार करने की स्वतंत्रता देना। यही अमीर खुसरो की मौलिकता थी।

खुसरो ने हिंदी साहित्य का बड़ा उपकार किया। जहाँ इन्होंने फारसी में अनेक मसनवियाँ लिखीं, वहाँ हिन्दी को भी नहीं भुलाया। इन्होंने खड़ी-बोली हिन्दी में कविता कर मुसलमानी शासकों का ध्यान हिन्दी की ओर आकर्षित किया और खालिकबारी की रचना कर हिन्दी, फारसी और अरबी को परस्पर समझने का मौका दिया। उसमें हिन्दी, अरबी और फारसी के समानार्थवाची शब्दों का समूह है, जिससे इन तीनों भाषाओं का ज्ञान सरल और मनोरंजक हो गया है।

अभी तक साहित्य किसी नरेश के यशोगान में अथवा जीवन के महत्वपूर्ण और गंभीर स्वरूप के वर्णन ही में अपनी सार्थकता समझता था, पर खुसरो ने साहित्य में ऐसे भावों की सृष्टि की जिनसे साहित्य का दृष्टिकोण ही बदल गया। साहित्य जीवन की मनोरंजक वस्तु हो गया। ऐसा हिन्दी साहित्य में पहली बार हुआ है।

३. प्रेमकथा साहित्य

खुसरो का नाम जब समस्त उत्तरी भारत में एक महान् कवि के रूप में फैल रहा था, उसी समय मुल्ला दाऊद का नाम भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में आता है। मुल्ला दाऊद की एक प्रेम कहानी प्रसिद्ध है, उसका नाम है चंदाबन या चंदावत। यह ग्रन्थ अभी तक अप्राप्य है और इसके सम्बन्ध में कुछ भी प्रमाणित रूप से ज्ञात नहीं है। इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि यह कथा मुसलमान लेखक के द्वारा लिखी

मुल्ला दाऊद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जाने के कारण मसनवी के आधार पर लिखी गई होगी। अमीर खुसरो ने स्वयं कई मसनवियाँ लिखी हैं और वे उस समय के साहित्य में महत्व-पूर्ण स्थान रखती हैं। बहुत सम्भव है, मुल्ला दाऊद ने भी उन्हीं मस-नवियों की शैली में अपनी प्रेमकथा लिखी हो। इस प्रेमकथा का महत्व इसलिए और भी अधिक है कि इसी प्रेम-परम्परा को लेकर प्रेम साहित्य के कवि कुतुबन, मंझन, जायसी आदि ने अपनी प्रेमकथाएँ लिखीं। यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रेम कहानी में कोई आध्यात्मिक व्यंजना है या नहीं, अथवा सूफी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है या नहीं, जैसा कि परवर्ती प्रेमकाव्य के कवियों ने किया है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि चंदाबन की भाषा का क्या स्वरूप है। यदि इस प्रेमकथा की कोई प्रामाणिक प्रति मिल सकी तो वह प्रेमकाव्य की परम्परा पर यथेष्ट प्रकाश डालने में सहायक हो सकेगी।

मुल्ला दाऊद अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन था। अलाउद्दीन खिलजी सन् १२९६ में राजसिंहासन पर बैठा। उसकी मृत्यु २ जनवरी सन् १३१६ में हुई। अतः अलाउद्दीन खिलजी का राजत्वकाल सन् १२९६ से सन् १३१६ (सं० १३५३ से सं० १३७३ तक) मानना चाहिए। इसके अनुसार मुल्ला दाऊद का कविता काल संवत् १३७५ के आस-पास ही है। श्री मिश्रबन्धु मुल्ला दाऊद का कविता काल सं० १३८५ मानते हैं और डाक्टर पीताम्बरदत्त बडथ्वाल सं० १४९७ (सन् १४४०)। श्री मिश्रबन्धु द्वारा दिया हुआ सम्वत् तो किसी प्रकार माना भी जा सकता है, पर डा० बडथ्वाल द्वारा दिया हुआ संवत् तो अलाउद्दीन के बहुत बाद का है। वे मुल्ला दाऊद का आविर्भाव काल सन् १४४० मानते हुए उसे अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन मानते हैं। अला-उद्दीन खिलजी की मृत्यु तो सन् १३१६ में ही हो गई थी। फिर यदि मुल्ला दाऊद सन् १४४० में हुआ तो वह अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन कैसे हो सकता है? अतः डा० बडथ्वाल का दिया हुआ मुल्ला दाऊद का समय अशुद्ध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्तु, संधिकाल के उत्तरकाल में डिंगल साहित्य के अस्पष्ट प्रवाह के साथ पाँच महान् कवि हुए। गोरखनाथ, अब्दुर्रहमान, बब्बर, अमीर खुसरो और मुल्ला दाऊद। इन सभों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की रचनाएँ कीं। गोरखनाथ ने हठयोग साहित्य सम्बन्धी, अब्दुर्रहमान और बब्बर ने शृङ्गार सम्बन्धी, अमीर खुसरो ने मनोरञ्जक साहित्य सम्बन्धी और मुल्ला दाऊद ने प्रेमकथा साहित्य सम्बन्धी। इस प्रकार संधिकाल के उत्तरयुग की प्रवृत्तियाँ परस्पर किसी प्रकार साम्य नहीं रखतीं। इतना अवश्य ही मान लिया जा सकता है कि प्रेमकथा साहित्य सम्बन्धी रचनाओं का सूत्रपात शृङ्गार साहित्य सम्बन्धी मनोवृत्ति से हुआ। प्रेमकथा साहित्य में जो लौकिक दृष्टिकोण वर्तमान है, वही शृङ्गार सम्बन्धी साहित्य में भी है। दोनों का उद्भव एक ही मनोविज्ञान से होता है, अन्तर केवल इतना ही है कि शृङ्गार सम्बन्धी साहित्य मुक्तक या अधिक से अधिक वर्णनात्मक है और प्रेमकथा साहित्य घटनात्मक और इतिवृत्तात्मक है। इन समस्त साहित्यक प्रयोगों में सब से बड़ी बात यह है कि प्रत्येक शैली का अपना व्यक्तित्व या वर्ग है और इससे संधिकालीन साहित्य इन्द्र-धनुष की भाँति विविध रङ्गों की रेखाओं में समानान्तर होते हुए भी अलग-अलग हैं। उसकी विविधता में ही सौन्दर्य है।

संधिकाल के साहित्य का सिंहावलोकन

संधिकाल हमारे साहित्य के इतिहास में ऐसा पुण्य पर्व समझा जाना चाहिये जिसमें शताब्दियों की धार्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक परम्पराएँ हमारी भाषा में अवतरित हुईं और उनके द्वारा जन-मत के विकास का पूर्ण इतिहास हमें प्राप्त हुआ। संसारव्यापी धर्मों का अपने समस्त चिन्तन और अनुशीलन पक्ष से जन-भाषा में रूपान्तरित होना हमारे साहित्य के लिये गौरव का विषय है। यह बात दूसरी है कि हमारी भाषा इतनी समृद्धशालिनी न रही हो जिसमें इतने उदात्त विचारों की अभिव्यक्ति सफलतापूर्वक हो सके। उस समय भाषा विकास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के पथ पर अग्रसर हो रही थी। उसमें नवीन जीवन के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे थे। वह अपने पुराने पल्लवों को छोड़ कर नूतन किसलयों से सुसज्जित होती हुई वसंत-श्री की शोभा धारण करने जा रही थी। यद्यपि उस समय की हमारी जन-भाषा संस्कृत या पाली की उत्कृष्टतम साहित्यिक गरिमाओं से सम्पन्न नहीं थी तथापि यही क्या कम है कि वह अपने निर्माणपथ पर शैशव की विकासोन्मुखी अनन्त शक्तियों से समन्वित थी। फिर एक बात और है। संधिकालीन साहित्य से हमें अपनी भाषा की शोभा-श्री की वैभवमयी गाथा भले ही प्राप्त न हो, हमें भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अपनी भाषा के इतिहास की क्रमबद्ध रूप-रेखा तो प्राप्त होती है। इस प्रकार संधिकालीन साहित्य हमारे साहित्य का प्रारम्भिक इतिहास होते हुए भी सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

वर्ण्य विषय

इस साहित्य का वर्ण्य विषय प्रमुखतः धार्मिक और दार्शनिक हैं। इसके अतिरिक्त राजनीति के आश्रय से उसमें लौकिक विषयों पर भी रचनाएँ हुईं, शृङ्गार का उदय हुआ और जीवन के आमोद-प्रमोद के साथ मनोरंजन का सूत्रपात भी हुआ। इस भाँति संधियुग के साहित्य का स्पष्टकरण निम्नलिखित रेखाचित्र से ज्ञात हो सकता है :—

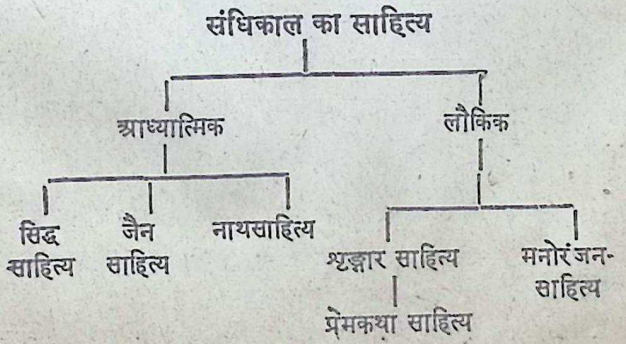

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस काल का साहित्य प्रमुखतः धार्मिक और दार्शनिक था। यह साहित्य प्रतिक्रियात्मक रूप से धार्मिक रूढ़ियों के विद्रोह में खड़ा हुआ। सिद्ध-साहित्य वज्रयान के क्रोड़ में पोषित होकर भी उससे अनुशासित नहीं हुआ; वह सहजयान का मार्ग लेकर स्वतंत्र-सा हो गया। जैन साहित्य अत्यन्त प्राचीन हाते हुए भी बौद्ध धर्म के समानान्तर चलकर श्रावकाचार के रूप में नैतिक मापदंडों के निर्माण में शक्ति-सम्पन्न हुआ। नाथ साहित्य शैवधर्म से स्फूर्ति पाकर सिद्ध साहित्य के संशोधन में और भी कृतकार्य हुआ। इस प्रकार इन सभी धर्मों में एक ऐसा वेग था जो अपने चारों ओर के वातावरण को परिष्कृत करने में पूर्ण सक्षम था। इन सभी धार्मिक आन्दोलनों में एक बात समान रूप से वर्तमान रही और वह यह कि इनमें अन्धविश्वासों और रूढ़ियों के लिए कोई स्थान नहीं था। जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का अधिक से अधिक उपयोग करने तथा उन्हें स्वाभाविक क्षेत्रों में ले जाने का आदर्श सभी में मौजूद था। इस भावना के होते हुए भी इन तीनों के जीवनगत दृष्टिकोण में अन्तर था। सिद्ध संप्रदाय प्रवृत्ति मार्ग था, जैन संप्रदाय प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों से पूर्ण था और नाथसंप्रदाय सम्पूर्णतः निवृत्ति-मार्गी था। किन्तु जीवन के लौकिक पक्ष से साधना में बल प्राप्त करने की अतर्दृष्टि तीनों में ही वर्तमान थी।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि संधिकाल में आध्यात्मिक और लौकिक जीवन दोनों पर ही रचनाएँ की गईं और दोनों ही अपने क्षेत्रों में चरम स्थिति को पहुँची हुई हैं।

भाषा

संधिकाल की भाषा अपभ्रंश से निकलती हुई आधुनिक भाषाओं के शैशव की स्थिति में है। इस प्रकार की भाषा में तीन बातें स्पष्टतः देखी जा सकती हैं।

१—नवजात भाषा होने के कारण उसमें प्रयोगों की अनेकरूपता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२—उसमें साहित्य के संस्कार नहीं देखे जाते। जब उसमें साहित्य की परिपाटियों का सूत्रपात ही होता है तो वह भावाभिव्यञ्जन की साधारण शैली ही लिए होती है।

३—उसमें पदावलीगत लालित्य कम रहता है।

४—प्राचीन भाषा की शैलियों का ही उसमें अनुकरण होता है।

इस समय की रचनाओं में शान्त और शृंगार ये दो रस प्रमुख हैं। गौण रूप से हास्यरस भी अमीर खुसरो की पहेलियों या मुकरियों द्वारा ध्यान आकर्षित करता है। धर्म की साधना में शान्त रस का उद्रेक पूर्ण सफलता के साथ हुआ है। लौकिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले रूपकों में या प्रेमकथा की इतिवृत्तात्मकता में शृङ्गार रस भी यथेष्ट मात्रा में वर्तमान है। अमीर खुसरो की कुछ रचनाओं में शृङ्गार ही शृङ्गार है और मुल्ला दाऊद ने तो अपनी प्रेमकहानी ही शृङ्गार का आधार लेकर लिखी थी। इसके बाद कौतूहल और विनोद में हास्य रस की पुष्टि हुई है। यदि प्रयास करके देखा जाय तो अद्भुत रस के दर्शन भी हो सकते हैं, किन्तु यह रस केवल दो स्थानों पर वर्तमान है। पहला स्थान तो ईश्वरीय विभूति की आश्चर्यजनक सीमाओं के चित्रण में है और दूसरा स्थान गोरखनाथ की उलटवाँसियों में। किन्तु ऐसे स्थल अपेक्षाकृत कम ही हैं। महत्व के दृष्टिकोण से रसों का निम्नलिखित क्रम दीख पड़ता है :—

रस

शान्त, शृङ्गार, हास्य और अद्भुत।

रसों की विविधता होते हुए भी यह समझ लेना चाहिये कि कविगण रस की अपेक्षा भावाभिव्यञ्जना को प्रमुखता देते थे।

रस की विवेचना में यह स्पष्ट हो चुका है कि कवियों ने शैली की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपेक्षा भावाभिव्यञ्जना पर अधिक ध्यान दिया है। इस प्रकार उन्होंने विविध छन्दों के लिखने की मनोवृत्ति का परिचय नहीं दिया। सिद्ध कवियों की रचना अधिकतर दो शैलियों में मिलती है। पहली तो गीत शैली है जिसमें उन्होंने चर्यागीतों की रचना की है। दूसरी शैली दोहा की है। सिद्ध कवियों ने अनेक दोहा-कोष लिखे हैं। दोहा लिखने की शैली को जैन कवियों ने बहुत अपनाया। उन्होंने तो आचार-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखने में दोहा छन्द को ही प्रधानता दी। कुछ स्थलों पर उन्होंने चौपाई छन्द भी लिखा है। यद्यपि चौपाई छन्द का प्रयोग कुछ सिद्ध कवियों द्वारा भी हुआ है तथापि जैन कवियों ने दोहा छंद के साथ चौपाई का मेल बड़ी सुन्दर रीति से किया है। स्वयंभूदेव ने अपने पउम चरिउ (जैन रामायण) में तो दोहा चौपाई का प्रयोग ही अधिकतर किया है। सम्भव है, रामकाव्य के महाकवि तुलसीदास ने स्वयंभूदेव का पउम चरिउ देखा हो और उसी शैली के अनुकरण में दोहा चौपाई शैली में अपना रामचरितमानस लिखा हो। अमीर खुसरो ने अधिकतर बहरों का अनुकरण किया है। जहाँ उन्होंने हिन्दी के छन्द रक्खे हैं वहाँ चौपाई छन्द प्रधान है। चौपाई के अतिरिक्त कहीं-कहीं सार, ताटंक और दोहा छंद भी हैं, किन्तु सब छन्दों में चौपाई ही खुसरो को विशेष प्रिय रही। उनकी सारी मुकरियाँ तो इसी छंद में हैं।

छन्द

संधिकाल में गद्यशैली के आविर्भाव की चर्चा भी है। कुछ इतिहास लेखकों के अनुसार गोरखनाथ ने नाथपंथ के प्रचार के लिए जन समुदाय के गद्य का आश्रय ग्रहण किया। उनके गद्य के कुछ अवतरण भी प्रायः उद्धृत किये जाते हैं, किन्तु जब तक किसी प्रामाणिक प्रति से उनके गद्य के अवतरणों का समर्थन नहीं हो जाता तब तक इस सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से स्थिर करना उचित प्रतीत नहीं होता।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दूसरा प्रकरण

चारणकाल

(अ) डिंगल साहित्य

सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध से हिन्दू राज्य की केन्द्रीभूत सत्ता का विनाश होना प्रारम्भ हुआ। विभाजक शक्तियों का इतना अधिक प्राबल्य हुआ कि साधारण घटनाओं ने ही राज्यों के उत्थान और पतन का बीज बोना प्रारम्भ किया। उत्तर-पश्चिम से आने वाले मुसलमानों ने इस अवसर से पूरा लाभ उठाया और बारहवीं शताब्दी में उत्तर भारत का अधिकांश भाग मुसलमानों के अधिकार में आ गया। यह काल भारत के प्राचीन इतिहास की वृद्धावस्था का ही है जिसमें शक्ति का अभाव है, विवशता का अवलम्ब है। इस काल का इतिहास अनेक छोटे-छोटे राज्यों के उत्थान और पतन की कहानी मात्र है, किसी एक महान् राज्य अथवा राजनीतिक केन्द्र का इतिवृत्त नहीं। ये छोटे-छोटे राज्य शिशुओं की भाँति छोटी-छोटी बात पर झगड़ना भी खूब जानते थे। आठवीं सदी में काश्मीर और कन्नौज में यथेष्ट संघर्ष हुआ, यद्यपि काश्मीर नरेश ललितादित्य ने कन्नौज को काश्मीर में नहीं मिलाया, शायद यह सम्भव भी न था। कन्नौज का संघर्ष मगध से भी हुआ फिर गुर्जर राज्य से भी, और कन्नौज गुर्जर राज्य में मिला लिया गया। किन्तु कन्नौज की प्रधानता बनी ही रही। देवपाल और विजयपाल के समय में कन्नौज की अवनति होनी प्रारम्भ हो गई। जयपाल (सम्वत् १०७६) के समय में तो चन्देल और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कछवाहों ने उसे और भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अन्त में राठौर जयचंद (सम्वत् १०९७) के समय में उसकी दशा ठीक हुई। जयचन्द ने कन्नौज को समृद्धिशाली बनाने में यथेष्ट परिश्रम किया और उसे वैभव से पूर्ण किया। कन्नौज का मुसलमानों के द्वारा पतन होना स्वतंत्र हिन्दू राज्यों के अस्तित्व की अन्तिम स्थिति थी। वास्तव में मुसलमानों के अन्तिम आक्रमणों के पहले कन्नौज सुसंगठित और शक्तिशाली राज्य हो गया था। गुजरात भी एक शक्तिशाली राज्य था। समुद्र के किनारे होने के कारण उसकी व्यापारिक स्थिति बहुत दृढ़ थी और उसमें धन और वैभव की राशि बिखरी हुई थी। उसके चार महान् शासक हुए। उन्हीं के कारण गुजरात पूर्ण रूप से सुसंगठित और शक्तिशाली हो गया था। प्रथम शासक मूलराज था, जिसने शक्ति और साहस के साथ शासन किया। उसी ने तलवार की नोंक से अपने राज्य की सीमा खींची। जीवन भर वह युद्ध में लगा रहा और रणभूमि की विजय-श्री से उसने अपने राज्य के वैभव की वृद्धि की। अन्त में अपने वृद्ध शरीर को उसने रणभूमि को ही समर्पित कर दिया। दूसरा महान् शासक भीम था, जिसने सम्बत् १०७९ से ११२० तक राज्य किया। इसी के समय में सोमनाथ के मंन्दिर की पवित्रता, धन के साथ महमूद के हाथों ने लूट ली और पँवार उसकी राजधानी तक बढ़ आए, पर उसने अपनी मृत्यु के समय अपने राज्य की सीमा का विस्तार किसी भाँति भी कम नहीं होने दिया। तीसरे शासक सिद्धराज ने सं० ११५० से १२०० तक राज्य किया और उसने बारह वर्षों तक पँवारों के साथ युद्ध कर उन्हें पराजित किया। कुमारपाल (सं० १२००-१२२९) ने तो मालवा की विजय का श्रेय स्वयं ही प्राप्त किया। इस प्रकार गुजरात एक बहुत शक्तिशाली राज्य हो गया था, जो मुसलमानों के आक्रमणों का प्रतिकार करता हुआ कहीं अलाउद्दीन खिलजी के शासन (सम्वत् १३५५) में नष्ट हुआ। गुजरात के शासक सोलंकी के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मालवा में पँवारों का राज्य था। इन्हीं पँवारों के वंश में राजा भोज हुए (संवत् १०६७—११०७) जो योद्धा, कवि और साहित्य के संरक्षक थे। इनके समय में मालवा की बहुत उन्नति हुई थी। बारहवीं शताब्दी में सोलंकियों ने पँवारों को बुरी तरह पराजित किया और मालवा को छोटे-छोटे भागों में विभक्त कर दिया। बारहवीं शताब्दी में अन्त के सोलंकियों की एक शाखा बघेल ने ही रीवा राज्य स्थापित किया।

कछवाहा ग्वालियर के अधिपति थे और बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ग्वालियर और नरवर पर शासन करते रहे। सम्वत् ११८६ में यह शासन परिहार वंश के हाथों में चला गया।

नवी शताब्दी में चन्देलों ने महोबा (हमीरपुर) पर विजय प्राप्त की। ये वीर ही नहीं है, वरन् कलाप्रिय भी थे। इन्होंने खजुराहों के अनेक सुन्दर मन्दिरों का निर्माण किया। सम्वत् १२५० में वे मुसलमानों के हाथ कालिंजर भी खो बैठे।

तोमर हिसार और दिल्ली के निकटवर्ती स्थानों में राज्य करते थे। कहते हैं, तोमर वंश ने ही दिल्ली की नींव डाली, पर दिल्ली का महत्व अनंगपाल द्वितीय (सम्वत् ११०९) के बाद ही प्रकट हुआ। तोमर और चौहान सदैव परम्परा के शत्रु थे।

संक्षेप में यदि चारणकाल को राजनीतिक परिस्थितियों पर विचार किया जावे तो ज्ञात होगा कि राठौर, सोलङ्की, पँवार, कछवाहा, परिहार, चन्देल, तामर, भीर, अहिर, गहलोत और चौहान वंश इस समय राजनीति का शासन कर रहे थे। राजनीतिक परिस्थिति बहुत अनिश्चित थी। परस्पर युद्ध करने में ये राजे सदैव सन्नद्ध रहा करते थे और अपने राज्य को अपनी मर्यादा के सामने तुच्छ समझते थे। कोई ऐसा वर्ष नहीं था जब कि इन राजाओं में से किसी में पारस्परिक विग्रह न होता हो। इन सब राजाओं के सामने मुसलमानी आतंक अपनी निर्दयता और उच्छृङ्खलता के साथ अनेक रूप रखा करता था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपनी मर्यादा और गौरव की रक्षा करने के लिए युद्ध वीर राजपूत युद्ध-दान के लिए सदैव प्रस्तुत रहा करते थे। देश की शान्ति रक्तधारा में बही जा रही थी।

(अ) डिंगल साहित्य (सं० ११००—११७५)

ऊपर कहा जा चुका है कि अपभ्रंश के अन्तिम काल में जब हिन्दी का प्रारम्भ हुआ तो काव्य परम्परा के आधार पर हिन्दी दो भागों में विभाजित हुई— डिंगल तथा पिंगल। डिंगल राजस्थान में नागर अपभ्रंश से प्रभावित हिन्दी की साहित्यक भाषा का नाम है और पिंगल मध्य देश की भाषा का। हमें यहाँ डिंगल पर विचार करना है।

डिंगल पर अपना मत प्रदर्शित करते हुये टेसीटरी लिखते हैं:— डिंगल का न तो 'डगर' से कोई सम्बन्ध है और न राजपूताना के चारण और पंडितों द्वारा बतलाई हुई विचित्र और अद्भुत शब्द रूपावली से। वह केवल एक विशेष रूप है, जिसका अर्थ है "गड़बड़" अर्थात् जो ऊँचे कवित्व के अनुसार नहीं है। सम्भवतः जो असंस्कृत है।[1]

कुछ लोगों का मत है कि मध्य देश की पिंगल नाम से प्रसिद्ध हिन्दी के समानान्तर ही डिंगल शब्द की सृष्टि हुई है। तीसरा मत यह है कि डिंगल शब्द की उत्पत्ति डिम् (डम) गल से हुई है। डिम् (डम्) का तात्पर्य डमरू की ध्वनि से है और गल का तात्पर्य है गले से गुञ्जित

---

[1] The Term Dingala which bas nothing to do with 'Dagar' nor with any other of the fantastic etymology proposed by the bards and Pandits of Rajputana, but is a mere adjective, meaning probably "'Irregular" i. e., not in accordance with standard poetry or probably Vulgar—*Journal of the Asiatic Society of Bengal Vol. X. No. 10, 1914 Page. 376.*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होने वाली। तांडव नृत्य करने वाले प्रलयंकर शंकर के हाथ में डमरू बाजे से वीर और रौद्र रस की जागृति होती है। इस प्रकार डमरू के समान ध्वनि करने वाली कविता जो वीरों के हृदय में उत्साह और क्रोध की जागृति कर दे, वही डिंगल कविता है।

डिंगल काव्य पिंगल की अपेक्षा प्राचीन है। इतना तो निश्चय है कि व्रजभाषा में काव्य-रचना के पूर्व से ही राजस्थान में काव्य-रचना होने लगी थी। अतएव पिंगल के आधार पर पिंगल नाम होने की अपेक्षा यही उचित ज्ञात होता है कि डिंगल के आधार पर पिंगल का उपयोग किया गया होगा। इस कथन की सार्थकता इससे भी ज्ञात होती है कि पिंगल का तात्पर्य छन्द शास्त्र से है। व्रजभाषा न तो छन्द-शास्त्र ही है और न उसमें रचित काव्य—केवल छन्द-शास्त्र के नियमों के निरूपण के लिए ही हैं। अतएव पिंगल शब्द व्रजभाषा काव्य के लिए एक प्रकार से अनुपयुक्त ही माना जाना चाहिये। हाँ, यह अवश्य है कि व्रजभाषा काव्य में छन्द-शास्त्र पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया गया है और सम्भवतः यही कारण है कि उसका नाम पिंगल रक्खा गया है।

डिंगल साहित्य का इतिहास जानने के पूर्व यह आवश्यक है कि हम उस समय की राजनीति पर भी थोड़ा-सा विचार कर लें, क्योंकि राजनीतिक परिस्थियों ने डिंगल साहित्य पर यथेष्ट प्रभाव डाला है।

सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हिन्दू राज की केन्द्रीभूत सत्ता का विनाश होना आरम्भ हुआ। विभाजक शक्तियों का इतना प्राबल्य हुआ कि साधारण घटनाओं ने ही राज्यों के उत्थान तथा पतन का बीज बोना प्रारम्भ किया। उत्तर-पश्चिम से आने वाले मुसलमानों ने इससे पूर्ण लाभ उठाया और बारहवीं शताब्दी में उत्तर भारत का अधिकांश भाग यवनों के हाथ में आ गया। यह काल भारत के प्राचीन इतिहास की वृद्धावस्था का ही है जिसमें शक्ति का अभाव तथा विवशता का आलम्बन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इस समय का इतिहास अनेक छोटी-छोटी रियासतों के उत्थान और पतन की कहानी मात्र है। ये छोटे-छोटे राज्य शिशुओं की भाँति छोटी-छोटी बातों पर झगड़ना जानते थे।

राजनीतिक क्षेत्र में विप्लव होने के कारण साहित्यिक क्षेत्र में भी शान्ति नहीं रही। राजस्थान राजनीति का प्रधान क्षेत्र होने के कारण, अपने यहाँ के चारणों को मौन न रख सका। अपभ्रंश भाषा भी उसी समय पुराने संस्कारों को छोड़ कर नवीन रूप धारण करने का प्रयत्न कर रही थी। उसी अपभ्रंश की डिंगल भाषा में चारणों की कविता प्रवाहित हो उठी। इसके साथ ही देश के किसी कोने में बैठकर कविगण मुसलमानी आंतक भुलाने के लिए धर्म की कविता भी कर देते थे।

हिन्दी साहित्य के आदि काल में सात कवियों का उल्लेख हमारे इतिहासकार करते चले आये हैं। यद्यपि उन सात में से किसी की एक भी पंक्ति उपलब्ध नहीं है।

१—प्रथम कवि पुंड या पुष्प कहा जाता है जिसका आविर्भाव-काल सं० ७७० माना जाता है।

२—दूसरे अज्ञात कवि का जो ग्रन्थ प्राप्त हो सका है, वह है खुमान रासो। एक स्थान पर कवि का नाम दलपति-विजय मिलता है। इसमें चित्तौराधिपति खुमान द्वितीय का वृतान्त मिलता है। यह प्रति अपूर्ण है। इसमें चित्तौर के महाराणा प्रताप तक का हाल दिया गया है, जिससे प्रकट होता है कि यह प्रति समय-समय पर कवियों के द्वारा नवीन सामग्री पाती ही रही है। अब यह अपने पूर्व रूप में नहीं है। खुमान का समय सं० ८८७ माना जाता है और महाराणा प्रताप का समय विक्रमी १७ वीं शताब्दी है। इस प्रकार खुमान रासो लगभग ८०० वर्ष के परिमार्जन का ग्रन्थ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३—मसूद ।

४—कुतुबअली ।

५—सांईयान ।

६—अकरम फैज ।

इनकी रचनाएँ अप्राप्य हैं और इनका समय सं० ११८० से १२०५ तक माना जाता है ।

७—इनके बाद चन्दबरदाई का नाम आता है जिसका समय सम्वत् १२८४ है । अभी तक के इतिहास की यह स्थिति है । चन्दबरदाई के पूर्व दो कवियों के नाम और लिये जाते हैं ।

प्रथम कवि भुवाल हैं, जिन्होंने दोहा और चौपाई में भगवद्गीता का अनुवाद किया है । इनका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी माना गया है । इस निश्चय का आधार उनका एक दोहा है, जो इस प्रकार है :—

"संवत् कर अब करौं बखाना ।
सहस्र सो सम्पूरन जाना ॥
माघ मास कृष्ण पक्ष भयऊ ।
दुतिया रबि तृतीया जो भयऊ ॥"

अर्थात् ग्रन्थ की रचना सं० १००० में माघ कृष्ण पक्ष की द्वितीया तथा तृतीया तिथि; दिन रविवार को हुई किन्तु गणना के अनुसार यह तिथि सं० १००० में रविबार को नहीं पड़ती है । वह समय सं० १७०० में माघ कृष्ण रविवार को आता है जब द्वितीया के बाद उसी दिन तृतीया लग जाती है । अतः सं० १७०० अधिक समीचीन जान पड़ता है । उसकी भाषा भी १० वीं शताब्दी की नहीं मानी जा सकती । छन्द भी १७ वीं शताब्दी का है ।

दूसरे कवि जिनकी चन्द के पूर्व होने की शंका की जाती है, वे मोहनलाल द्विज हैं—जिन्होंने पत्तलि नामक ग्रन्थ लिखा है; जिसमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीकृष्ण जी की बारात के भोजन की पत्तलि की विविध भोजन सामग्री का वर्णन है। इस ग्रन्थ का समय सं० १२४७ माना जाता है। प्रमाण कवि की निम्न पंक्तियाँ हैं :—

"सुनौ कहै यह सम्वत् जानौ।
बारह सानौ, सैता लानौं ॥"

इसका तात्पर्य सम्वत् १२४७ से लिया जाता है किन्तु इनकी भाषा इतनी आधुनिक है कि वह १३ वीं शताब्दी की भी नहीं जान पड़ती है। डा० हीरालाल के अनुसार "बारह सानौ" शुद्ध पाठ न होकर "ठारह सानौ" शुद्ध पाठ है। अतः मोहनलाल का समय १८ वीं शताब्दी है।

वीसलदेव रासो

चारण-काल के इन अनिश्चित कवियों के बाद जो निश्चित कवि हुआ वह नरपति नाल्ह है जिसके गीतात्मक ग्रन्थ का नाम वीसलदेव रासो है। गीतात्मक होने के कारण इसकी भाषा में अनेक परिवर्तन हुए। परन्तु वे परिवर्तन अभी तक सम्पूर्णतः भाषा का स्वरूप विकृत नहीं कर सके। इसमें अपभ्रंश का अधिक प्रयोग है। इसलिये यह अपभ्रंश की अन्तिम बोल-चाल की भाषा में लिखा गया है। वीसलदेव रासो का व्याकरण अपभ्रंश के नियमों का पालन करता है।

नरपति नाल्ह

वीसलदेव का काल-निर्णय हमें इस प्रकार से मिलता है :—

जयपाल जो नवम्बर १००१ में पुनः सुल्तान महमूद से पराजित हुआ था, आत्मघात करके मर गया। उसका पुत्र अनंगपाल उत्तराधिकारी हुआ जो अपने पिता की भाँति अजमेर के चौहान राजा वीसलदेव के नेतृत्व में हिन्दू शक्तियों के संघ में सम्मिलित हुआ। अतः वीसलदेव का समय १००१ सन् या सं० १०५८ माना जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार वीसलदेव का समय संवत् १०३०—१०५६ माना गया है। नाल्ह ने पुस्तक-रचना की तिथि इस प्रकार दी है :—

"बारह से बरहोत्तर मंजार।
माघ सुदी नवमी बुधवार॥"

मिश्र बन्धुओं ने इसे सं० १२२० माना है परन्तु पं० रामचन्द्र शुक्ल ने सं० १२१२ माना है।

इस ग्रन्थ का विस्तार २००० चरणों में है। इसके चार खण्ड हैं। पहले खण्ड में मालवा के अधिपति श्री भोज परमार की पुत्री का वीसलदेव के साथ विवाह हुआ। दूसरे खण्ड में वीसलदेव की उड़ीसा की ओर रण-यात्रा है। तीसरे में राजमती का वियोग वर्णन और वीसलदेव का चित्तौर-गमन है। चौथे खण्ड में श्री भोज का आकर अपनी कन्या को ले जाने इत्यादि का वर्णन है।

कथावस्तु पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कथा गीतिरूप में होते हुए भी प्रबन्धात्मकता लिए हुए है। कथावस्तु अनेक प्रकार की घटनाओं से निर्मित है, जिसमें वीर रस की अपेक्षा शृङ्गार रस ही प्रधान स्थान प्राप्त कर सका है। भाषा यद्यपि अपने असंस्कृत रूप में है तथापि उसमें साहित्यिक सौंदर्य की छटा यत्र-तत्र है।

लोकरंजन के लिए वीसलदेव रासो में काव्य का सौंदर्य मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से अनेक प्रसंगों में सजाया गया है। उसमें जीवन के स्वाभाविक विचार, गृहस्थ जीवन के सरल विश्वास, जन्मांतरवाद, शकुन, संस्कार, बारहमासा आदि बड़ी सरसता के साथ चित्रित किए गए हैं। स्थानीय प्रथाओं और व्यवहारों का भी बड़ा स्वाभाविक वर्णन है। इस प्रकार इस काव्य में स्थानीय अनुरंजन विशेष मात्रा में है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यद्यपि वीसलदेव रासो अपने वास्तविक रूप में नहीं पाया जा सकता, क्योंकि वह मौखिक और गेय रहा है, तथापि इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि जन साधारण की भाषा में भी रचना होने लगी थी और उसमें उस समय के प्रचलित सभी प्रकार के शब्द कविता में रखे जा सकते थे। इतिहास की घटनाओं का वर्णन भी साहित्य के अन्तर्गत आ गया था, क्योंकि साहित्य इस समय वीर पूजा अथवा धर्म और राजनीति के नेता के गौरव का गीत था। सत्य और धर्म के किसी भी अग्रणी का जीवन-चरित उस समय साहित्य था। राजनीति और साहित्य का इतने समीप आ जाना हिन्दी साहित्य के इतिहास में चारण-काल की विशेषता है।

पृथ्वीराज रासो

यह डिंगल-साहित्य का सर्वप्रथम प्रबन्धात्मक काव्य कहा जाता है। चन्द हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम महाकवि माना गया है। चन्द ने पृथ्वीराज चौहान की कीर्ति-गाथा ६९ समय में वर्णित की है। वह लाहौर निवासी था पर उसके जीवन का महत्वपूर्ण भाग दिल्ली में पृथ्वीराज के साहचर्य में व्यतीत हुआ। वह पंडित और विद्वान् था, क्योंकि रासो में उसने काव्य की अनेक रीतियाँ प्रदर्शित की हैं।

चन्दबरदाई

रासो एक महान् ग्रन्थ है। ढाई हजार पृष्ठों से अधिक होने के कारण उसका प्रकाशन अधिक समय तक नहीं हुआ। अभी तक रासो की निम्नलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हो सकी हैं :—

१—बैदला (The Baidla) प्रति।
२—रायल एशियाटिक सोसाइटी में सुरक्षित कर्नल टाड की प्रति।
३—कर्नल कालफील्ड की प्रति।
४—बोदलियन की प्रति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५—आगरा कालेज की प्रति।

उपर्युक्त पाँच प्रतियाँ प्रामाणिक मानी जाती हैं। इनके अलावा बीकानेर में "पृथ्वीराज रासो" की दो प्रतियाँ और मिली हैं।

जहाँ तक ऐतिहासिक घटनाओं का सम्बन्ध है, रासो पूर्ण रूप से भ्रम-पूर्ण है। हिन्दी के कुछ विद्वान् रासो को अप्रामाणिक कहते हैं। उनके प्रमाण इस प्रकार हैं :—

१—इसमें इतिहास सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियाँ हैं, जो शिला-लेखों से ज्ञात होती हैं।

२—इसकी तिथियाँ पूर्णतया अशुद्ध हैं।

३—इसमें १०% ऐसे उर्दू और फारसी के शब्दों का प्रयोग हुआ है जो चन्द के समय में प्रयुक्त नहीं होते थे।

४—भाषा अनुस्वारांत है और उसमें स्थिरता नहीं है।

इन सब बातों के विरोध में मिश्रबन्धुओं ने डा० श्यामसुन्दर दास से अनेक बातों में सहमत होकर निम्नलिखित प्रमाण उपस्थित किये हैं :—

१—इतिहास सम्बन्धी भ्रान्तियों के तीन कारण हैं :—

(क) चन्द ने अपने स्वामी का अतिशयोक्तिपूर्ण प्रताप वर्णन किया है। कवि के लिये यह स्वाभाविक ही है।

(ख) जो भ्रान्तियाँ मालूम पड़ती हैं वे वास्तव में भ्रान्तियाँ नहीं हैं, क्योंकि ना० प्र० सभा की ओर से प्रकाशित कुछ तत्कालीन पट्टे, परवानों से उनकी पुष्टि होती है।

(ग) यदि वे वास्तव में भ्रान्तियाँ हैं तो क्षेपकों के कारण हो सकती हैं।

२—तिथियों के विषय में मिश्रबन्धु यह कारण देते हैं कि रासो में जो ६० वर्ष कम पड़ते हैं उससे प्रकट होता है कि उन्होंने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधारण विक्रमीय संवत् का प्रयोग नहीं किया। उसमें किसी ऐसे संवत् का प्रयोग हुआ है जो विक्रमी संवत् से ९० वर्ष कम है। यह 'आनन्द' संवत् हो सकता है।

३—फारसी अरबी शब्दों के विषय में मिश्रबन्धु तथा डा० श्यामसुन्दरदास की यह राय है कि शहाबुद्दीन गोरी से लगभग २०० वर्ष पूर्व महमूद गजनवी भारत आ चुका था। गजनवी से ३०० वर्ष पूर्व सिन्ध पर यवनों का राज्य था। पंजाब यवन संस्कृति से प्रभावित हो चुका था। चंद लाहौर का निवासी था, अतः अरबी, फारसी शब्द उसके मस्तिष्क में थे।

४—भाषा की शब्द-रूपावली के सम्बन्ध में मिश्रबन्धु का कथन है कि भाषा के नवीन रूप जहाँ 'रासो' की अर्वाचीनता को सिद्ध करते हैं, वहाँ प्राचीन रूप 'रासो' की प्राचीनता को भी प्रमाणित करते हैं। प्रक्षिप्त अंशों के कारण ही भाषा की शब्द-रूपावली अर्वाचीन हो गई है, नहीं तो 'रासो' का वास्तविक रूप प्राचीनता ही लिए हुए है।

दोनों प्रमाणों को ध्यान में रखकर 'रासो' की प्रामाणिकता पर कुछ निश्चित रूप से कहना बहुत ही कठिन है। 'रासो' हमारे साहित्य का आदि ग्रन्थ है। वह प्राचीन काल से श्रद्धा की दृष्टि से देखा गया है। उसमें हमारे साहित्य का श्रीगणेश हुआ है, अतः उसके विरुद्ध कुछ कहना अपने साहित्य की प्राचीन सम्पत्ति को देना है। परन्तु वर्तमान खोजों से उसकी अप्रामाणिकता ही सिद्ध होती है।

'रासो' के पश्चात् दो ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है जिनके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है। प्रथम ग्रन्थ है 'जयचंद-प्रकाश' जिसका लेखक भट्टकेदार कहा जाता है। इसमें कन्नौज के जयचन्द का गुणगान है। इस ग्रन्थ का परिणाम भी अज्ञात है क्योंकि वह अभी तक अप्राप्य है। उसका केवल निर्देश मात्र' 'राठौड़ा री ख्यात'' नामक संग्रह ग्रन्थ में मिलता है। अतः ''जयचन्द प्रकाश''

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी साहित्य के इतिहास में केवल स्मरण कर लेने की वस्तु है। भट्ट केदार का समय सम्वत् १२२५ माना गया है।

दूसरा ग्रन्थ 'जय मयंक जस चन्द्रिका' है जिसमें जयचन्द की कीर्ति का वर्णन है। इसके कवि का समय सं० १२४० माना गया है। यह भी अप्राप्य है। इसका केवल उल्लेख उपर्युक्त "ख्यात" में पाया जाता है।

पृथ्वीराज विजय

ऐतिहासिकता की दृष्टि से 'पृथ्वीराज विजय' का बहुत महत्व है, क्योंकि इसमें अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान (अजमेर) का वीरत्वपूर्ण वर्णन है। इस ग्रन्थ की केवल एक ही प्रति प्राप्त है जो शारदा लिपि में लिखी गई है और पूना के दक्षिण कालेज लायब्रेरी में सुरक्षित है। यह प्रति डा० बुलर द्वारा काश्मीर में प्राप्त की गई थी, जब वे सन् १८७५ में संस्कृत ग्रन्थों की खोज में वहाँ पर्यटन कर रहे थे।

जयानक

हस्तलिखित प्रति बहुत ही खराब दशा में है। प्राचीन होने के कारण प्रति के नीचे का हिस्सा टूट गया है जिससे पाठ का क्रम भंग हो जाता है। उस पुस्तक में जो बारह सर्ग प्राप्त हुए हैं, उनमें से एक भी सम्पूर्ण नहीं है। प्रारम्भिक भाग भी नहीं है। बाएँ हाथ की ओर का स्थान जहाँ पृष्ठ संख्या दी हुई है, भंग हो गया है, जिससे पृष्ठों का तारतम्य भी नहीं मिलाया जा सकता। केवल सन्दर्भ के द्वारा पृष्ठ क्रम से लगाये जा सकते हैं। हस्तलिखित प्रति में लेखक का नाम भी नहीं मिलता। ऐसा ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का लेखक पृथ्वीराज का दरबारी कवि रहा होगा क्योंकि प्रथम सर्ग में पृथ्वीराज के उस ग्रन्थ के सुनने की इच्छा का निर्देश है। लेखक काश्मीरी पंडित ही होगा क्योंकि :—

१. मंगलाचरण और प्रारम्भ में कवियों की आलोचना बिल्हण की रीति के अनुसार ही है।

२. काश्मीर की अत्यधिक प्रशंसा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३. राजस्थान के लिए महान् उपयोगी ऊँट की निन्दा की गई है। यदि लेखक राजस्थानी होता तो संभवतः वह ऐसा कभी न करता।

४. दूसरी राज-तरंगिणी के लेखक काश्मीरी कवि जोनराज ने उसकी व्याख्या की है।

५, जहाँ तक ज्ञात है इस ग्रन्थ का निर्देश और उद्धरण केवल काश्मीरी कवि जयरथ ने ही किया है।

यह सम्भव है कि बारहवें सर्ग में (प्रति के अंत में) पृथ्वीराज के दरबार में जो जयानक नामी काश्मीरी कवि आता है, वही 'पृथ्वीराज विजय' का निर्माता हो। किन्तु जब तक इस ग्रन्थ की पूर्ण प्रति नहीं मिल जाती तब तक इसका निर्णय होना कठिन ही है।

इस ग्रन्थ का रचनाकाल पृथ्वीराज के समय में ही होना ज्ञात होता है, क्योंकि जयरथ (ईस्वी सन् १२००) अपने ग्रन्थविमर्षिनी में 'पृथ्वीराज विजय' से ही उद्धरण लेता है।

अतएव इसका रचनाकाल सन् १२०० के बाद नहीं हो सकता। 'पृथ्वीराज विजय' के एकादश सर्ग में गुजरात के राजा भीमदेव की विजय मुहम्मद गोरी पर वर्णित की गई है। तबकात इ नासिरी के अनुसार यह घटना हिजरी ५७४ या ११७८ सन् की है। इससे ज्ञात होता है कि 'पृथ्वीराज विजय' की रचना सन् ११७८ के बाद ही हुई होगी। अतः 'पृथ्वीराज विजय' का रचनाकाल सन् ११७८ और १२०० के बीच में माना जाना चाहिए।

साहित्यिक महत्व के अतिरिक्त ऐतिहासिक महत्व भी इस ग्रन्थ का बहुत अधिक है, क्योंकि अनेक स्थानों पर पाये हुए शिलालेखों के द्वारा भी इस ग्रन्थ की घटनाओं की पुष्टि होती है।

यह नहीं कहा जा सकता कि यह ग्रन्थ कितना बड़ा है। पर यह निश्चय है कि इस ग्रन्थ में और भी सर्ग अवश्य रहे होंगे। इसमें गोरी और पृथ्वीराज की विजय का वर्णन तो अवश्य ही होना चाहिए, क्योंकि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वह पृथ्वीराज की सबसे बड़ी विजय है और उसका इस ग्रन्थ में विशेष स्थान रहना चाहिए। ग्रन्थ का नाम ही ऐसा होता है।

आल्हखण्ड

जगनिक (सं० १२३०) का यह एक वीर रस प्रधान गीतिकाव्य माना जाता है। इसकी कोई प्रतिलिपि उपलब्ध नहीं है। पृथ्वीराज की मृत्यु के ११ साल बाद महोबा का पतन हुआ। साथ ही परमाल का यश जो इस ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय है, विस्मृत हो गया। इस ग्रन्थ के लेखक का नाम भी अज्ञात है। केवल जनश्रुति इस बात की सूचना देती है कि वह जगनिक द्वारा रचित है। यह रचना उत्तरी भारत में बड़ी लोकप्रिय रचना है। इसका साहित्यिक महत्व इतना नहीं है जितना जन-साधारण की रुचि के अनुसार इसका प्रचलन है। मौखिक होने के कारण इसका पाठ अत्यंत विकृत हो गया है। भावों के साथ इसकी भाषा में भी अन्तर हो गया है और बारहवीं शताब्दी में रचित होने पर भी इसमें 'बन्दूक' और 'पिस्तौल' शब्द आ गये हैं।

जगनिक

इसे लेखबद्ध करने का प्रथम श्रेय सर चार्ल्स इलियट को है जिसने सन् १८६५ में इसे अनेक भाटों की सहायता से फर्रुखाबाद में लिखवाया। इसके अतिरिक्त सर जार्ज ग्रियर्सन ने बिहार में और विसेंट स्मिथ ने बुन्देलखण्ड में इसका संग्रह किया।

यद्यपि 'आल्हा' 'रासो' के महोबा खण्ड की कथा से साम्य रखता है परन्तु उसकी रचना स्वतन्त्र है। आल्हा की रचना कनौज और महोबा के गौरव से सम्बद्ध है। दोनों रचनाओं में सिरसा युद्ध तथा मलखान की मृत्यु का निर्देश अवश्य है, परन्तु दोनों की वर्णन-शैली सर्वथा भिन्न हैं। 'रासो' में महत्व केवल दिल्ली के चौहान वंश को है; पर प्रस्तुत रचना में दिल्ली के चौहान, कन्नौज के राठौर और महोबा के चन्देल अपनी शक्ति का परिचय देते हैं। दोनों ग्रन्थों की भाषा में भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

महान् अन्तर है। फलतः आल्हा को एक स्वतंत्र रचना मानने पर बाध्य होना पड़ता है।

आल्ह खण्ड में अनेक दोष हैं, जो इस प्रकार हैं :—

१—इस ग्रन्थ में पुनरुक्ति की भरमार है। युद्ध में एक ही प्रकार का वर्णन, एक ही प्रकार की शस्त्रसूची, एक ही प्रकार के दृश्यों का वर्णन है, जिन्हें पढ़कर जी ऊबने लगता है।

२—मौखिक होने के कारण कथा में सम्बद्धता नहीं है।

३—कथा में विस्तार होने के कारण यत्र-तत्र शैथिल्य आ गया है।

४—कवि को अच्छा भौगोलिक ज्ञान नहीं था। कारण कि स्थानों की दूरी के सम्बन्ध में उसके बहुत से वर्णन अशुद्ध हैं।

५—अतिशयोक्ति तो हास्यास्पद हो गई है।

हम्मीर रासो

शारंगधर

शारंगधर का आविर्भाव १४ वीं शताब्दी में हुआ। इनके द्वारा लिखे गए 'हम्मीर रासो' में रणथम्भौर के राजा हम्मीर का गौरव-गान है। अलाउद्दीन की सेना से हम्मीर का जो युद्ध हुआ था उसका इसमें ओजस्वी वर्णन है।

इसकी प्रामाणिक प्रति अप्राप्य है। इतिहासकार इसका निर्देश मात्र करते चले आ रहे हैं। जिस ग्रन्थ के आधार पर इसका प्रकाशन हुआ है वह असली नहीं है। भाषा से प्रकट होता है कि किसी परवर्ती कवि ने इसकी रचना की है। इसके लेखक का समय सं० १३५७ माना जाता है।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त एक और ग्रन्थ हम्मीर की यशोगाथा के विषय में प्राप्य है। उसका नाम है 'हम्मीर महाकाव्य'। इसका लेखक जैन कवि जयचन्द्र था जो सं० १४६० के लगभग हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विजयपाल रासो

'विजयपाल रासो' के रचयिता नल्य सिंह ने इसमें करौली नरेश विजयपाल के युद्ध का ओजपूर्ण वर्णन किया है।

नल्य सिंह

भाषा यद्यपि अपभ्रंश है तथापि उसमें परिवर्तन के चिह्न हैं। ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से साधारण कोटि का है। नल्य का समय सं० १३५५ माना गया है।

अन्य ग्रन्थ

यह ग्रन्थ बीकानेर के राव जैतसी की प्रशंसा में लिखा गया है। बाबर के पुत्र कामरान ने जब भटनेरा को जीत कर बीकानेर पर चढ़ाई की, तब राव जैतसी ने उसे वीरता के साथ मार भगाया और अभूतपूर्व विजय प्राप्त की। उसी विजय का स्तवन इसमें किया गया है। प्रारम्भ में जैतसी की वंशावली का वर्णन है। यह वंशावली बड़े विस्तार के साथ वर्णित है। जैतसी के पूर्वज राव बीको और राव लूंबकरण की प्रशंसा बहुत की गई है। साथ ही साथ उनके जीवन की घटनाएँ भी बहुत वर्णित हैं। अतः इतिहास के दृष्टिकोण से इस ग्रन्थ का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। राव जैतसी का वर्णन भी बहुत विस्तार से है। कामरान से युद्ध में तो कवि ने प्रत्येक राजपूत वीर और उनके घोड़ों का भी वर्णन किया है। राव जैतसी की मृत्यु सम्वत् १५९८ में हुई। यह ग्रन्थ राव जैतसी के जीवन में ही कामरान पर विजय प्राप्त करने के बाद सम्वत् १५९१ में लिखा गया ज्ञात होता है। अतः इसका रचनाकाल सम्वत् १५९१ और १५९८ के बीच में मानना चाहिये।

जैतसी रानै पाबू जीरा छन्द

शिवदास चारण ने गागुरण के खीची शासक अचलदास की उस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वीरता का वर्णन किया है, जो उन्होंने माड़व के पातिशाह के साथ युद्ध में दिखलाई थी। उस युद्ध में अचलदास वीर-गति को प्राप्त हुए। माड़व के पातिशाह ने जब गागुरण पर चढ़ाई की तो अचलदास ने रानियों तथा अन्य स्त्रियों से जौहर कराकर स्वयं तलवार हाथ में लेकर शत्रु का सामना किया। शिवदास चारण ने यह सब आँखों देखा वर्णन किया है और उन्होंने इस युद्ध से बच कर अचलदास की कीर्ति गाथा कहने के लिए ही अपनी रक्षा की। इसमें वीरता का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है। माड़व के पातिशाह के सहायक रूप में उन्होंने दिल्ली के आलम गोरी को युद्ध में ला खड़ा किया है।

अचलदास खीची री वचनिका सिवदास री कही

शैली पुरानी और सीधी सादी है, पर डिंगल साहित्य की अच्छी रचना मानी जाती है। इसका रचनाकाल संवत् १६१५ माना गया है।

माधवानल, कामकन्दला की प्रेम-कहानी राजस्थान में बहुत प्रचलित है। इस ग्रन्थ की पाँच हस्तलिखित प्रतियाँ बीकानेर राज्य में ही प्राप्त हो चुकी हैं। यह प्रति मारवाड़ी दूहा में लिखी गई है। इसके लेखक नरसा के पुत्र गणपति हैं। इन्होंने इसकी रचना नर्मदा तट पर आभ्रंपद्र नामक स्थान पर की। रचना-काल संवत् १५८४ है। इसके साथ माधवानल कामकन्दला चरित्र भी मिलता है, जो वाचक कुशललाभ द्वारा जैसलमेर में संवत् १६१६ में लिखा गया। यह रावल माल दे के राज्य में कुमार हरिराज के मनोरंजनार्थ लिखा गया था।

माधवानल प्रबन्ध दोग्धबन्ध कवि गणपति कृत

तुलसीदास जिस समय मानस के द्वारा भक्ति का प्रचार करने में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संलग्न थे, उस समय राजस्थान में एक कवि शृङ्गार-काव्य की सृष्टि में कटिबद्ध था। राजस्थान तो राजपूतों की जन्मभूमि रही है और उसने अनेकों बार रक्त में स्नान कर अपनी मर्यादा की रक्षा करने में ही अपने व्यक्तित्व की सार्थकता समझी है। किन्तु शृङ्गार में भी वह अद्वितीय है। इसी के प्रमाणस्वरूप हमारे सामने बीकानेर के राठौर पृथ्वीराज की 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' रचना है।

क्रिसन रुकमणी री वेलि राज प्रिथीराज री कही

वेलि की रचना संवत् १६३७ में हुई थी। उसका कथानक रुक्मणी हरण, कृष्ण रुक्मणी विवाह विलास और प्रद्युम्न जन्म में सम्पूर्ण हुआ।

कथावस्तु और रचनाकाल

वेलि का आधार भागवत पुराण ही है। स्वयं लेखक ने उसका उल्लेख किया है।

डिंगल के अनुसार जिस छन्द में वेलि की रचना हुई है वह वेलियों गीत के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें चार चरण होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण की रचना एक समान होती है। उसमें तुकांत भी रहता है। प्रथम और द्वितीय पंक्तियों की रचना भिन्न प्रकार से पाई जाती है। प्रथम पंक्ति में १८ और तृतीत पंक्ति में १६ मात्राएँ तथा द्वितीय और चतुर्थ पंक्तियों में १३, १४ या १५ मात्राएँ होती हैं। यदि द्वितीय और चतुर्थ पंक्ति में ।। है तो १३ मात्रा, यदि । ऽ है तो १४ मात्रा और यदि ऽ। है तो १५ मात्रा। वेलि में ३०५ पद्य हैं। विषय है रुक्मिणी का शैशव, सुकुमार शरीर में यौवन का मादक उभार, सौन्दर्य के वसन्त में अंगों की आकर्षक शोभा। शिशुपाल की ओर उसके विवाह का विचार। रुक्मिणी का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम और पत्र-लेखन। कृष्ण का आगमन और अम्बिका के मन्दिर में रुक्मिणी से मिलाप, रुक्मिणी हरण, शिशुपाल और रुक्मि से युद्ध और उनकी पराजय, श्रीकृष्ण का रुक्मिणी सहित द्वारिका गमन और दोनों का यथाविधि विवाह,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रात्रि का आगमन और कृष्ण की रुक्मिणी से मिलने की उत्कट इच्छा। रुक्मिणी की लज्जा और श्रीकृष्ण का उल्लास, दोनों का मिलन। षट् ऋतु वर्णन—ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, बसन्त। प्रद्युम्न जन्म; तत्पश्चात् प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का विवरण। वेलि की प्रशंसा काम-धेनु के रूप में, कवि की आत्मप्रशंसा। भाषा में सौन्दर्य के साथ प्रवाह है। डिंगल के सभी नियमों का पालन करते हुए भी शब्दावली विकृत नहीं है। कविता में केवल स्वाभाविकता ही नहीं है, वरन् उसमें संगीत भी है। पृथ्वीराज की काव्यकला ने हमें डिंगल साहित्य का सुन्दर नमूना दिया है। वेलि के अतिरिक्त पृथ्वीराज ने हमें छोटे-छोटे पद्य भी दिए हैं, जो साखरा गीत के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सम-सामयिक घटनाओं और व्यक्तियों के जीवन का विवरण देते हैं।

विशेषता

वेलि की विशेषता यही है कि उसमें भक्ति की भावना के साथ श्रृङ्गार की रसीली साधना भी है। भक्ति और रीतिकाल की प्रवृत्तियों का एक स्थान पर सम्मिलन इसी पुस्तक में है। षट्-ऋतु वर्णन और मुग्धा मानिनी नायिका का निरू-पण हमारे सामने रीतिकाल की आत्मा का प्रदर्शन करता है। भक्ति के युग में रीति का यह मनोरंजक और सरस वर्णन हमारे साहित्य की अनोखी वस्तु है। इसका सारा श्रेय राठौड़ पृथ्वी-राज को है।

२. डिंगल साहित्य का ह्रास

चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही वीरगाथा काल की रचना क्षीण होने लगी। इसका प्रधान कारण राजनीति की परिस्थितियों के परिवर्तन में ही पाया जा सकता है। मुसलमानों के प्रभुत्व ने हिन्दू राजाओं को जर्जरित कर दिया था अथवा हिन्दू राजा स्वयं ही लड़ते-लड़ते क्षीण हो गये थे। इसलिए न तो उनके पास गौरव की गाथा गाने की सामग्री ही थी और न कवियों के हृदय में उत्साह ही रह गया था। राज्य क्षीण होने के कारण कवियों का महत्व भी क्षीण हो गया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था और वे अब किसी राजदरबार में सम्मानित होने का अवसर नहीं पा सकते थे। अतएव चारणों के अभाव में वीरगाथा का महत्व दिनो-दिन कम होता जा रहा था।

इस समय मुसलमानी राज्य का प्रभुत्व हिन्दुओं के हृदयों में जान पड़ने लगा था। मुसलमानों की प्रवृत्ति केवल लूटमार कर जनसंचय की न होकर भारत में राज्य करने की हो चली थी। पंजाब से लेकर बंगाल तक मुसलमानों का आधिपत्य हो गया था। बिहार, बंगाल, रणथम्भोर, अह्लवाड़ा, अजमेर, कन्नौज, कालिंजर आदि प्रधान स्थानों में मुसलमानी शासन स्थापित हो चुका था। राठौर और चौहान वंश के पराक्रम का सूर्य ढल चुका था। इतना अवश्य था कि राजस्थान के राजपूत अभी तक अपने गौरव की गाथा नहीं भूले थे। मुसलमानों की असावधानी देखते ही वे फिर प्रचंड हो उठते थे। पर ये दिन उनकी अवनति के थे। मुसलमानों का आधिपत्य दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। वे राज्य के साथ-साथ अपने धर्म का विस्तार भी करते जाते थे जिससे हिन्दुओं के प्राचीन आदर्शों पर आघात होता था। मुसलमानी धर्म की कट्टरता हिन्दुत्व के विपक्ष में होकर जनता के हृदय में असन्तोष और विद्रोह का बीजवपन कर रही थी। हिन्दुओं के पास शक्ति नहीं थी अतएव वे मुसलमानों से युद्ध नहीं कर सकते थे। उन्हें अपमान का दण्ड नहीं दे सकते थे। ईश्वर से अपनी रक्षा की प्रार्थना भर ऐसी परिस्थिति में वे केवल कर सकते थे।

उन्होंने तलवार के बदले भाला का आश्रय लिया और वे अपने लौकिक जीवन में आध्यात्मिक तत्व खोजने लगे। अब वे सांसारिक कष्टों से मुक्त पाने के लिए ईश्वर की शरण में जाने लगे और दुष्टों को दंड देने के लिए अपनी शक्ति पर अवलम्बित रहने की अपेक्षा ईश्वरीय शक्ति पर निर्भर रहने की भावना करने लगे। इस प्रकार ओज और गौरव के तत्वों से निर्मित वीर रस करुण और दयनीय भावों से ओतप्रोत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होकर शान्त और शृङ्गार रस में परिणत होने लगा। इस प्रकार भावों में परिवर्तन हुआ।

चारणों के साहित्य-क्षेत्र से हट जाने के कारण डिंगल साहित्य के विकास में भी बाधा आने लगी। अब भी कुछ चारण कभी-कभी किसी राजा की प्रशंसा करते थे, पर साहित्य की गतिविधि ही बदल जाने के कारण डिंगल काव्य की नियमित रचना रुक गई थी। साधारण जनता जो अब केवल नाममात्र को रह गई थी, मुसलमानी आतंक से क्षुब्ध हो रही थी, अधिक धार्मिक प्रवृत्ति वाली हो रही थी। जनता के प्रतिनिधि कवि धर्म का प्रचार कर ईश्वर की प्रार्थना में अपना काव्य-कौशल प्रदर्शित करने लगे। इन कवियों ने ब्रजभाषा का आश्रय लिया, जो कृष्ण की जन्मभूमि की भाषा थी। चारणकाल में काव्य-रचना के केन्द्र उन स्थानों में थे जो राजनीति की दृष्टि से महत्वपूर्ण माने गये थे। इसी लिए राजस्थान के अतिरिक्त दिल्ली, कन्नौज और महोबा भी साहित्यिक रचना के केन्द्र थे। पर चारण काल के समाप्त होने पर जनता की धार्मिक प्रवृत्ति ने उन स्थानों में साहित्य रचना के केन्द्र स्थापित किए, जो धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। सन्तों, कवियों और आचार्यों ने धार्मिक-क्षेत्रों और तीर्थों को ही अपना केन्द्र निश्चित किया और उसी स्थान से जनता के भावों का प्रतिनिधित्व करते हुए उनके जीवन में उत्साह और साहस उत्पन्न किया। फलतः उन केन्द्रों की भाषा ही साहित्यिक भाषा हुई। धार्मिक काल में दो भाषाओं को प्राधान्य मिला। वे भाषाएँ ब्रज भाषा और अवधी थीं। ब्रजभाषा कृष्ण की जन्मभूमि ब्रजप्रान्त की भाषा थी और अवधी राम की जन्मभूमि अयोध्या की। राम और कृष्ण ही जनता के आराध्य थे, किन्तु राम की अपेक्षा कृष्ण अधिक लोकरंजक हुए। इसीलिए ब्रजभाषा को अवधी से अधिक काव्य पर अधिकार करने का अवसर प्राप्त हुआ। दूसरी बात यह भी थी कि धर्म के कोमल और पवित्र भावों को प्रकाशित करने में डिंगल भाषा असमर्थ थी। उसमें वह कोमलता और श्रुति माधुर्य का गुण नहीं था जो ब्रजभाषा में था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

डिंगल युद्ध के लिए शस्त्र की सहायिका थी, उसमें नाद था, उसमें शक्ति थी और वह पुरुष-भावों के प्रकाशन करने को उपर्युक्त शैली लिए हुए थी। ऐसी स्थिति में राजस्थान की साहित्यिक भाषा धार्मिक जनता के हृदय में नहीं बैठ सकती थी। वह चारणों तक अथवा चारणों के आश्रयदाता राजाओं तक ही सीमित रह सकती थी। वह रण की भाषा थी, धर्म के स्फुरण की नहीं। फलतः ब्रजभाषा जिसमें फूलों की कोमलता है, अंगूर की मिठास है, साहित्य की भाषा स्वयमेव हो गई, क्योंकि धर्म की भावना प्रदर्शित करने के लिये इससे अधिक सरस और मधुर भाषा किसी प्रकार भी नहीं मिल सकती थी।

साहित्य के नवीन विकास के अवसर पर इस परिवर्तन काल में कुछ प्रवृत्तियाँ और प्रकट हुई थीं। दिल्ली जो राजनीति की रङ्गशाला थी, मुसलमानी प्रभुत्व में भी साहित्य की रङ्गशाला बनी रही। अन्तर केवल यही रहा कि वीर गीत गाने वाले कवियों के स्थान पर मनोरंजन और चमत्कार की रचना करने वाले अमीर खुसरो को स्थान मिला। मुसलमानों के आगमन से जैसे वीरगाथा का अवसान और भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ वैसे ही मुसलमानों के आमोद के साथ ही साथ मुसलमानी सिद्धान्तों का प्रचार भी हुआ, जो आख्यानक कवियों की प्रेमगाथा में प्रस्फुटित हुआ। इस पर आगे विचार किया जायगा।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीसरा प्रकरण

भक्ति-काल की अनुक्रमणिका

सन्त-काव्य, प्रेम-काव्य, राम-काव्य तथा कृष्ण-काव्य

वीरगाथा काल के समाप्त होने के पहले ही साहित्य के क्षेत्र में क्रांति प्रारम्भ हो गई थी। मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने जनता के साथ साहित्य को भी अस्थिर कर दिया था। मुसलमानी शक्ति और धर्म के विस्तार ने साहित्य का दृष्टिकोण ही बदल दिया था और चारणों की रचनाएँ धीरे-धीरे कम होती जा रही थीं। वे अब विशेषतः राजस्थान ही में सीमित थीं। मध्यदेश में जहाँ मुसलमानी तलवार का पानी राज्यों के अनेक सिंहासनों को डुबा रहा था, चारणों का आश्रयदाता कोई न था। न तो हिन्दू राजाओं के पास बल था और न साहस ही। उनकी परिस्थिति अत्यन्त अनिश्चित हो गई थी। खिलजी वंश के अलाउद्दीन ने समस्त उत्तरी भारत को अपने आधिपत्य में ले लिया था। दक्षिण भारत भी उसके आक्रमणों से नहीं बचा। देवगिरि के यादव राजा रामचन्द्र को पराजित कर उसने एलिचपुर अपने राज्य में मिला लिया। वारंगल और होयसिल के राजा को भी उसका आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। महाराष्ट्र और कर्नाटक के राजाओं ने भी अधीनता स्वीकार कर ली। अलाउद्दीन के सहायक मलिक काफूर ने तो अपनी राज्यलिप्सा के कारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन् १३१२ में यादव राजा का कत्ल भी कर दिया। मुसलमानों की इस बढ़ती हुई ऐश्वर्याकांक्षा ने हिन्दुओं के अस्तित्व पर भी प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया। जिन हिन्दू राजाओं में आत्मसम्मान और शक्ति की मात्रा शेष थी, वे उसकी रक्षा का अनवरत परिश्रम कर रहे थे। विजय-नगर का हिन्दू शासक स्वतन्त्र हो गया था। दक्षिण में कृष्णा और तुंगभद्रा के बीच के प्रदेश पर अधिकार पाने के लिए विजयनगर और बहमनी राज्य में बहुधा युद्ध हुआ करते थे। जो प्रदेश हिन्दुओं के अधिकार में थे वे अपनी सत्ता बनाये रखने में प्रयत्नशील थे। सिन्ध राजपूतों के अधिकार में था, पर मुसलमानो आतंक उस पर भी छाया हुआ था। इस प्रकार राजनीति की मन्त्रणाएँ ही राज्यों के उत्थान और पतन की कुंजियाँ थीं। ऐसे अनिश्चित काल में हिन्दू जनता के हृदय में जिस भय और आतंक को स्थान मिल रहा था, वह उनके धर्म को जर्जरित कर रहा था। धर्म की रक्षा करने की शक्ति हिन्दुओं के पास रह ही नहीं गई थी।

मुसलमानों के बढ़ते हुए आतंक ने हिन्दुओं के हृदय में भय की भावना उत्पन्न कर दी थी। यदि मुसलमान केवल लूट-मार कर ही चले जाते तब भी हिन्दुओं की शान्ति में क्षणिक बाधा ही पड़ती, किन्तु जब मुसलमानों ने भारत को अपनी सम्पत्ति मानकर उस पर शासन करना प्रारम्भ किया, तब हिन्दुओं के सामने अपने अस्तित्व का प्रश्न आ गया। मुसलमान जब अपनी सत्ता के साथ अपना धर्म प्रचार करने लगे तब तो परिस्थिति और भी विषम हो गई। हिन्दुओं में मुसलमान से लोहा लेने की शक्ति नहीं थी। वे मुसलमानों को न तो पराजित कर सकते थे और न अपने धर्म की अवहेलना ही सहन कर सकते थे। इस असहायावस्था में उनके पास ईश्वर से प्रार्थना करने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं था। वे ईश्वरीय शक्ति और अनुकम्पा पर ही विश्वास रखने लगे। कभी-कभी यदि वीरत्व की चिनगारी भी कहीं दीख पड़ती थी तो वह दूसरे क्षण ही बुझ जाती थी या बुझा दी जाती थी। इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकार दुष्टों को दंड देने का कार्य उन्होंने ईश्वर पर ही छोड़ दिया और वे सांसारिक वस्तुस्थिति से परे पारलौकिक और आध्यात्मिक वातावरण में ही विहार करने लगे। इस समय हिन्दू राजा और प्रजा दोनों के विचार इसी प्रकार भक्तिमय हो गए और वीरगाथा काल की वीर रस-मयी प्रवृत्ति धीरे-धीरे शान्त शृङ्गार रस में परिणत होने लगी।

राजाओं का राजनीतिक दृष्टिकोण अस्पष्ट और धुँधला हो गया, अतएव वे अपनी महत्वाकांक्षा और आदर्श के उच्च आसन पर स्थिर न रह सके। उनके आदर्शों में परिवर्तन होने के कारण चारणों के आश्रय का भी कोई स्थान नहीं रह गया। वे अब किसकी वीरगाथा गाते और किसे रण के लिए उत्साहित करते। अतः वे भी अपने क्षेत्र से हटने लगे। फल यह हुआ कि डिंगल साहित्य की गति-विधि में भी परिवर्तन आने लगा। उसकी नियमित रचना में बाधा पड़ने लगी और वह नाम के लिए व्यावहारिक भाषा रह गई, उसका साहित्यिक महत्व समकालीन साहित्य के लिये सम्पूर्णतः नष्ट हो गया।

इस प्रकार राजनीतिक वातावरण धीरे-धीरे शान्त होता जा रहा था, यद्यपि समय-समय पर उसमें युद्ध का झोंका अवश्य आ जाता था। हिन्दुओं को शान्त करने के लिये मुसलमानों ने उन्हें अपनी संस्कृति से दीक्षित करने का भी प्रयत्न किया, क्योंकि अब मुसलमान भी अपने को इसी देश का निवासी मानने लगे थे। शासकों की नीति-रीति शासितों को प्रभावित अवश्य करती है, इसी सिद्धान्त के अनुसार इस्लाम धर्म भी हिन्दुओं के धार्मिक विचारों में अज्ञात रूप से परिवर्तन लाने में व्यस्त था। हिन्दू धर्म पर आघात होते ही यद्यपि जनता विचलित हो उठी तथापि आत्मरक्षा के विचार से किसी अंश तक हिन्दुओं ने भी इस्लाम धर्म को समझने की चेष्टा की। फलतः धार्मिक विचारों में परिवर्तन होने का सूत्रपात एक ऐसे रूप में प्रारम्भ हुआ जिसने हमारे साहित्य में एक नवीन धारा की ही सृष्टि कर दी। यह नवीन धारा संत काव्य के रूप में प्रवाहित हुई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संत मत में ऐसे ईश्वर की भावना मानी गई, जो हिन्दू और मुसलमानों के धर्म में समान रूप से ग्राह्य हो सके। उसके कोई मुखमाथा, रूप-कुरूप नहीं है, वह एक है। वह निर्गुण और सगुण दोनों से परे रह कर पुष्प की सुगन्धि से भी सूक्ष्म है। वह सर्वशक्तिमय, सर्व व्यापक और अखंड ज्योति स्वरूप है। उसके मानने के लिए आत्मज्ञान की आवश्यकता है। हिन्दुओं का राम और मुसलमानों का रहीम उसी ईश्वर का रूपान्तर मात्र है। उसका ध्यान ही महान् धर्म है। इस मत में जहाँ एक ओर अवतारवाद, मूर्ति पूजा और तीर्थ-व्रत आदि का निषेध है, वहाँ दूसरी ओर हलाल, रोजा और नमाज आदि का भी विरोध है। बाह्याडम्बर के जितने रूप हो सकते हैं उनका वहिष्कार सम्पूर्ण रूप से किया गया है। यह धर्म का ऐसा रूप है, जो हिन्दू और मुसलमान दोनों को सरलता से ग्राह्य हो सकता है। इस मत के प्रचारक कबीर थे। मुसलमानी संस्कारों में पोषित होने के कारण वे स्वभावतः हिन्दू आचार-विचार से दूर थे, उन्हें मूर्ति-पूजा के लिए कोई आकर्षण नहीं था। मुसलमानी अत्याचार की क्रूरता ने इस्लाम की अनेक बातों से उन्हें विरक्त कर दिया था, जिनमें नमाज और रोजा भी थे। मुसलमानों के बढ़ते हुए प्रभाव की वे उपेक्षा भी न कर सकते थे। इस परिस्थिति में उन्होंने इस्लाम और हिन्दू धर्म की सारभूत बातें लेकर इस पंथ की स्थापना की। वे रामानन्द के प्रभाव में आकर माया और ब्रह्म को नहीं छोड़ सकते थे। सन्त मत का काव्य उच्चकोटि का नहीं है। इस मत की भावना शास्त्रपद्धति के आधार पर भी नहीं थी जिससे शिक्षित वर्ग उसकी ओर आकृष्ट होता। हाँ, जनता के हृदय तक पहुँचने के लिए भाषा की सरलता उसमें अवश्य थी। इस प्रकार सन्त मत अधिकतर साधु और वैरागियों के द्वारा धर्म प्रचार का एक सरल मार्ग ही था। सन्त मत सगुणवाद का खंडन भी करता है, इसलिये जनता का अधिकांश समुदाय इसे ग्रहण भी नहीं कर सका। इतना अवश्य है

संत-काव्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कि जनता के अशिक्षित और साधारण वर्ग को संत मत ने यथेष्ट प्रभावित किया और मुसलमानी आतंक में भी धर्म की रूपरेखा की रक्षा में उसे बल प्रदान किया। सन्तमत का साहित्यिक क्षेत्र में विशेष महत्व न होते हुए भी धार्मिक क्षेत्र में बहुत बड़ा हाथ रहा।

मुसलमानी शासन का दूसरा बड़ा प्रभाव साहित्य में प्रेम-काव्य से प्रारम्भ होता है। उसमें सूफी सिद्धांतों का स्पष्टीकरण हिन्दू पात्रों के जीवन में किया गया है। इस्लाम के बढ़ते हुए स्वरूप ने जहाँ एक ओर हिन्दू धर्म के विश्वास को उच्छिन्न कर संतों के द्वारा निराकार ईश्वर की उपासना का मार्ग तैयार किया, वहाँ दूसरी ओर अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए सूफी कवियों की लेखनी को भी गतिशील बनाया। संत-काव्य और सूफी कवियों के प्रेम काव्य हमारे साहित्य में स्पष्टतः मुसलमानी राज्य के विकार हैं, जो राम और कृष्ण साहित्य पर लिखे गए सिद्धांतों से समानान्तर होते हुए भी वस्तुतः उनसे भिन्न हैं। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि धर्म के वातावरण से दूर रहते हुए भी प्रेम-काव्य ने हमें सम्पूर्ण रूप से लौकिक कहानियाँ दी हैं। संसार के प्रेम का इतना सजीव वर्णन हमें पहली बार प्रेम-काव्य में मिलता है। इस दिशा में फारसी साहित्य की मसनवियों ने हमारे हिन्दी साहित्य के प्रेम-काव्य को बहुत प्रभावित किया है।

प्रेम-काव्य

इस्लाम की प्रतिक्रिया के रूप में राम और कृष्ण-काव्य का प्रादुर्भाव हुआ, जिसमें भक्ति की भावना अपनी चरम सीमा पर थी।

धार्मिक काल की यह भक्ति-भावना उत्तरी भारत में पल्लवित होने के पूर्व दक्षिण में अपना निर्माण कर चुकी थी। यह भावना वैष्णव धर्म से उद्भूत हुई थी, जिसका सम्बन्ध भागवत या पंचरात्र धर्म से है। वैष्णव धर्म का आदि रूप हमें विष्णु के देवत्व में और देवत्व की प्रधानता में मिलता है। विष्णु का निर्देश हमें सबसे पहले ऋग्वेद में मिलता

राम और कृष्ण काव्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। विष्णु (विश् धातु-व्याप्त होना) ऋग्वेद में प्रथम श्रेणी के देवताओं में नहीं हैं। वे सौर शक्ति के रूप में माने गए हैं। सूर्य सम्पूर्ण सृष्टि में प्रकाश रूप से व्याप्त है, इसलिए सूर्य का रूप ही विष्णु है। उनका वर्णन विश्व के सात विभागों को केवल तीन पग ही में पार कर लेने के रूप में किया गया है। ये तीन पग या तो अग्नि, विद्युत्, सूर्य के रूप हैं अथवा सूर्य के आकाश मार्ग की तीन स्थितियाँ, उदय, उत्कर्ष और अस्त हैं। वेद में कभी-कभी उनका साम्य इन्द्र से भी हुआ है। यद्यपि वेद के विष्णु महाकाव्यों के विष्णु नहीं हैं तथापि विष्णु में संरक्षण और व्याप्त होने की भावना का जो प्राधान्य पहले था, उसी का पल्लवित और विकसित रूप आगे चल कर हमारे आचार्यों और कवियों द्वारा प्रचारित हुआ। शाकपूणि के द्वारा विष्णु के तीन पैरों का रूपक पृथ्वी पर अग्नि, वायुमंडल में इन्द्र अथवा वायु और आकाश में सूर्य के आधार पर समझाया गया है। और्णवाभ ने सूर्य का उदय मध्याह्न और अस्त ही विष्णु के तीन पैरों के रूप में समझाया है। विष्णु का महत्व इतना बढ़ा कर वर्णित किया गया है कि प्रशंसा की दृष्टि से इनका स्थान वैदिक देवताओं में सर्वश्रेष्ठ होता, किन्तु विष्णु को इन्द्र का सहयोगी और प्रशंसक तथा सोम से उत्पन्न भी कहा गया है। इस कारण उसका महत्व बहुत ही गिर गया है।

धार्मिक काल के प्रारम्भ में साहित्यिक वातावरण एक प्रकार से अस्त-व्यस्त था और उसमें विचार साम्य का एकान्त अभाव था। इतना अवश्य था कि भक्ति की धारा का रूप प्रधानता प्राप्त कर रहा था। भक्ति के प्राधान्य के कारण राम और कृष्ण के सम्बन्ध में जो रचनाएँ हुईं उनका निरूपण भक्तिकाल के अन्तर्गत इतिहास में किया जायगा, किन्तु इसका विकास चारणकाल के अवसान के बाद ही हो गया था। इस परिस्थिति का निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है :—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

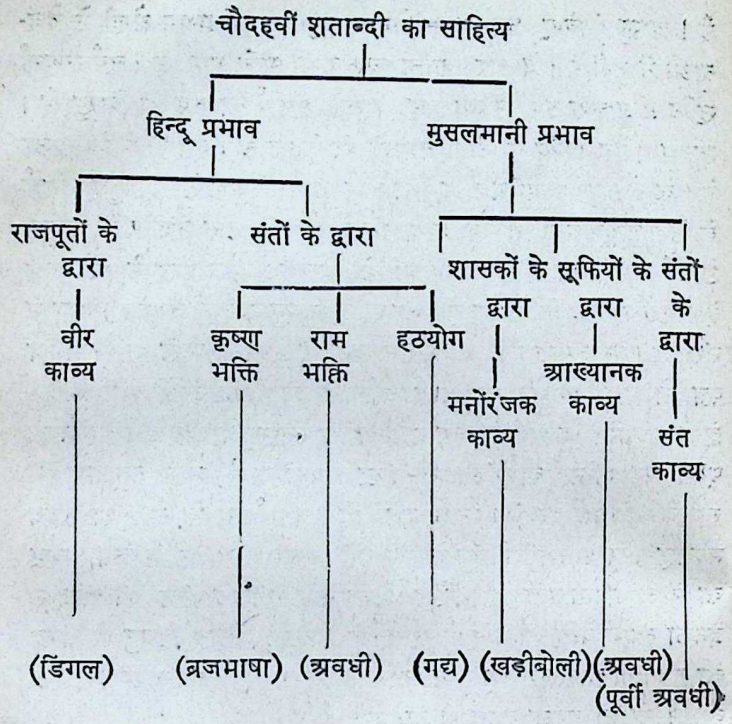

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चौथा प्रकरण

भक्ति-काल

(संवत् १३७५ से १७००)

संत-काव्य

कबीर

भारतीय जनश्रुतियों में संतों और महात्माओं की जीवन तिथियों को कभी महत्व नहीं दिया। अंधविश्वास और अज्ञान से भरी हुई कहानियाँ श्रद्धा और अलौकिक चमत्कार पर आस्था रखने की प्रवृत्तियाँ हमें अपने सन्तों और कवियों की ऐतिहासिक स्थिति का निर्णय करने की ओर उत्साहित नहीं करतीं। जिन कवियों ने देश और जाति के दृष्टिकोण को बदल कर उसकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है और हमारे लिए साहित्य की अमर निधि छोड़ी है, उनका जन्म काल और जीवन का ऐतिहासिक दृष्टिकोण विस्मृति के अंधकार में छिपा हुआ है। कबीर की जन्म तिथि भी हमारे सामने प्रामाणिक रुप में नहीं है।

कबीर की ऐतिहासिक स्थिति

इन ग्रन्थों का वर्ण्य विषय प्रायः एक ही है। वह है ज्ञानोपदेश। कुछ परिवर्तन कर यही विषय प्रत्येक ग्रन्थ में प्रतिपादित किया गया है। विस्तार में उनके वर्ण्य विषय यही हैं। :—

२. वर्ण्य विषय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योगाभ्यास, भक्त की दिनचर्या, सत्य-वचन, विनय और प्रार्थना, आरती उतारने की रीति, नाम महिमा; संतों का वर्णन, सत्पुरुष निरूपण, माया-विषयक सिद्धान्त, गुरुमहिमा, रागों में उपदेश, सत्संगति, स्वर ज्ञान आदि। यह सब या तो उपदेशक की भाँति प्रतिपादित किया गया है या धर्मदास से सम्बाद के रूप में। विषय घुमा-फिरा कर निर्गुण ईश्वर का निरूपण हो जाता है। अनेक स्थानों पर सिद्धान्त और विचारों में आवर्तन भी हो जाता है। यह सब ज्ञान सरल और व्यावहारिक ढंग से वर्णित है, काव्य के सौन्दर्य से नहीं। सरल और व्यावहारिक होने के कारण यह ज्ञान जनता के हृदय में सरलता से बैठ जाता है। पाठ के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है।

भाषा ग्रन्थों का स्वरूप और उनका सम्पादन

कबीर ने अपनी भाषा पूरबी लिखी है, पर नागरी प्रचारिणी सभा ने कबीर ग्रन्थावली का जो प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया है, उसमें पूरबीपन किसी प्रकार भी नहीं है। इसके पर्याय -उसमें पंजाबीपन बहुत है। इससे ग्रन्थ के सम्पादक जी शिष्यों या लिपिकारों की कृपा ही समझते हैं। यह बहुत अंशों में सत्य भी है।

कबीर की भाषा

कबीर ग्रन्थावली का सम्पादन डा० श्यामसुन्दर दास ने किया है। यह नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) की ओर से प्रकाशित हुई है। इस ग्रन्थावली का सम्पादन दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर किया गया है। जिनकी अनुलिपि की तिथियाँ क्रमशः संवत् १५७१ तथा १८८१ हैं।

कबीर ग्रन्थावली की भाषा में पंजाबीपन अत्यधिक है। कबीरदास जो बनारस के निवासी थे, उनकी मातृ भाषा बनारसी बोली थी जिसकी गणना पश्चिमी भोजपुरी के अन्तर्गत है। अब प्रश्न यह उठता है कि उनकी भाषा में पंजाबीपन कहाँ से आया। इसके दो कारण हो सकते हैं। प्रथम यह कि यह अनुलिपि कर्त्ता ने भोजपुरी शब्दों तथा मुहावरों को अनुलिपि करते समय पंजाबी में परिवर्तित कर दिया हो अथवा संतों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के सत्संग के कारण कबीर को पंजाबी का पर्याप्त ज्ञान हो गया हो और उन्होंने स्वयं इसी रूप में इन पदों की रचना की हो। डाक्टर दास के मतानुसार दूसरी सम्भावना ही ठीक है किन्तु मैं समझता हूँ कि पहली सम्भावना में ही तथ्य का अंश अधिक है।

जो दशा कबीर की भाषा की हुई, ठीक वही बुद्ध की भाषा की भी हुई थी जो कबीर से दो सहस्त्र वर्ष पूर्व पैदा हुए थे। फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय सिल्वां लेवी तथा जर्मनी के संस्कृत के पंडित लुडर्स ने अपने दो लेखों में यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित कर दिया है कि किस प्रकार दाक्षिणात्य बौद्धों (स्थविरवादियों) के बुद्धवचन की भाषा में ऐसे रूप भी वर्तमान हैं जो वस्तुतः प्राचीन मागधी के हैं। स्थविरवादियों (सिंहल निवासियों) के त्रिपिटक की भाषा पालि है जिसका सम्बन्ध स्पष्ट रीति से मध्यदेश की भाषा से है। इस पालि त्रिपिटक में ही प्राचीन मागधी के रूप मिलते हैं जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि वर्तमान पालि त्रिपिटक की रचना के पूर्व त्रिपिटक की कुछ ऐसी प्रतियाँ भी प्रचलित थीं जिनकी भाषा प्राचीन मागधी थी। जब मध्य-देश की भाषा पालि में आधुनिक त्रिपिटक को परिवर्तित किया गया, तो भी प्राचीन मागधी भाषा के कुछ शब्द तथा मुहावरे आदि यत्र-तत्र रह ही गये।

ठीक ऊपर की दशा कबीर की भाषा की भी हुई। यह बात प्रसिद्ध है कि कबीर शिक्षित न थे, अतएव बनारसी बोली के अतिरिक्त अन्य किसी साहित्यिक भाषा में रचना करना उनके लिए सम्भव न था। यह बनारसी बोली अथवा उस समय की भोजपुरी केवल प्रान्तीय व्यवहार की भाषा थी। इसे न तो ब्रजभाषा की भाँति शौरसेनी अपभ्रंश की परम्परागत प्रतिष्ठा ही प्राप्त थी और न नवीन विकसित खड़ी बोली की भाँति मुसलमान शासकों की संरक्षिता ही मिली थी। भोजपुरी क्षेत्र के पश्चिम में कबीर की वाणी के प्रसार के लिए यह आवश्यक था कि उनके पदों तथा साखियों का अनुवाद ब्रजभाषा, खड़ी बोली अथवा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोनों के सम्मिश्रण में हो। ऐसा करने ही से इनके सिद्धांतों का प्रचार पश्चिमी पंजाब से बङ्गाल तक और हिमालय से लेकर गुजरात तथा मालवा तक हो सकता था। ब्रज तथा खड़ी बोली में अनुवाद का यह कार्य केवल मूल भोजपुरी के कतिपय शब्दों के रूप बदल देने से ही सम्पन्न हो सकता था।

कबीर का ज्ञान विस्तृत था, उन्होंने देश-भ्रमण भी खूब किया था। ऐसी अवस्था में इस बात की भी सम्भावना है कि उन्हें ब्रज, खड़ी बोली तथा कोसली (अवधी) का पर्याप्त ज्ञान हो और उन्होंने स्वयं इन भाषाओं में रचना की हो, किन्तु सम्वत् १५६१ की प्राचीन प्रति के आधार पर सम्पादित कबीर ग्रन्थावली के पदों में भोजपुरी रूपों को देख कर यही धारणा पुष्ट होती है कि बुद्धवचन की भाँति ही कबीर की वाणी पर भी उनके भक्तों द्वारा पछाँही रंग चढ़ाया गया।

यह बात अवश्य है कि कबीर की कविता में कला का अभाव है। उनकी रचना में पद-विन्यास का चातुर्य नहीं है। उल्टवाँसियों में क्लिष्ट कल्पना है, भाषा बहुत भद्दी है। पर उन्होंने काव्य के इन उपकरणों को जुटाने की चेष्टा भी तो नहीं की। वे एक भावुक और स्पष्टवादी व्यक्ति थे और उन्होंने प्रतिभा के प्रयोग से अपने सन्देश को भावनात्मक रूप देकर हृदयग्राही बना दिया था। वे धर्म की जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए उल्टवाँसियाँ लिखते थे और संकीर्णता हटाने के लिए रेखते। उनकी कला उनकी स्पष्टवादिता में थी, उनकी स्वाभाविकता में थी। यह स्वाभाविकता उनकी सबसे बड़ी निधि है। कबीर के विरह के पद साहित्य के किसी भी उत्कृष्ट कवि के पदों से हीन नहीं हैं। उनकी विरहिणी आत्मा की पुकार काव्य-जगत में अद्वितीय है। रहस्यवाद के दृष्टिकोण से यदि उनकी "पतिव्रता कौ अङ्ग" पढ़ा जावे तो ज्ञात होगा कि उनका कवित्व संसार के किसी भी साहित्य का शृङ्गार हो सकता है।

उत्तरी भारत में कबीर का महत्व बहुत अधिक था। वे रामानन्द के प्रधान शिष्य थे। उनका निर्भीक विषय प्रतिपादन उनके समकालीन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्तों और कवियों में उन्हें सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित कर देता है। यही कारण है कि वे अपने गुरु का अनुकरण न करते हुए भी स्वयं अनेक भक्तों और कवियों के आदर्श हो गए।

कबीर के बाद सन्त-परम्परा में जितने प्रधान भक्त और कवि हुए उनका विवरण इस प्रकार है।

अन्य सन्त कवि

ये कबीर के सबसे प्रधान शिष्य थे और उनके बाद इन्हें ही कबीर-पन्थ की गद्दी मिली। इनके जन्म की तिथि निश्चित नहीं है। कहा जाता है कि ये कबीर से कुछ वर्ष छोटे थे। कबीर की जन्म तिथि संवत् १४५५ मानी गई है, अतः इनका जन्म १४५५ के बाद ही होगा। सन्त सीरीज के सम्पादक महोदय धरमदास जी की जन्म तिथि सम्वत् १४७५ और १५०० के बीच में मानते हैं। धरमदास जी की मृत्यु कबीर की मृत्यु के लगभग बीस-पचीस वर्ष बाद हुई। अतः कबीर की मृत्यु तिथि १५७५ मानने पर इनकी मृत्यु लगभग सम्वत् १६०० माननी होगी।

धरमदास (सं० १४७५)

धरमदास का प्रारम्भिक जीवन साकारोपासना में ही व्यतीत हुआ। ये बाँधोगढ़ के निवासी थे और बड़े धनी थे। अतः तीर्थयात्रा और पूजन आदि में बहुत धन खर्च करते थे। "अमर सुख निधान" में धरमदास ने स्वयं अपना चरित्र लिखा है।

मथुरा और काशी के पर्यटन में इनसे कबीर की भेंट हुई और ये कबीर से बहुत प्रभावित हुए। अंत में इन्होंने अपना सब धन लुटा कर कबीर पंथ में प्रवेश किया। इन्होंने ही कबीर की रचना का संग्रह संवत् १५२१ (सन् १४६४) में किया। इनकी मृत्यु के बाद कबीर पंथ की गद्दी इनके पुत्र चूड़ामणि को मिली।

इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें इनकी और कबीर की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोष्ठी और धर्म निरूपण ही अधिक है। इनकी बहुत-सी रचना कबीर की रचना में इतनी मिल गई है कि दोनों को अलग करना बहुत कठिन हो गया है। इनके प्रधान ग्रंथों में 'सुखनिधान' का बहुत ऊँचा स्थान है। कबीर के समान इन्होंने भी विरह पर बहुत लिखा है।

श्री गुरु नानक (सं० १५२६)

सिख संप्रदाय के संस्थापक श्री नानकदेव के संबन्ध में अनेक विवरण और जन्म-साखियाँ हैं जिनसे उनके जीवन पर प्रकाश डाला जा सकता है। पर उन विवरणों की अनेक बातें इतनी कपोल-कल्पित और अंध विश्वास से भरी पड़ी हैं कि किसी भी इतिहास प्रेमी को वे ग्राह्य नहीं हो सकतीं। प्रत्येक धर्म संस्थापक के पीछे इसी प्रकार की कल्पित कथाओं की शृंखला लगी रहती है, अतः नानक के सम्बन्ध में भी यह होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जिन जन्म साखियों के आधार पर नानक का जीवन विवरण मिलता है, वे अधिकतर पंजाबी भाषा और गुरुमुखी लिपि में हैं। जे० डब्ल्यू यंगसन को अमृतसर में लिखी गई एक जन्म साखी मिली है, जिसके अनुसार गुरु नानक महाराज जनक के अवतार थे।

इन जन्म-साखियों में से अस्पष्ट और अतिशयोक्तिपूर्ण बातों को निकालकर गुरु नानक का जीवन वृत्त इस प्रकार होगा।

श्री नानक का जन्म बैसाख (बाबा छज्जूसिंह के अनुसार कार्तिक) सं० १५२६ में लाहौर से तीस मील दूर दक्षिण-पश्चिम में तलवंडी नामक गाँव में हुआ। इनकी माता का नाम तृप्ता और पिता का नाम कालू था, जो जाति के खत्री थे। वे किसान और पटवारी थे और साथ ही कुछ महाजनी भी करते थे। अतः नानक का बचपन प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में व्यतीत हुआ। छुटपन से ही नानक मौन रहते थे और विचारों में डूबे रहते थे। कभी-कभी तो ये साधू और फकीरों का सङ्ग भी करते थे जिससे इनके पिता इनसे बहुत रुष्ट रहते थे। जो काम इनसे करने के लिए कहा जाता था वही इनसे बिगड़ जाता था, क्योंकि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये अपने ध्यान में ही डूबे रहते थे। एक बार इनके पिता ने इन्हें बीस रुपये रोजगार करने के लिए दिये, पर इन्होंने वे सब साधू और फकीरों पर खर्च कर दिये। इनके पिता को इस उच्छृङ्खलता पर बहुत क्रोध आया और उन्होंने इन्हें सुलतानपुर (जालन्धर) नौकरी करने के लिए भेजा, जहाँ इनकी बहन जानकी के पति जयराम रहते थे। इस बीच में इनका विवाह भी हो चुका था जिससे इनके दो पुत्र हुए, श्रीचन्द्र और लखीमदास। जब तक इन्होंने नौकरी की ये बड़े सतर्क और आज्ञाकारी रहे। कमाये हुये धन का बहुत-सा भाग इस समय भी साधुओं की सेवा में समाप्त होता था। ये दिन भर काम करते थे और रात को गीत बनाकर गाया करते थे। इनका एक गायक मित्र था, जो तलवंडी से आया था। उसका नाम था मरदाना। जब नानक गाया करते थे तो मरदाना खाब बजाया करता था। एक बार वेन नदी में स्नान करते समय इन्हें आत्मज्ञान हुआ और इन्होंने ईश्वर की दिव्य विभूति देखी। उसी समय इन्होंने नौकरी छोड़ कर पर्यटन प्रारम्भ किया। चारों दिशाओं में इन्होंने मरदाना के साथ बड़ी-बड़ी यात्राएँ कीं और अपने सिद्धान्तों को गा-गा कर प्रचार किया।

अन्त में सं० १५९५ में करतारपुर आकर इन्होंने अपने परिजनों के बीच में महाप्रस्थान किया।

मलूकदास (सं० १६३१)

इनका जन्म संवत् १६३१ में कड़ा (इलाहाबाद) नामक स्थान में हुआ। इनके पिता का नाम सुन्दरदास खत्री था। बचपन से ही मलूकदास में प्रतिभा के चिह्न थे। ये सन्तों को भोजन और कम्बल दे दिया करते थे, जो इनके पिता इन्हें बेचने के लिए देते थे। इनके सम्बन्ध में अनेक अलौकिक कथाएँ कही जाती हैं जिसमें इनकी भक्ति और शक्ति का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। इनकी मृत्यु सं० १७३९ में हुई। इस प्रकार इनकी आयु मृत्यु के समय १०८ वर्ष की थी। इनके एक शिष्य सुथरादास थे जिन्होंने 'मलूक परिचय' के नाम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से एक जीवनी लिखी है। इसके अनुसार भी मलूकदास के जन्म और मृत्यु के सम्वत् ये ही हैं।

इनकी कविता सरस और भावपूर्ण है। इनके दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं:— ज्ञानबोध और रामावतार लीला (रामायण)। ज्ञानबोध में इन्होंने ज्ञान, भक्ति जौर वैराग्य का वर्णन किया है। अष्टांग योग एवं प्रवृत्ति और निवृत्ति का भी विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण है। रामावतार लीला में रामचरित्र वर्णित है। उसमें रामायण की कथा विस्तार से दी गई है। भाषा में पूर्ण स्वाभाविकता है। इनके उपदेश और चेतावनी बड़ी तेजस्वी भाषा में वर्णित हैं। उनमें स्थान-स्थान पर अरबी-फारसी के शब्द भी हैं, पर उनसे कवि के प्रवाह में कोई व्याघात उपस्थित नहीं हुआ। इन्होंने शब्दों के अतिरिक्त कवित्त भी लिखे हैं। कहा जाता है कि एक और मलूकदास थे जिनका निवास स्थान कालपी था और जो जाति के खत्री थे। कड़ा के मलूकदास बहुत पर्यटनशील थे। सम्भव है, ये कालपी में रहे हों। इस प्रकार दो मलूकदास होने से काव्य की प्रामाणिकता में भ्रम हो गया है। दोनों की रचनाओं में किसी दृष्टिकोण से कोई भिन्नता नहीं है।

दादूदयाल (सं०१६५८)

सन्तमत में दादू का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके सिद्धान्त कबीर के सिद्धान्तों से मिलते हुये भी अपनी विशेषता रखते हैं। इनके पदों और साखियों में चेतावनी का अंश बहुत अधिक है। इनका जन्म सं० १६५८ में हुआ था।

दादू पंथियों के अनुसार ये गुजराती ब्राह्मण थे, पर जनश्रुति इन्हें धुनियाँ मानती है। मोहसिन फानी भी इन्हें धुनियाँ ही मानते हैं। विल्सन ने भी मोहसिन फानी के मत का अनुकरण किया है। फर्क-आर और ट्रेल इन्हें ब्राह्मण मानते हैं पर सुधाकर द्विवेदी का कथन है कि दादू मोची जाति के थे और मोट बनाया करते थे। पहली स्त्री की मृत्यु होने पर ये बैरागी हो गये। इनका पहला नाम महाबली था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कबीर के दृष्टिकोण के अनुसार ही इनकी रचना के अंग हैं। इनकी कविता बड़ी प्रभावोत्पादिनी है। वह सरलता से हृदयंगम हो जाती है और एक आध्यात्मिक वातावरण छोड़ जाती है।

दादू ने लगभग ५,००० पद्य लिखे हैं जिनमें से बहुत से ग्रन्थों में नहीं पाये जाते। वे केवल साधु-सन्तों की स्मृति में हैं। दादू ने धर्म के प्रायः सभी अंगों पर प्रकाश डाला है। मूर्ति पूजा, जाति, अचार, तीर्थ-व्रत, अवतार, आदि पर दादू कबीर के पूर्णतः अनुयायी हैं। डा० ताराचन्द के अनुसार दादू ने सूफ़ीमत की व्याख्या अधिक सफलता के साथ की है। सम्भवतः उसका कारण यह हो कि वे कमाल के शिष्य थे। दादू ने गुरु का महत्व बहुत उत्कृष्ट बतलाया है। वे कहते हैं कि बिना गुरु के आत्मा वश में नहीं आ सकती।

सुन्दरदास (सं० १७१०)

सुन्दरदास दादूदयाल के शिष्य थे। इनका जन्म सं० १७१० में जयपुर की पहिली राजधानी दौसा नगर में हुआ था। ये जाति के खंडेलवाल बनिया थे। बहुज्ञ और बहुश्रुत थे। हिंदी, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत और फारसी पर समान अधिकार रखते थे। संस्कृत के पंडित होते हुए भी ये हिन्दी में कविता लिखते थे, क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना ही था। ये बहुत सुन्दर थे, इसी कारण शायद दादू ने इनका नाम सुन्दर रख दिया था। ये छः वर्ष की अवस्था से ही दादू के साथ हो गए थे। जब नारायणा में दादू का देहावसान संवत् १६६० में हुआ तो ये वहाँ से चल कर डीडवाणे में रहे और वहाँ से काशी चले आए। काशी में इन्होंने बहुत विद्याध्ययन किया और साधु-महात्माओं का साहचर्य प्राप्त किया। इसके बाद ये फतेहपुर शेखावटी चले आए, यहाँ उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की और बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। इनकी मृत्यु सांगनेर (जयपुर) में सम्वत् १६४६ में हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह पद्य प्रसिद्ध है :

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संवत सत्रह से छीयाला, कातिक सुदि अष्टमी उजाला।
तीजै पहर भरस्पति बार, सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥

सुन्दरदास बहुत बड़े पंडित थे। ये सन्तमत के अन्य कवियों की भाँति साधारण और सरल कविता करने वाले नहीं थे। इनकी रचनाओं में काव्यशास्त्र का पूर्ण ज्ञान है। इंदव, मनहरण, हंसाल, दुमिल छन्द बहुत ललित और प्रवाहयुक्त हैं। अनेक प्रकार का काव्य-कौशल इनकी कविता में रत्नराशि के समान सजा हुआ है। कहीं रस निरूपण है तो कहीं अलंकारों की सृष्टि। ये शृङ्गार रस के बहुत विरुद्ध थे और उसे छोड़ अन्य रसों के वर्णन में इनकी प्रतिभा खूब प्रस्फुटित हुई है। इनके पर्यटन ने इनके अनुभव को और बढ़ा दिया था और इन्होंने सभी स्थानों के विषय में रचनाएँ कीं। इनके दशों दिशा के सवैया इसके प्रमाण स्वरूप दिए जा सकते हैं।

इनके ग्रन्थों में ज्ञान समुद्र (पाँच उल्लासों में), सुन्दरविलास (३४ अंगों में) और पद (२७ राग रागिनियों में) विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्होंने पूर्वी भाषा बरवै में भाषा का स्वाभाविक सौन्दर्य खूब प्रदर्शित किया है। सन्त होते हुये भी ये हास्य रस के विशेष प्रेमी थे, जिससे इनकी वेदान्त की गंभीरता मनोरंजन में परिणत हो जाती है। इन्होंने शृङ्गार रस के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा है। नारी की निन्दा इन्होंने जी खोल कर की है। इसके विपरीत सांख्य ज्ञान और अद्वैतवाद ज्ञान का निरूपण इन्होंने बड़े विशद रूप में किया है। आत्म-अनुभव तो इनकी निज की सम्पत्ति है।

सुन्दरदास दादूदयाल के आयु में सबसे छोटे शिष्य थे, पर प्रसिद्धि में सब से बड़े। इनके शिष्यों की पाँच गद्दियाँ कही जाती हैं जो फतेहपुर और राजस्थान में हैं। इनके पाँच शिष्य प्रसिद्ध हैं: १—टिकैतदास, २—श्यामदास, ३—दामोदरदास, ४—निर्मलदास और ५—नारायणदास।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्ण्य-विषय

आध्यात्मिक भावना में मुख्य-मुख्य जिन अङ्गों पर सन्तों ने प्रकाश डाला है उनका विवरण निम्नलिखित है :

(१) क्रियात्मक

सत्पुरुष है (निराकार ईश्वर), नाम-स्मरण, अनहद शब्द, भक्ति, सुरत, विरह, पतिव्रता-प्रेम, विश्वास, निज करता को निर्णय, सतसंग, सहज, सारगहनी, मौन परिचय, उपदेश, साँच, उदारता, शील, क्षमा, सन्तोष, धीरज, दीनता, दया, विचार, विवेक, गुरुदेव, आरती।

(२) ध्वंसात्मक

चेतावनी, भेष, कुसंग, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और हंगता कपट, आशा, तृष्णा, मन, माया, कनक और कामिनी, निद्रा, निंदा, स्वादिष्ट आहार, मांसाहार, नशा, आनदेव की पूजा, तीर्थ व्रत, दुर्जन आदि।

सामाजिक भावना के अङ्ग निम्नलिखित हैं :

(१) क्रियात्मक

चेतावनी, समदृष्टि

(२) ध्वंसात्मक

भेदभाव, चेतावन

२.भाषा सन्तकाव्य में भाषा बहुत अपरिष्कृत है। उसमें कोई विशेष सौन्दर्य नहीं है। भावों का प्रकाशन प्रधान है और भाषा का प्रयोग गौण। इस प्रकार की भाषा के संबंध में तीन कारण हो सकते हैं।

(१) सन्तकाव्य जन-समाज के लिए ही लिखा गया था। अतः उसमें भावों के प्रचार एवं प्रसार के लिए भाषा का सरल होना आवश्यक था। कठिन भाषा का सरल होना आवश्यक था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कठिन भाषा के द्वारा ईश्वर सम्बन्धी कठिन और दुरूह विषय जन-समाज तक नहीं पहुँच सकता था।

(२) सन्तों की रचनाएँ अधिकतर गेय रही हैं; इसलिए भाषा का रूप एक मुख से दूसरे मुख तक जाने में बदल गया।

(३) ये रचनाएँ अधिक समय तक लिपिबद्ध भी नहीं हुईं। अतः जिस प्रदेश में ये प्रचलित रहीं उसी प्रदेश की भाषा का प्रभाव उन पर आ गया। कवियों के प्रदेश-विशेष में रहने के कारण भी भाषा में विभिन्नता है, पर कबीर की रचनाओं में पञ्जाबी-पन की जो छाया है, उसका क्या कारण हो सकता है? कबीर तो पञ्जाब के निवासी नहीं थे। इसे कुछ तो प्रान्त-विशेष के भक्तों और कुछ लिपिकारों की कृपा का फल ही समझना चाहिए। जो हो, सन्तकाव्य हमें तीन भाषाओं से प्रभावित मिलता है :—

पूरबी हिन्दी, राजस्थानी और पञ्जाबी

३. रस संतकाव्य में प्रधान रूप से शान्त रस है। ईश्वर की भक्ति प्रधान होने के कारण निर्वेद ही स्थायी भाव है और आदि से अंत तक शान्त रस की ही सत्ता है। कभी-कभी रहस्यवाद के अन्तर्गत आत्मा के विरह वर्णन के कारण वियोग शृङ्गार भी है। आत्मा जब एक स्त्री के रूप में परमात्मा रूपी पति के लिए व्याकुल होती है तब उसमें वियोग शृङ्गार की भावना स्वाभाविक रूप से आ जाती है। संयोग शृंगार की भावना बहुत ही न्यून है। जैसे मिलन की भावनाएँ बहुत ही कम हैं। संतकाव्य में विरह श्रेष्ठ माना गया है। उसमें परमात्मा से मिलन का साधन ही अधिक है, मिलन की सिद्धि नहीं। अतः शान्त और वियोग शृङ्गार प्रधानरस हैं शेष रस गौण हैं। कहीं-कहीं ईश्वर की विशालता के वर्णन में अद्भुत रस भी है। 'एक विन्दु ते विश्व रच्यों है' जैसी भावनाएँ आश्चर्य के स्थायी भाव को उत्पन्न करती हैं। कबीर की उल्टवाँसियाँ भी आश्चर्य में डाल देने वाली हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टि और माया की विचित्रता भी अद्भुत रस की उत्पत्ति में सहायक हैं। कुछ स्थानों पर वीभत्स रस भी है। जहाँ सुन्दरदास स्त्री के शरीर का वीभत्स वर्णन करते हैं, वहाँ जुगुप्सा प्रधान हो जाती है। कचन और कामिनी शीर्षक अंग में भी अनेक स्थानों पर वीभत्सता है। संक्षेप में सन्तकाव्य का रस निरूपण इस प्रकार है :

प्रधान रस—शान्त, शृङ्गार (वियोग)

गौण रस—अद्भुत, वीभत्स

४.छन्द सन्त-काव्य में सबसे अधिक प्रयोग साखियों और शब्दों का हुआ है। साखी तो दोहा छन्द है और शब्द रागों के अनुसार पद हैं। दोहा छन्द बहुत प्राचीन है। अपभ्रंश के बाद प्राचीन हिन्दी में लिखे हुए जैन ग्रन्थों में इस दोहा छन्द के ही दर्शन होते हैं। इसके बाद डिंगल साहित्य में भी दोहा छन्द का व्यवहार हुआ। तत्पश्चात् अमीर खुसरो ने अपनी बहुत सी पहेलियाँ इसी छन्द में लिखीं। अतः दोहा छन्द तो साहित्य में प्रयोग सिद्ध हो चुका था। पदों का हिन्दी साहित्य में यह प्रयोग प्रथम बार ही समुचित रूप में किया गया। सन्तों के शब्द अधिकतर गेय थे अतः वे राग-रागनियों के रूप में गाए जा सकते थे। इस कारण वे पदों का रूप पा सके। दोहा और पद के बाद तीसरा प्रचलित छन्द है झूलना। इसका प्रयोग कबीर ने बड़ी सफलतापूर्वक किया, यों कबीर के बाद को अन्य सन्त कवियों ने भी इसका प्रयोग किया। इन तीन छन्दों के अतिरिक्त चौपाई, (जिसका प्रयोग अधिकतर आरती में हुआ है) और सार (जिसका प्रयोग पहाड़ा में हुआ है) भी सन्तकाव्य में प्रयुक्त हुये हैं। सन्तकाव्य में पदों और दोहों का प्राधान्य है जिसका विशिष्ट नाम शब्द और साखी हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाथपन्थ का विकसित रूप सन्तकाव्य में पल्लवित हुआ जिसका आदि इतिहास सिद्धों के साहित्य में है। गोरखनाथ ने अपने पन्थ के प्रचार में जिस हठयोग का आश्रय ग्रहण किया था वही हठयोग सन्तकाव्य में साधना का प्रधान रूप हो गया।

५. विशेष

सन्तकाव्य में जिन सिद्धान्तों की चर्चा की गई है, वे अनेक बार दोहराये गये हैं। किसी भी कवि ने अपनी ओर से मौलिकता प्रदर्शित करने का श्रम नहीं उठाया, वे ही बातें बार-बार एक ही रूप में दृष्टिगत होती हैं। इस प्रकार एक कवि की कविता दूसरे कवि की कविता से शब्दों के अतिरिक्त किसी भी बात में भिन्न नहीं है। सन्तमत में जो अनेक पन्थ चले उनमें जो प्रधान भावनाएँ थीं। वे इस प्रकार हैं :—

१. ईश्वर एक है। वह निराकार और निर्गुण है।
२. मूर्तिपूजा व्यर्थ है। उसमें ईश्वर की व्यापकता सीमित हो जाती है।
३. गुरु का महत्व ईश्वर से भी अधिक है।
४. जाति भेद का कोई बन्धन नहीं है। ईश्वर की भक्ति में सभी समान हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाँचवाँ प्रकरण

प्रेम-काव्य

प्रेम-काव्य की रचना मुसलमानों के कोमल हृदय की अभिव्यक्ति है। जब मुसलमानी शासन भारत में स्थापित हो गया तब हिन्दू और मुसलमान दोनों स्नेह-भाव के जागरण की आकांक्षा करने लगे। यह सच है कि यवन शासक अपने उद्धत स्वभाव के कारण तलवार की धार में अपने इस्लाम की तेजी देखना चाहते थे और किसी भी हिन्दू को दो में से एक—इस्लाम या मृत्यु—चुनने के लिए बाध्य कर सकते थे। पर दूसरी ओर एक ऐसा भी शासक वर्ग था जो हिन्दुओं को अपने पथ पर चलने की आज्ञा प्रदान करके सुख अनुभव कर रहा था। ऐसे शासकों में शेरशाह का ज्वलन्त उदाहरण है जिसने मुल्लाओं की शिक्षा की अवहेलना की और जो हिन्दुओं के प्रति उदार बना रहा। जहाँ वे एक ओर इस्लाम के अन्तर्गत सूफी धर्म के प्रचार की भावना में विश्वास मानते थे वहाँ दूसरी ओर वे हिन्दुओं के धार्मिक आदर्शों को भी सौजन्य की दृष्टि से देखते थे। प्रेम-काव्य की रचना में इसी भावना का आधार है।

प्रेम-काव्य का परिचय चारणकाल ही से मिलना प्रारम्भ हो जाता है; मुल्ला दाऊद ने 'चंदावन' या 'चंदावत' की रचना की थी। उस समय अलाउद्दीन खिलजी का राजत्वकाल था जिसमें हिन्दुओं पर सख्ती की जाती थी। वे घोड़े पर नहीं चढ़ सकते थे। विलास-सामग्री का उपयोग नहीं कर सकते थे। इतना सब होते हुए भी मुसलमानी हृदयों में हिन्दू-प्रेम के भाव वर्तमान थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धार्मिक काल के प्रेम-काव्य का आदि 'चंदावन' या 'चंदावत' से ही मानना चाहिये । यद्यपि इस प्रेम-कथा की परवर्ती परम्परा बहुत बाद में प्रारम्भ हुई पर इसका श्रीगणेश मुल्ला दाऊद ने कर दिया था। मुल्ला दाऊद के बाद सम्भव है कुछ और भी कथाएँ लिखी गई हों पर वे सब अभी तक अप्राप्य हैं। जायसी ने पद्मावत में लिखा है :—

विक्रम धंसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गयउ पतारा ॥
मधू पाछ मुगधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी ॥
राजकुंवर कंचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयउ ॥
साधे कुंवर खंडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू ॥
प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा। उषा लागि अनिरुध वर बांधा ॥

इस उद्धरण के अनुसार संभवतः जायसी के पूर्व प्रेम-काव्य पर कुछ ग्रन्थ लिखे जा चुके थे—स्वप्नावती, मुग्धावती, मृगावती, खंडरावती, मधुमालती और प्रेमवती। इनमें से मृगावती और मधुमालती तो प्राप्त हैं, शेष के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। इनके साथ एक ग्रन्थ का और परिचय मिलता है। उसका नाम लक्ष्मणसेन पद्मावती है। यह ग्रन्थ संवत् १५१६ में लिखा गया। ग्रन्थकर्ता का नाम दामौ है। इसमें अधिकतर वीर रस है 'वीर कथा रस करूँ बषाना' अपभ्रंश काल के ग्रन्थों के समान इसमें बीच-बीच में संस्कृत में श्लोक और प्राकृत में गाथा हैं। संक्षेप में मृगावती और मधुमालती का परिचय इस प्रकार है :—

इसके रचयिता कुतुबन थे, जो शेख बुरहान के शिष्य थे। इनका आविर्भाव काल सं० १५५० माना जाता है, क्योंकि ये शेरशाह के पिता हुसेनशाह के समकालीन थे। मृगावती की कथा लौकिक प्रेम की कथा है जिसमें अलौकिक प्रेम का संपूर्ण संकेत है। कंचनपुर के राजा की राजकुमारी मृगावती पर चन्द्रगिरि के राजा का पुत्र मोहित हो जाता है। वह

मृगावती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रेम के मार्ग में योगी बनकर निकल जाता है। अनेक कष्ट झेलने के उपरान्त वह राजकुमारी को प्राप्त करता है। काव्य में कोई सौन्दर्य नहीं है, किन्तु ईश्वरीय विषयक संकेत यथेष्ट है। भाषा अवधी और छन्द दोहा चौपाई है। इसकी प्रति हरिश्चन्द्र पुस्तकालय में पहले मिली थी किन्तु फिर खो गई।

इसकी केवल एक प्रति रामपुर स्टेट लायब्रेरी में प्राप्त हो सकी है। इसके लेखक मंझन थे, इन्होंने १५४५ ई० में इसकी रचना की। यह

मधुमालती

कहानी मृगावती से कहीं अधिक आकर्षक और भावात्मक है। कल्पना भी इसमें यथेष्ट है। इसके द्वारा निस्वार्थ प्रेम की अभिव्यंजना सुन्दर रूप से होती है। इसमें कनेसर के राजा के पुत्र मनोहर और महारस की राजकुमारी मधुमालती के प्रेम का वर्णन है। कथा में वर्णनात्मकता का अंश अधिक है। प्रेम के चित्ररण में विरह को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। विरह ही मनुष्य के लिए ईश्वर को समझने का महत्वपूर्ण साधन है।

इन दो कवियों के बाद मलिक मुहम्मद जायसी का नाम आता है, जिन्होंने पद्मावत (या पदुमावती) की रचना की।

पद्मावत के लेखक मलिक मुहम्मद जायसी के जीवनवृत के विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। ये जायस के रहने वाले थे और अपने

पद्मावत (पदुमावती)

समय के सूफी संतों में विशेष आदर के पात्र थे। ये सैयद मुहीउद्दीन के शिष्य थे और चिश्तिया निजामिया की शिष्य परम्परा में ग्यारहवें शिष्य थे। मुहीउद्दीन के गुरु शेख बुरहान थे, जो बुन्देलखण्डी थे और शतायु होकर सन् १५६२ में मरे। जायसी सूफी सिद्धान्तों को तो जानते ही थे साथ ही साथ हिंदू धर्म के लोक प्रसिद्ध वृत्तांतों से भी परिचित थे और इस प्रकार जनता की धार्मिक मनोवृत्ति को सन्तुष्ट करने में विशेष सफल हुए। शेरशाह का आश्रय भी इन्होंने प्राप्त किया था। ये शारीरिक सौन्दर्य से विहीन थे। एक आँख से अन्धे थे और देखने में कुरूप।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'एक आँख कवि महमद गुनी' कहकर इन्होंने स्वयं अपना परिचय पद्मावती में दिया है। इनके दो प्रधान मित्र थे—यूसुफ मलिक और सलोनेसिंह, जिन्हें जायसी ने मियाँ के नाम से भी लिखा है। यूसुफ मलिक और सलोने मियाँ विषमय आम खाते हुए मर गये। जायसी भी उनके साथ थे पर ये बच गए। वे आम किसी विषैले जन्तु के खाये हुए थे। ये गाजीपुर और भोजपुर के महाराज जगतदेव (आविर्भाव संवत् १५८४) के आश्रित भी रहे। बाद में ये अमेठी नरेश के विशेष कृपापात्र हुए क्योंकि इन्हीं के आशीर्वाद से उन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी। इनकी कब्र भी अमेठी राज्य में है। इस प्रकार मरने पर भी इन्होंने अपना सम्बन्ध अमेठी से नहीं तोड़ा।

इन्होंने राम कृष्ण की उपासना, जो तत्कालीन समाज में अधिक लोकप्रिय थी, अपने काव्य की सामग्री नहीं बनाई, किन्तु तत्कालीन प्रचलित सूफी सिद्धांतों को सरल और मनोरंजक रूप में रख कर जनता की रुचि अपनी और आकर्षित की। सूफी सिद्धांतों को हिन्दू धर्म के प्रचलित विवरणों से सम्बद्ध कर इन्होंने नवीन प्रकार से हिन्दू हृदय को केवल कल्पना के आधार पर प्रेम कथा लिखकर अपने सिद्धांतों का प्रकाशन किया था, पर जायसी ने कल्पना के साथ-साथ ऐतिहासिक घटनाओं की शृङ्खला सजाकर अपनी कथा को सजीव कर दिया। यह ऐतिहासिक कथावस्तु चित्तौरगढ़ के हिन्दू आदर्शों के साथ थी जिससे हिन्दू जनता को विशेष आकर्षण था। यही कारण था कि जायसी की कथा विशेष लोकप्रिय हो सकी। साथ ही साथ प्रेम-कहानी का आकर्षक रूप भी रचना के प्रचार में सहायक हुआ। इन्होंने पद्मावती की रचना हिजरी ९४७ में की। इसके अनुसार जायसी का कविता काल संवत् १५९७ ठहरता है।

पद्मावत का महत्व उसके सुरक्षित रूप में है। फारसी लिपि में लिखे जाने के कारण यह ग्रन्थ पण्डितों के हाथों से बचा रह गया, नहीं तो उसकी शुद्धि न जाने कब की हो गई होती। उस समय अवधी का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो रूप था वही फारसी लिपि में सुरक्षित रह गया। अतः जायसी की रचना में तत्कालीन अवधी का रूप बच सका है। हिन्दी साहित्य के केवल जायसी ही ऐसे पुराने लेखक हैं जिनकी कृति का वास्तविक स्वरूप हमारे सामने है। पृथ्वीराजरासो महान् ग्रन्थ होते हुए भी संदिग्ध है, विद्यापति और मीरा के गेय गीत गायकों के कण्ठों से बहुत कुछ बदल गये हैं, कबीर के पद कबीर पन्थियों ने तोड़-मरोड़ डाले हैं तथा अन्य कवियों के ग्रन्थ पण्डितों ने शुद्ध कर डाले हैं।

जायसी ने तत्कालीन बोलचाल की अवधी में अपनी रचना की। उसमें फारसी और अरबी के स्वाभाविक और प्रचलित शब्द तथा मुहावरे भी मिलते हैं। सस्कृत के पण्डित न होने के कारण इनकी कृति स्वाभाविक बोल-चाल के शब्दों के यथातथ्य शब्दो से पूर्ण हैं। यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो संस्कृत का ज्ञान होने के कारण ये संस्कृत शब्दों को बोलचाल के रूप में न लिखकर शुद्ध रूप में ही लिखते। इनका संस्कृत न जानना भाषा के वास्तविक स्वरूप को सुरक्षित रखने में सहायक हुआ। मुसलमान होने के कारण इन्होंने अपनी कृति फारसी लिपि और बोलचाल की भाषा ही में लिखी। हाँ, एक कठिनाई अवश्य सामने आती है। उर्दू में स्वर के चिन्ह विशेष रूप से नहीं लगाये जाते, इसलिये कहीं कहीं पाठ निर्धारित करने में कठिनाई अवश्य आ जाती है। यों, इन्होंने प्रत्येक शब्द वैसा ही लिखा जैसा वह बोला जाता था। ठेठ हिंदी को फारसी लिपि में पढ़ना जरा कठिन है, इसलिए कहीं कहीं पाठ भेद है।

जायसी कबीर से बहुत अधिक प्रभावित हुए। हठयोग की सारी प्रवृत्ति तो इन्होंने कबीर से ही ली थी। साथ ही साथ ये हिन्दू धर्म में लोकप्रिय सिद्धांतों से भी साधारणतः परिचित थे। इन सब ज्ञान के साथ ये बड़े भारी सूफी थे और इसीलिए अपने समय में बहुत बड़े संत माने गए और इनकी रचनाएँ सुरक्षित रक्खी गईं। पद्मावत की अनेक विशेषताएँ भी हैं। प्रथम तो यह कि ग्रन्थ सूफी सिद्धांतों का सरल और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मनोरंजक निरूपण है। दूसरे, राम और कृष्ण की धार्मिक विचार-धारा से हटकर यह एक कहानी के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है। तीसरे, इसमें धार्मिक सहिष्णुता उच्चकोटि की है। मुसलमान होते हुए भी जायसी ने हिन्दू धर्म की प्रधान बातों पर अपनी कथा का आरोप किया है। और उनकी हँसी न उड़ाकर उन्हें गम्भीर रूप से सामने रक्खा है। चौथे यह काव्य कला का उत्कृष्ट नमूना है। भाषा और भाव सरल होते हुए भी सच्ची कविता का नमूना हिन्दी साहित्य के सामने प्रस्तुत है।

इस स्थान पर जायसी के साहित्यिक दृष्टिकोण पर विस्तारपूर्वक विचार करना समीचीन होगा।

जायसी ने अपने पद्मावत की कथा में आध्यात्मिक अभिव्यञ्जना रक्खी है। सारी कथा के पीछे सूफी सिद्धांतों की रूप-रेखा है, पर जायसी इस आध्यात्मिक संकेत को पूर्ण रूप से नहीं निबाह सके। उसका मुख्य कारण यह है कि जायसी ने मसनवी की शैली का आधार लेते हुए अपने काव्य में प्रत्येक छोटी से छोटी बात का इतना विस्तारपूर्वक वर्णन किया है कि विषय के विश्लेषण में सारी आध्यात्मिकता खो गई है। जायसी का अत्यधिक विलास वर्णन भी आध्यात्मिकता के चित्र को अस्पष्ट कर देता है। इतना तो ठीक है कि रत्नसेन और पद्मावती का मिलन होता है जहाँ तक कि खुदा और बन्दे का एकीकरण है, पर जहाँ रत्नसेन और पद्मावती का अश्लीलता की सीमा को स्पर्श करता हुआ शृङ्गार वर्णन है वहाँ आध्यात्मिकता को किस प्रकार घटित किया जा सकता है? अतः जायसी का संकेत विशेष-विशेष स्थानों पर ही है। सारी कथा का घटना पक्ष अध्यात्मवाद से नहीं मिल सका है। इसका एक कारण और भी हो सकता है। वह यह कि जायसी एक प्रेम-कहानी कहना चाहते हैं। ये अपनी प्रेम-कहानी के प्रवाह में सभी घटनाओं को कहते चलते हैं और आध्यात्मिकता भूल जाते हैं। जब मुख्य घटनाओं की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समाप्ति पर इन्हें अपने अध्यात्मवाद की याद आती है तो उसका निर्देश कर देते हैं। पर कथा की व्यापकता में अध्यात्मवाद सम्पूर्ण रूप से घटित नहीं हो पाता, क्योंकि कथा घटना प्रसङ्ग से प्रेरित होकर कही गई है।

जायसी कबीर से विशेष प्रभावित हुए थे। जिस प्रकार कबीर ने हिन्दू मुसलमानों के बीच भिन्नता की भावना हटानी चाही उसी प्रकार जायसी ने भी दोनों सम्प्रदायों में प्रेम का बीज बोने का प्रयत्न किया। दोंनों में सूफीमत के सिद्धांतों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है और इसी के फलस्वरूप दोनों रहस्यवादी हैं। ये संसार के प्रत्येक कार्य में एक परोक्ष सत्ता का अनुभव करते हैं और उसी को प्रधान मान कर ईश्वर की महानता का प्रचार करते हैं। अंतर केवल इतना है कि कबीर अन्य धर्मों के लिए लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं रखते। वे उद्दंडता के साथ विपक्षी मत का खण्डन करते हैं, उनमें सहिष्णुता का एकान्त अभाव है, पर जायसी प्रेम-पूर्वक प्रत्येक धर्म की विशेषता स्वीकार करते हैं और ईश्वर के अनेक रूपों में भी एक ही सत्ता देखने का विनयशील प्रयत्न करते हैं। कबीर ने जिस प्रकार अपने स्वतन्त्र और निर्भीक विचारों के आधार पर अपने पंथ की कल्पना की उस प्रकार जायसी ने नहीं की, क्योंकि जायसी के लिए जैसा तीर्थ-व्रत था वैसा ही नमाज-रोजा। ये प्रत्येक धर्म के लिए सहिष्णु थे, पर कबीर अपने ही विचारों का प्रचार देखना चाहते थे।

कबीर विधि विरोधी और लोक-व्यवस्था का तिरस्कार करने वाले थे पर जायसी ने कभी किसी मत के खण्डन करने की चेष्टा नहीं की। इसका एक कारण था। जायसी का ज्ञानक्षेत्र अधिक विस्तृत था। इन पर इस्लाम की संस्कृति के साथ-साथ हिन्दू धर्म की संस्कृति का भी पूर्ण रूप से प्रभाव पड़ा था। वे कबीर की भाँति केवल सत्संगी जीव नहीं थे पर गम्भीर रूप से शास्त्रीय ज्ञान से पूर्ण मनुष्य थे। यह बात दूसरी है कि इन्होंने जन-साधारण की अवधी भाषा का प्रयोग किया, इस प्रकार का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रयोग तो तुलसीदास ने भी किया था। ये भाषा के व्यवहार में कबीर के समकक्ष होते हुए भी ज्ञान निरूपण में अधिक मननशील और संयत थे। ये मसनवी की शैली में प्रेम-कहानी कहते हुए भी अपनी गम्भीरता नहीं खोते। यही उनकी विशेषता है।

ना नारद तब रोइ पुकारा।
एक जुलाहै सौं में हारा॥ १॥

जायसी ने अपनी समदृष्टि से दोनों धर्मों को अपनी प्रेम-कहानी के सूत्र से एक कर दिया है। हिन्दू पात्रों के जीवन से इन्होंने सूफी सिद्धांत निकाले हैं। अखरावट में भी उन्होंने एक ओर सूफी मत का वर्णन किया है, दूसरी ओर वेदान्त का।

(क) मुसलमान संस्कृति :—

१—मुसलमान संस्कृति का स्पष्टतः प्रभाव तो पहले जायसी की रचना शैली पर पड़ा है। पद्मावत की रचना शैली मसनवी के ढंग की है। समस्त रचना में अध्याय और सर्ग न होकर घटनाओं के शीर्षकों के आधार पर खण्ड हैं। आद्योपान्त प्रबन्धात्मकता की रक्षा की गई है।

२—समस्त कथा में सूफी सिद्धान्त बादल में पानी की बूंद की भाँति छिपे हुए हैं।

३—जायसी की इस्लाम धर्म में पूरी आस्था थी। फलतः उन्होंने मसनवियों की प्रेम पद्धति का ही अधिक अनुसरण किया है।

४—जायसी के विरह-वर्णन में वीभत्सता आ गई है। शृङ्गार रस के अन्तर्गत विरह में रति की भावना प्रधान रहनी चाहिये, तभी रस की पुष्टि होगी। जायसी ने विरह में इतनी वीभत्सता ला दी है कि उससे रति-भाव को बहुत आघात लगता है।

५—मसनवी की वर्णनात्मकता भी जायसी को विशेष प्रिय थी। उन्होंने छोटी-छोटी बातों का बड़ा विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कथा का कलेवर चाहे जितना बढ़ जावे, पर सजीवता पर आघात लगता है।

(ख) हिन्दू संस्कृति :—

१—डिंगल साहित्य के बाद हिन्दी कविता का जो प्रवाह मध्य देश में हुआ उसमें व्रजभाषा और अवधी का अधिक प्रभाव रहा। यों तो अमीर खुसरो ने खड़ी बोली, व्रजभाषा और अवधी तीनों पर अपनी प्रतिभा का प्रकाश डाला था, पर यह रचना केवल प्रयोगात्मक थी। जायसी ने अवधी को साहित्य में प्रमुख स्थान दिया। बाद में तुलसी ने "मानस" तो अवधी में ही लिखा था। जायसी का अवधी प्रयोग असंस्कृत है पर भाषा की स्वाभाविकता, सरसता और मनोगत भावों की प्रकाशन-सामग्री ने जायसी की अवधी को साहित्य-क्षेत्र में मान्य बना दिया। इस अवधी-प्रयोग के साथ जायसी ने हिन्दी छन्दों का भी सरल प्रयोग किया है। दोहा और चौपाई यद्यपि कुतुबन और मंझन द्वारा भी प्रयुक्त हो चुके थे पर प्रेमाख्यानक काव्य में इन छन्दों का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग जायसी के द्वारा ही हुआ है। पद्मावत तथा अखरावट दोहा, चौपाई छन्दों में ही लिखा गया। सात चौपाइयों के बाद दोहा छन्द है। चौपाई की एक पंक्ति ही पूरा छन्द मान ली गई है। यदि दो पंक्तियों को छन्द माना जाता तो जायसी को आठ पंक्तियाँ लिखनी पड़तीं।

२—जायसी ने हिन्दू संस्कृति के अन्तर्गत अनेक दार्शनिक और धार्मिक बातों की चर्चा की है यद्यपि यह चर्चा अनेक रूपों में अपूर्ण है

३—संयोग और वियोग शृङ्गार-वर्णन यद्यपि कहीं-कहीं मसनवी की प्रेम पद्धति से प्रभावित हो गये हैं पर वे अन्ततः हिन्दू संस्कृति के आधार पर ही लिखे गये हैं। हिन्दू पात्रों के होने के कारण उनके दृष्टिकोण भी हिन्दू आदर्शों से पूर्ण हैं। विरह में षट्ऋतु और बारहमासा तो हिन्दी के लिये एक विशेष वस्तु है। अलंकारों के वर्णन में हिन्दी काव्य-परिपाटी का ही अनुसरण किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४—पात्रों का चरित्र-चित्रण हिन्दू जीवन से पूर्ण साम्य रखता है। पात्र स्वभावतः दो भागों में विभाजित हैं:—१—सतोगुणी तथा २—तमोगुणी। दोनों में संघर्ष होता है और पाप पर पुण्य की विजय होती है। सम्पूर्ण कथा दुखान्त होकर एक शिक्षा के रूप में समाप्त हो जाती है। यही बात पद्मावत के प्रत्येक पात्र के सम्बन्ध में है।

पद्मावत की कथा के विषय में

पद्मावत की कथा अन्य प्रेम-कथाओं की भाँति प्रेम की अनुभूतियों से पूर्ण है। सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्वसेन की पुत्री पद्मावती के सौंदर्य की प्रशंसा हीरामन तोता से सुन कर चित्तौड़ का राजा रत्नसेन उससे विवाह करने के लिये सिंहलद्वीप की ओर प्रस्थान करता है। मार्ग में अनेक विस्तृत सागरों को पार कर वह सिंहलद्वीप पहुँचता है। वहाँ शिवाजी की सहायता से भीषण युद्ध के बाद रत्नसेन पद्मावती से विवाह करता है। कुछ दिनों के बाद वह चित्तौड़ लौट आता है। ज्योतिष सम्बन्धी अनाचार पर रत्नसेन राघवचेतन को देश निकाला दे देता है जो अलाउद्दीन से मिलकर, पद्मावती के सौंदर्य की कहानी कहकर चित्तौड़ पर चढ़ाई करवा देता है। गोराबादल की सहायता के कारण अलाउद्दीन विजय प्राप्त नहीं कर सका। रत्नसेन की अनुपस्थिति में देवपाल अपनी दूती भेज कर पद्मावती से प्रेम याचना करता है। रत्नसेन जब यह सुनता है तो वह द्वन्द्व युद्ध में देवपाल का सिर काट लेता है पर देवपाल की सांग से खुद भी मर जाता है। पद्मावती और नागमती सती हो जाती हैं। स्वयं कवि इस कथा का सारांश स्तुतिखण्ड में इस प्रकार देता है :—

सिंहल द्वीप पदमिनी रानी।
रत्नसेन चितउर गढ़ आनी॥
अलाउद्दीन देहली सुलतानू।
राघव चेतन कीन्ह बखानू॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुना साहि गढ़ छेंका आई।
हिन्दू तुरकन भई लराई॥
आदि अंत जस गाथा अहै।
लिखि भाखा चौपाई कहै॥[1]

पद्मावत की कथा का विस्तार कवि ने बड़े मनोरंजक ढङ्ग से किया है। जहाँ पर घटनाओं की वास्तविकता का चित्रण है वहाँ पर तो कवि मानव जगत से ऊपर उठ गया है। घटनाओं की शृङ्खला पूर्ण स्वाभाविक है। यदि दोष है, तो वह आदर्श और अतिशयोक्ति के कारण। कथा में कवि की मनोवृत्ति ऐसी ज्ञात होती है कि वह संसार को उसके वास्तविक नग्न रूप में देखना चाहता है। पर आध्यात्मिक सन्देश और आदर्श के प्रति प्रेम, ऐसा करने में कवि को रोकते हैं। रत्नसेन के प्रेमावेश में अस्वाभाविकता है। यह अस्वाभाविकता इसलिये आ गई है कि कवि इस प्रेमावेश को आत्मा या साधक के प्रेमावेश में घटित करना चाहता है। वस्तुस्थिति के वर्णन में जो अस्वाभाविकता है उसमें भी साहित्य के आदर्श बाधा डालते हैं। कहीं-कहीं उनमें आध्यात्मिक तत्व खोजने के प्रयत्न में भी स्वाभाविकता का नाश हो जाता है। यत्र-तत्र अतिशयोक्ति का बड़ा प्रयोग हुआ है। इसमें चाहे साहित्यिक चमत्कार भले ही बढ़ जाय पर स्वाभाविकता के मूल पर कुठाराघात होता है।

पद्मावत की कथा इतिवृत्तात्मक होते हुये भी रसात्मक है। बिना इतिवृत्त के कौतूहल की सृष्टि नहीं होती और बिना वर्णन-विस्तार के रसात्मकता नहीं आती। जहाँ जायसी ने कौतूहल की सृष्टि की है वहाँ उन्होंने वर्णन-विस्तार में भी मनोरंजन की यथेष्ट सामग्री रक्खी है। वस्तु के पाँच भाग होते हैं :-१—आरंभ, २—आरोह, ३—चरम सीमा, ४—अवरोह और ५—अन्त। रसात्मकता के साथ कथावस्तु का रूप इस प्रकार है :—

---

[1]पद्मावत स्तुति खंड, पृष्ठ १०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

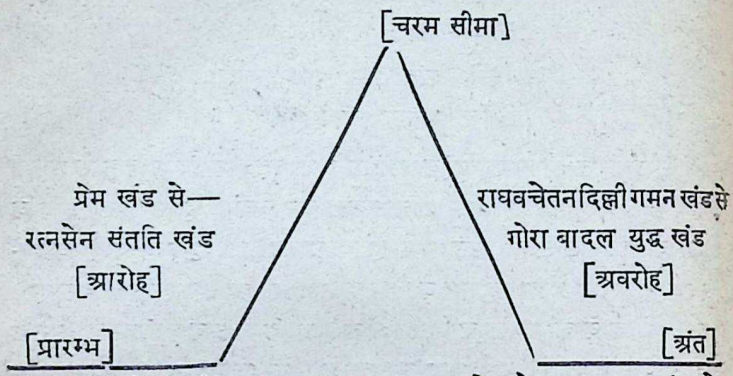

'राघवचेतन देश निकाला' खण्ड ही कथा को बदल देता है। अतः वही कथा की चरम सीमा है। 'जन्म खण्ड' से लेकर 'नखशिख खण्ड' तक वातावरण की सृष्टि है। 'प्रेम खण्ड' से संघर्ष प्रारम्भ होता है जो 'राघवचेतन देश निकाला' खंड में उत्कर्ष को प्राप्त होकर चरम सीमा का निर्माण करता है। 'राघवचेतन दिल्ली गमन' खंड से अवरोह प्रारम्भ होता है और उसकी समाप्ति गोरा बादल के युद्ध में होती है। अंत में रत्नसेन-देवपाल युद्ध से पद्मावती और नागमती के सती होने में कथा की समाप्ति है।

पद्मावत में कथावस्तु की ही प्रधानता है क्योंकि कवि ने केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख किया है जिनसे पात्रों के आदर्श की पूर्ति होते हुए भी कौतूहल उत्पादन करने वाली प्रेम कथा की रूप-रेखा निर्मित हो जावे। अतः पद्मावत घटना-प्रधान कहा जा सकता है, पात्र-प्रधान नहीं। घटना-प्रधान में वर्णनात्माकता का बहुत बड़ा स्थान है जिस पर पीछे विचार हो चुका है।

पद्मावत का सबसे बड़ा सौंदर्य पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। नागमती का विरह वर्णन, उसका उन्माद, पशु-पक्षियों की उससे सहानुभूति प्रकट करना आदि सभी स्वाभाविकता के साथ वैदग्धपूर्ण भाषा में वर्णित हैं। बारहमासा में वेदना का कोमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन का मर्मस्पर्शी माधुर्य, प्रकृति की सजीव अभिव्यक्ति में हृदय की मनोहर अनुभूति है। इसी मनोवैज्ञानिक चित्रण में रसों का सफल प्रदर्शन हुआ है। जहाँ रत्नसेन पद्मावती मिलन में संयोग और नागमती विरह-वर्णन में वियोग शृङ्गार की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वहाँ गोराबादल के उत्साह में वीर रस जैसे साकार हो गया है। रत्नसेन के योगी होने और कथा के अंतिम भाग में मारे जाने पर करुण रस से ही नहीं प्रत्युत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी पद्मावत प्रेम-काव्य का एक चिरस्मरणीय ग्रंथ रहेगा।

जायसी के पश्चात् प्रेम-काव्य में चित्रावली के लेखक उसमान का नाम आता है।

चित्रावली को हम पद्मावत की छाया कह सकते हैं। पद्मावत में जिन-जिन विषयों पर प्रकाश डाला गया है उन्हीं विषयों पर चित्रावली में भी विस्तारपूर्वक वर्णन है। किन्तु यह कथा पद्मावत की भाँति ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बद्ध नहीं है। यह कल्पना-प्रसूत है।

चित्रावली के पश्चात् प्रेम-काव्य-परम्परा में ज्ञानदीप, हंस जवाहर, इन्द्रावती, प्रेमरतन, रसरतन, कनकमंजरी, कामरूप की कथा, चन्द्रकला, प्रेम पयोनिधि इत्यादि पुस्तकें उपलब्ध होती हैं जिन पर जायसी की रचनाओं का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

प्रेम-काव्य का सिंहावलोकन

हिन्दू और मुसलमान संस्कृतियों का प्रेमपूर्ण सम्मिलन ही प्रेम काव्य की अभिव्यक्ति है।

प्रेम-काव्य की समस्त कथा हिन्दू पात्रों के जीवन में घटित होती है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसमें स्थान-स्थान पर हिन्दू देवी और देवताओं के लिये सम्मान की शब्दावलियाँ प्रयुक्त हैं। यद्यपि ऐसी प्रेम-कथाओं का निष्कर्ष एकमात्र सूफी मत का प्रतिपादन ही है, पर उसमें हिन्दू धर्म के लिये न तो अश्रद्धा है और न अपमान ही। हिन्दू धर्म और देवताओं का निर्देश अलौकिक घटनाओं और चमत्कार उत्पन्न करने में पाया जाता है। सारी कथा-वस्तु प्रेमाख्यान में ही विस्तार पाती है और उसमें किसी प्रकार की उपदेश देने की प्रवृत्ति लक्षित नहीं होती। कथा समाप्ति पर संक्षेप में कथा के अंगों और पात्रों को सूफीमत पर घटित कर दिया जाता है और समस्त कथा में एक आध्यात्मिक अभिव्यंजना आ जाती है। उदाहरण के लिए जायसी का पद्मावत ही लिया जा सकता है। समस्त कथा रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम और उसके विकास में समाप्त हो जाती है, अन्त में जायसी इस कथा में सूफी सिद्धान्तों की रूप-रेखा निर्धारित करते हैं। अतः हिन्दू धर्म के वातावरण में सूफी सिद्धान्तों का प्रचार करना इस प्रेम-काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है।

वर्ण्य विषय

यहाँ एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए। सभी प्रेम-कथाएँ मुसलमानों के द्वारा नहीं लिखी गईं। बहुत से हिन्दू लेखकों ने भी प्रेम-कथाएँ लिखी हैं जिनमें प्रेम-काव्य की परम्परा का अनुसरण किया गया है। कथावस्तु भी हिन्दू पात्रों के जीवन को स्पर्श करती है, पर उसमें किसी सूफी सिद्धान्त के निरूपण करने का प्रयत्न नहीं किया गया। उसमें केवल आख्यायिका और उससे उत्पन्न मनोरंजन की भावना ही प्रधान है। यह आख्यायिका कहीं-कहीं ऐतिहासिक हो जाती है, कहीं-कहीं काल्पनिक। हरराज की 'ढोला मारवणी चउपही' काशीराम की 'कनकमञ्जरी', हरसेवक की 'कामरूप की कथा' आदि ऐसी प्रेम-कथाएँ हैं जिनमें केवल कथा का कौतूहल है, किसी सिद्धान्त विशेष का प्रतिवादन नहीं।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि जब प्रेम कथा किसी मुसलमान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के द्वारा लिखी गई है तो उसमें कथा को गति में सूफी मत के सिद्धान्तों की गति भी चलती रहती है, जब प्रेमकथा किसी हिन्दू के द्वारा लिखी गई है तो उनमें केवल प्रेम की रसमयी कहानी रहती है, किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन की चेष्टा नहीं।

इस प्रेम-काव्य की समस्त परम्परा में दोहा और चौपाई छन्द ही प्रयुक्त हुए हैं, वर्णनात्मकता में ये छन्द इतने उपयुक्त साबित हुए कि

छन्द

आगे चल कर तुलसीदास ने अपने मानस के लिए भी ये छन्द ही उपयुक्त समझे। अवधी भाषा के साहचर्य से दोहा और चौपाई छन्द इतने सफल हुए जितने वे ब्रजभाषा के सम्पर्क में आकर नहीं।

प्रेम-काव्य की भाषा अवधी है। भाषा के प्रथम कवि खुसरो थे। उन्होंने सबसे पहले ब्रजभाषा के साथ ही साथ अवधी में भी काव्य

भाषा

रचना की, यद्यपि उनका दृष्टिकोण पहेलियों तक ही सीमित था। खुसरो के समय में काव्य की दो ही प्रधान भाषाएँ थीं—ब्रजभाषा और अवधी। दोनों के आदर्श भिन्न-भिन्न थे। कालक्रमानुसार अवधी कविता में ब्रजभाषा से पहले प्रयुक्त हुई। अवधी ने अपभ्रंश का लोकप्रिय विअक्खरी या दोहया छन्द ही प्रयोग के लिए स्वीकार किया। खुसरो ने एक सुन्दर दोहा लिखा है :—

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केश।
चल खुसरो घर आपने, साँझ भई चहुँ देश।

दोहा छन्द अवधी में ऐसा फिट हुआ कि अन्य किसी भाषा में दोहे के साथ इतना न्याय नहीं हुआ। यही हाल चौपाई का रहा। अवधी में चौपाई का जो रूप निखरा वह ब्रजभाषा में भी नहीं। ब्रज-भाषा का सौन्दर्य तो पद, सवैया और कवित्त में उद्भासित हुआ। यही कारण है कि तुलसी ने मानस को अवधी में लिख कर दोहे और चौपाइयों का प्रयोग किया और कवितावली ब्रजभाषा में लिख कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सवैयों और कवित्तों का प्रयोग किया। गीतावली और विनयपत्रिका में भी ब्रजभाषा की छटा पदों में प्रदर्शित की। अवधी भाषा ही चौपाई में सौन्दर्य ला सकी। सूरदास और बिहारी की ब्रजभाषा भी दोहों की रचना में अपेक्षाकृत असफल ही रही। बिहारी में पदलालित्य अवश्य है।

जो अवधी इस प्रेम-काव्य में प्रयुक्त है, वह अत्यन्त सरल और स्वाभाविक है। वह जन-समाज की बोली के रूप में है। उसमें संस्कृत के कठिन समास या दुरूह शब्दावलियाँ नहीं हैं। तुलसीदास ने अपनी अवधी को संस्कृतमय कर अपने शब्द-भांडार का अपरिमित परिचय दिया है, पर प्रेम-काव्य के कवियों ने अवधी में भाषा का अत्यन्त स्वाभाविक और यथातथ्य स्वरूप कविता में सुरक्षित रक्खा। साहित्य को प्रेम-काव्य की यह सबसे बड़ी देन है।

रस

प्रेम-काव्य में प्रधान रस शृङ्गार है। शृङ्गार के दो पक्ष हैं, संयोग और वियोग। प्रेम-काव्य में जहाँ सूफ़ीमत का प्राधान्य है, वहाँ वियोग शृङ्गार का आधिक्य है, क्योंकि साधक का विरह ईश्वर से बहुत दिनों तक रहता है। अन्त में अनेक प्रकार की कठिनाइयों को पार कर संयोग की अवस्था आती है। इसलिये वियोग का अनुभव यथेष्ट समय तक रहता है। यह वियोग प्रेम-काव्य में प्रायः किसी राजकुमारी के सौन्दर्य की कहानी सुनकर अथवा चित्र देख कर जाग्रत हुआ करता है। पद्मावत में रत्नसेन को हीरामन तोते द्वारा कही हुई पदमावती की प्रेम-कहानी सुन कर विरह का अनुभव होता है। चित्रावली में राजकुमार सुजान चित्रावली की चित्रसारी में उसका चित्र देखकर वियोग में दुःखी होता है। मान भी प्रेम-काव्य में मध्यम और गुरु हो जाता है। अधिकतर गुरु मान ही हुआ करता है, क्योंकि साधना में बड़ी कठिनाई से ईश्वर से सामीप्य प्राप्त होता है। प्रवास भूत और भविष्य दोनों प्रकार का होता है। नागमती का विलाप प्रवास के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृष्टिकोण से वियोग शृङ्गार का अच्छा उदाहरण है। प्रेम-काव्य में शृङ्गार रस की सम्पूर्ण विवेचना है।

शृङ्गार रस के अतिरिक्त अन्य सभी रस कथावस्तु की मनोरंजकता बढ़ाने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। हाँ, हास्य रस और रौद्र रस का अभाव अवश्य है। संभव है, प्रेम-काव्य में इनकी आवश्यकता न मानी गई हो। एक बात दृष्टव्य है। प्रेम-काव्य के वियोग शृङ्गार में कहीं-कहीं वीभत्स चित्रावली के भी दर्शन हो जाते हैं। इसका कारण संभवतः यह हो कि मसनवी की प्रेम पद्धति में विरह वर्णन कोमल न होकर भीषण हुआ करता है। मांस और रक्त का वर्णन तो विरह वर्णन में अवश्य ही रहता है। हिन्दू दृष्टिकोण से शृङ्गार रस के स्थायी भाव रति से मांस और रक्त की भावना का सामंजस्य हो ही नहीं सकता। अतः शास्त्रीय दृष्टिकोण से प्रेम-काव्य में रसदोष आ जाता है। शत्रु और मित्र रस समान रूप से साथ प्रस्तुत किये जाते हैं।

प्रेम-काव्य की परम्परा में आख्यायिका-साहित्य का यथेष्ट विकास हुआ। इस साहित्य का पोषण हिन्दू और मुसलमान जाति की दो भिन्न संस्कृतियों में हुआ। हिन्दू संस्कृति ने आचारगत आदर्शवाद और मुसलमान संस्कृति ने सूफ़ीमत के सिद्धान्तों से प्रेम-काव्य को पुष्ट किया। प्रेम-काव्य मसनवियों की शैली पर है और मसनवी सम्भवतः अल्फ लैला के घटना वैचित्र्य से निर्मित हुई।

विशेष

राम-काव्य

उत्तरी भारत में राम-भक्ति का जो प्रचार हुआ उसका एकमात्र श्रेय रामानन्द को ही है। रामानन्द के पूर्व यद्यपि राम-भक्ति के अनेक वैष्णव आचार्य हो चुके थे तथापि इसके वास्तविक प्रचारक रामानन्द ही समझे जाते हैं। रामानन्द ने संस्कृत के साथ ही जन-समाज की बोली में वैष्णव धर्म का प्रचार किया। रामानन्द के शिष्य कबीर ने यद्यपि राम नाम का आश्रय लेकर ही सन्तमत की रूपरेखा निर्धारित की तथापि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राम-भक्ति का पूर्ण विकास तुलसीदास की रचनाओं में ही है। राम-काव्य के कवियों पर विचार करने के पूर्व राम-भक्ति के विकास पर दृष्टि डालना उचित है।

श्रीराम का महत्व हमें सर्वप्रथम वाल्मीकीय रामायण में मिलता है। रामानन्द ने श्रीराम की दास्यभाव से उपासना की है।

राम-साहित्य की प्रगति

तुलसी ने रामानन्द के सिद्धान्तों को लेकर अपनी प्रतिभा से जो राम-भक्ति सम्बन्धी कविता लिखी उसका महत्व सर्वत्र सिद्ध हुआ। न केवल उनके काल में ही वरन् उनके परवर्ती काल में भी राम-भक्ति की धारा अबाध रूप से प्रवाहित होती रही। तुलसी के पश्चात् उनकी प्रतिभा की समता कोई न कर सका। कृष्ण-काव्य की लोकप्रियता किसी अंश तक राम-साहित्य के लिये बाधक मानी जा सकती है पर तुलसी की काव्य-रचना की उत्कृष्टता आने वाले कवियों को प्रसिद्धि प्राप्ति का अवसर न दे सकी। मानस के सामने कोई प्रबन्ध काव्य आदर न पा सका। राम-साहित्य में तुलसी की रचना कवियों के लिए पथ-प्रदर्शन का कार्य अवश्य करती रही। संक्षेप में राम-साहित्य की विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

१—राम-साहित्य ने वैष्णव धर्म के आदर्शों को सामने रखकर सेवक-सेव्य भाव पर जोर दिया।

२—ज्ञान और कर्म से भक्ति श्रेष्ठ समझी गई।

३—इस साहित्य में विविध प्रकार की रचना-शैलियों का प्रयोग किया गया।

राम-काव्य के सबसे प्रधान कवि तुलसीदास हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा से राम-काव्य को ही नहीं वरन् समस्त हिन्दी साहित्य को आलोकित कर दिया। तुलसीदास के पूर्व साहित्य में दो कवियों का नाम और मिलता है, जो किसी प्रकार तुलसीदास की काव्य-परम्परा से सम्बद्ध किये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जा सकते हैं। प्रथम कवि थे भगवतदास और दूसरे थे चंद कवि जिनका आविर्भाव काल सं० १५३२ के लगभग मानना चाहिए।

गोस्वामी तुलसीदास

तुलसीदास राम-साहित्य के सम्राट हैं। उन्होंने राम के चरित्र का आधार लेकर मानव जीवन की जितनी व्यापक और सम्पूर्ण समीक्षा की है, उतनी हिन्दी साहित्य के किसी कवि ने नहीं की। इस समीक्षा के साथ ही उन्होंने लोक शिक्षा का भी ध्यान रक्खा है और मानव जीवन में ऐसे आदर्शों की स्थापना की जो विश्वजनीन हैं और समय के प्रभाव से नहीं बदल सकते। उन्होंने आदर्शों की भित्ति पर अपनी भक्ति के स्वरूप की इतनी अच्छी विवेचना की कि वह तत्कालीन धार्मिक अव्यवस्था में पथ-प्रदर्शन का काम कर गई। इस भक्ति में नीति की धारा भी मिली है।

तुलसीदास का जीवन-चरित्र सम्पूर्ण रूप से हमारे सामने प्रामाणिक होकर अभी तक नहीं आया। स्वयं तुलसीदास ने अपना विस्तृत परिचय नहीं दिया। उनके ग्रन्थों में यत्र-तत्र कुछ विवरण बिखरा हुआ मिलता है। वह भी उन्होंने अपने परिचय के रूप में नहीं दिया, वरन् अपने दैन्य और निराश हृदय के भावों को प्रकाशित करने के लिए ही दिया है। यदि तुलसीदास को आत्म-ग्लानि न होती तो शायद वे अपने विषय में इतना भी नहीं लिखते। किन्तु जो कुछ भी हमारे सामने है वही प्रामाणिक है। संक्षेप में तुलसीदास द्वारा दिया हुआ आत्म-चरित उन्हीं के शब्दों में घटना के क्रम से इस प्रकार रखा जा सकता है।

अन्तर्साक्ष्य के आधार पर तुलसीदास का जीवनवृत्त

१. जन्म तिथि

२. माता-पिता

रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी।
तुलसीदास हित हिय हुलसी सी॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३. नाम

(अ) राम को गुलाम नाम राम बोला राख्यो राम,
काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।

(आ) केहि गिनती महँ गिनती जस बन घास।
नाम जपत भये तुलसी तुलसीदास॥

(इ) साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,
राम बोला नाम, हौं गुलाम राम साहि को।

४. बाल्यावस्था

(अ) मातु पिता जग जाय तज्यो
विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।

(आ) जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस,
खाए टूक सब के विदित बात दूनी सो।

(इ) तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ।

(ई) द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।

५. जाति और कुल

(अ) मेरे जाति पाँति न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।

(आ) जायो कुल मङ्गन बधावनों सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।

(इ) दियो सुकुल जनम शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।

६. गुरु

(अ) बन्दौं गुरु पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि।

(आ) मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।

(इ) मीजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि,
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७. गृहस्थ जीवन

(अ) लोग कहैं पोचु सो न सोचु न संकोचु,
मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं ।

(आ) काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब,
काहू की जाति बिगार न सोऊ ॥

(इ) लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय ।
जोबन जुर जुवती कुपथ्यकरि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ॥

८. वैराग्य और पर्यटन

(अ) मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत ।

(आ) अब चित चेतु चित्रकूटहिं चलु ।

(इ) सेइय सहित सनेह देह भर कामधेनु कलि कासी ।

(ई) मुक्ति जनम महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर ।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न ॥

९. वृद्धावस्था

(अ) चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो,
पाई तर आइ रह्यौ सुरसरि तीर हौं ॥

(आ) राम की सपथ सरबस मेरे राम नाम
कामधेनु काम तरु मोसे छीन छाम को ॥

(इ) जरठाइ दिसा रविकाल उग्यो अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ।

१०. रोग

(अ) अविभूत, वेदन विषम होत भूतनाथ,
तुलसी विकल पाहि पचत कुपीर हौं ।
मारिये तो अनायास कासीवास खास फल,
ज्याइये तो कृपा कर निरुज सरीर हौं ।

(आ) रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ पाहि पद पंकज गहतु हौं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११. यशप्राप्ति

(अ) हौं तो सदा खर को असावर तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो।

(आ) छार ते सँवारि के पहार हूँ तें भारी कियो।
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइ कै।

(इ) पतित पावन राम नाम सों न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो॥

१२. रचनाएँ

(अ) संवत सोरह सै इक्तीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥

(आ) जय संबत फागुन सुदि पचै गुरु दिनु।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल सुनि सुख छिनु छिनु॥

१३. मरणसंकेत

(अ) पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन छेम करी है॥

(आ) राम नाम जस वरणि कै भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए अबही तुलसी सौन॥

तुलसीदास के ग्रंथ

गोस्वामी जी के ग्रंथों की सूची रचनाक्रम से इस प्रकार दी जाती है :—

१. रामगीतावली	संवत्	१६२८
२. कृष्णगीतावली	,,	,,
३. रामचरितमानस	,,	१६३१
४. विनयपत्रिका	,,	१६३६ (लगभग)
५. रामलला नहछू	,,	,,
६. पार्वती मंगल	,,	,,
७. जानकी मङ्गल	,,	,,
८. दोहावली	,,	१६४०
९. सतसई	,,	१६४२
१०. बाहुक	,,	१६६९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११. वैराग्य सन्दीपिनी " १६६९
१२. रामाज्ञा प्रश्न " "
१३. बरवै " "

उपर्युक्त सूची वेणीमाधवदास के मूल गोसाईं चरित में दी हुई है। शिवसिंह सरोज ने तुलसीदास के ग्रन्थों की संख्या १८ मानी है। मिश्रबन्धु और ग्रियर्सन ने क्रमशः २५ तथा २१ ग्रन्थ माने हैं।

तुलसीदास और दर्शन

तुलसीदास के ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि उन्होंने संस्कृत के दर्शनशास्त्र का बड़ा अध्ययन किया था। दर्शन की अत्यन्त कठिन और रहस्यपूर्ण बातों को उन्होंने बड़ी ही सरलता से अपनी भाषा में रख दिया है। तत्कालीन साहित्य में कोई भी ऐसा कवि नहीं है जिसने दर्शन-शास्त्र का परिचय इतनी दक्षता से दिया हो। तुलसी के दो ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें उनके दर्शन-ज्ञान का दर्शन होता है। एक तो 'विनय-पत्रिका' है और दूसरी पुस्तक 'रामचरितमानस'। विनयपत्रिका में स्तुति, आत्म-बोध और आत्म-निवेदन का अंश अधिक हो जाने के कारण दर्शन का विशेष स्पष्टीकरण नहीं है। पर कुछ पद ऐसे अवश्य हैं जिनसे तुलसी का दर्शनज्ञान अवश्य लक्षित हो जाता है। शंकर के मायावाद के निरूपण में तो वे दक्ष हैं :—

"केशव कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए॥
सून्य भीति पर चित्र रङ्ग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरै भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे॥"

इस पद से ज्ञात होता है कि वे शंकर के अद्वैतवाद के प्रतिपादक होते हुए भी उसे "भ्रम" मानते हैं। जो हो, विनयपत्रिका में दर्शन के कुछ सिद्धान्तों का निर्देश अवश्य है पर उसमें विनय और प्रेम का अंश अधिकतर है।

"मानस" में तुलसीदास का दर्शन बहुत विस्तृत, व्यापक और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिमार्जित है। उन्होंने घटना प्रसङ्ग में भी दर्शन का पुट दे दिया है। जहाँ कहीं भी उन्हें भावनाओं के बीच में अवकाश मिला है, उन्होंने दर्शन की चर्चा छेड़ दी है। बालकाण्ड के आरम्भ में तो ईश्वरभक्ति का निरूपण करते हुए उन्होंने अपनी दार्शनिकता के अङ्ग-अङ्ग स्पष्ट किये हैं। इसी प्रकार अनेक संवादों में गोस्वामी जी ने अपनी दार्शनिकता का परिचय दिया है।

उनका दर्शन किस 'वाद' के अन्तर्गत आता है यह विवादग्रस्त है। कुछ समालोचकों ने इधर सिद्ध कर दिया है कि तुलसी अद्वैतवाद के पोषक थे और कुछ कहते हैं कि वे विशिष्टाद्वैतवादी थे। किन्तु अभी तक कोई भी मत स्पष्ट नहीं हो पाया।

तुलसी के दर्शन सम्बन्धी अवतरणों को देखने से ज्ञात होता है कि वे राम को 'विधि हरि शम्भु नचावन हारे' के रूप में मानते थे। तुलसी वैष्णव थे, अतः अवतारवादी भी थे। इसका प्रमाण उन्होंने मानस में अनेक बार दिया है। वे अपने ब्रह्म को अद्वैत के शब्दों में तो व्यक्त करते हैं पर विशिष्टाद्वैत के गुण से युक्त कर देते हैं :—

"एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द पर धामा।
व्यापक विश्व रूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥"

यहाँ एक, अनीह और अरूप ब्रह्म भक्तों के लिये अवतार लेता है। अद्वैतवाद के रूप में उनका ब्रह्म इस प्रकार है :—

(क) "ईश्वर अंश जीव अविनासी।"

(ख) "गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।"

इसी अद्वैत ब्रह्म को जब तुलसी विशिष्ट बनाते हैं तब सती से प्रश्न कराते हैं :—

"ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, सकल अनीह अमोद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद॥"

इसका उत्तर आगे इस प्रकार देते हैं :—

"सगुनहि अगुनहिं नहिं कछु भेदा।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार तुलसी ने अद्वैतवाद के अन्तर्गत विशिष्टाद्वैतवाद की सृष्टि कर दी है। मानस देखने से ज्ञात होता है कि गोस्वामीजी अद्वैत-वाद को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हुए भी रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत के अनुयायी थे।

तुलसी ने ब्रह्म की व्यापकता के किए उसे अद्वैतवाद का रूप अवश्य दिया और उसे माया से समन्वित किया भी, पर उसे उस रूप में नहीं ग्रहण कर सके। वे भक्त थे अतः उन्हें भक्ति का सहारा लेकर ब्रह्म को विशिष्टाद्वैत में निरूपित करना पड़ा। इसलिए जहाँ कहीं भी उन्हें अद्वैतवाद से ब्रह्म निरूपण की आवश्यकता पड़ी, वहीं उसके बाद उन्होंने उसे भक्ति-मार्ग का आराध्य भी मान लिया।

तुलसीदास और साहित्य

तुलसीदास ने जिस समय लेखनी उठाई थी उस समय उनके समक्ष चारणकाल के वीर गाथात्मक ग्रन्थ और प्रेम-काव्य तथा सन्त-काव्य के मुसलमानी प्रभाव से प्रभावित धार्मिक ग्रन्थ थे। चारणकाल में तो काव्य की परिभाषा ही स्थिर नहीं हुई थी। अतः उसमें साहित्यिक सौन्दर्य कम था। प्रेम-काव्य की दोहा और चौपाइयों की प्रबन्धात्मक रचना में शैली का सौन्दर्य अधिक था और भावों का कम। सन्त-साहित्य में तो एक-मात्र एकेश्वरवाद और गुरु की वन्दना थी। उसमें धर्म-प्रचार की भावना अधिक थी, साहित्य-निर्माण की कम। कृष्ण काव्य के आदर्श भी बन रहे थे, पर वे अभी पूर्णता को प्राप्त नहीं हुए थे। अतः तुलसी के समय में साहित्य बहुत ही साधारण कोटि का था। उन्होंने उसे केवल अपनी प्रतिभा से उत्कृष्ट बना दिया था। यही तुलसीदास की अपरिमित शक्ति है।

भाषा

तुलसी के पूर्व अवधी में रचना पर्याप्त मात्रा में हो चुकी थी। सूफी कवियों ने अवधी में ही रचना की थी पर उसमें साहित्यिक परि-ष्कार का अभाव था। रामचरितमानस की रचना करके गोस्वामी जी ने अवधी को सुसंस्कृत और मधुर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बना दिया। गोस्वामी जी ने शुद्ध और साहित्यिक ब्रजभाषा में भी रचना की है। कवितावली और विनयपत्रिका की भाषा इतनी सुन्दर और मँजी हुई है कि वैसी परिष्कृत तथा सम्बद्ध कविता ब्रजभाषा के कवियों में भी नहीं प्राप्त होती।

विनयपत्रिका में भोजपुरी का भी प्रयोग हुआ है, साथ ही बुन्देलखंडी के शब्द भी मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त गोस्वामी जी ने फारसी तथा अरबी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। अपनी रचना को जन-प्रिय बनाने के लिए गोस्वामी जी ने सरल शब्दों का ही प्रयोग किया है।

अलंकार और गुण

तुलसी की रचनाओं में भावों का प्रकाशन जिस कौशल से होता है उसमें अलंकार की आवश्यकता नहीं है। सरलता, स्वाभाविकता तथा वैदग्धपूर्णता ही तो तुलसी की शैली की विशेषता है। पर उनकी प्रतिभा इतनी असाधारण थी कि रचना में अलंकार स्वाभाविक रूप से चले आते हैं। जहाँ अर्थालंकारों से भाव-व्यञ्जना में सहायता मिलती है वहाँ शब्दालंकारों से भाषा के सौन्दर्य में भी वृद्धि होती है। गोस्वामीजी की कुशल लेखनी के द्वारा सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। गोस्वामीजी का मानस माधुर्य, प्रसाद तथा ओज गुणों का जीता-जागता चित्र है।

मनोवैज्ञानिक तुलसी

तुलसी ने मानव हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवृत्तियों का कितना अधिक अन्वेषण किया था और वे उनका प्रकाशन कितनी कुशलता से कर सकते थे, यह उनके मानस के विद्यार्थी ही जानते हैं। रसों के अन्तर्गत स्थायी तथा संचारी भावों के भेदों में हृदय की न जाने कितनी भावनाएँ भरी हुई हैं। मानवी संसार की विभिन्न परिस्थितियों की मनोदशा का अधिकारपूर्ण ज्ञान तुलसी के कवित्व की सबसे बड़ी व्याख्या है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुलसीदास ने मानस में लोक-शिक्षा का बहुत व्यापक रूप रक्खा है। उन्होंने केवल व्यष्टि के लिये ही नहीं, समष्टि के लिए ऐसे नियम की रूप-रेखा निर्मित की जो धर्म एवं समाज के लिए हितकर सिद्ध हों। वे एक महान सुधारक थे। उन्होंने अपने आराध्य की महत्वपूर्ण कथा में जीवन के अंगों को घटित करते हुए आदर्श की ओर संकेत करने का स्थान निकाल ही लिया। उन्होंने जिस कुशलता से उपदेश का अंश कथा में मिलाया है उससे शिक्षा और कला ने एक ही रूप धारण कर लिया है, यही कवि की प्रतिभा का द्योतक है।

तुलसीदास और राजनीति

तुलसीदास ने राजनीति के सिद्धान्तों का निरूपण अधिकतर मानस ही में किया है। पहले तो उन्होंने समकालीन परिस्थितियों का चित्रण कर कलयुग के प्रभाव से राजनीति की दुरवस्था का रूप खड़ा किया है, बाद में रामराज्य वर्णन में राजनीति के आदर्श की ओर संकेत किया है। मानस में अनेक स्थानों पर राजनीति के सिद्धान्तों के दर्शन होते हैं। तत्कालीन राजनीति के चित्र चार स्थानों पर प्रधान रूप से मिलते हैं। दोहावली, कवितावली, विनय-पत्रिका और मानस में ये स्थल इस प्रकार हैं :—

(१) दोहावली

गोंड़ गंवार नृपाल महि, यमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल॥

(२) कवितावली

एक तो कराल कलिकाल सूलमूल तामें
कोढ़ में की खाजु सी सनीचरी है मीन की।

रावण के शासन की अनीतियों से तुलसीदास ने अपने समय में यवनों की राजनीतिक अनीतियों का संकेत बड़े कौशल से किया है :—

भुज बल विश्व वस्य करि, राखेसि कोउ न स्वतन्त्र।
मंडलीक मीन रावन, राज करै निजमन्त्र ॥२१३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देव अच्छ गंधर्व नर, किन्नर नाग कुमारि ।
जीति बरी निज बाहुबल, बहु सुन्दर वर नारि ॥२१४॥

... ...

जेहि विधि होइ धरम निर्मूला, सो सब करहिं वेद प्रतिकूला ।
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं, नगर गाउँ पुर आग लगावहिं ॥

... ...

राजनीति की इन दुःखपूर्ण परिस्थितियों से ऊब कर तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर राजनीति के आदर्शों का निरूपण किया है ।

(१) राजा ईश्वर का अंश है :—

साधु सुजान सुसील नृपाला । ईस अंश भव परम कृपाला ॥

(२) राजा का धर्म प्रजा का सुख ही है :—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥

(३) राजा में समदृष्टि आवश्यक है :—

मुखिया मुखु सो चाहिए खान पान कहुँ एक ।
पाले पोषे सकल अँग तुलसी सहित विवेक ॥

(४) राजा के कार्यों के लिए प्रजा जन की सम्मति अपेक्षित है :—

मुदित महीपति मन्दिर आए । सेवक सचिव सुमन्त्रु बोलाए ।
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए । भूप सुमंगल बचन सुनाए ॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू । रामहिं राय देहु जुवराजू ।
जो पांचहि मत लागइ नीका । करहु हरषि हिय रामहिं टीका ॥

(५) राजा में चार नीतियाँ होनी चाहिए :—

साम दाम अरु दंड विभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा ॥

(६) राजा का सत्यव्रत होना आवश्यक है :—

रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहु वरु वचनु न जाई ॥

(७) राजा को निर्भीक और स्वावलम्बी होना चाहिए :—

(अ) निज भुज बल में बैरु बढ़ावा । देइहौं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा ॥
(आ) जौं रन हमहिं पचारै कोऊ । लरहिं सुखेन काल किन होऊ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(८) राजधर्म में आलस्य और असावधानी अक्षम्य है :—

बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस के सुरति बिसारी ॥
करसि पानसोवसिदिनु रातो। सुधि नहि तव सिर पर आराती ॥

(९) राज्य में प्रजा की समृद्धि आवश्यक है :- -

(अ) विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाई सुराजा ॥५॥

(आ) पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप के जसि करनी ॥६॥

(१०) रक्तपात यथासम्भव बचाया जावे :—

मंत्र कहौं निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालि कुमारा ॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई ॥७॥

(आ) नारि पाइ फिरि जाहिं जौं, तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सम्मुख समर महँ, तात करिअ हठि मारि ॥

(११) बैर उसी से हो जो बुद्धि बल से जीता जा सके :—

नाथ बैर कीजै ताही सों। बुद्धि बल सकिअ जीत जाही सों ॥

(१२) राजा को सभी कार्यों का श्रेय अपने सहायकों को देना चाहिये :—

(अ) सुनु केपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥

(आ) तुम्हरे बल में रावनु मारा। तिलकु विभीषन कहुँ पुनि सारा ॥

(१३) राजा को आश्रम धर्म का पूर्ण पालन करना चाहिए :—

(अ) अन्तहु उचित नृपहिं बनबासू। बय बिलोकि हिय होइ हरासू ॥

(आ) संत कहहिं अस नीति दसासन। चौथे पन जाइहिं नृप कानन ॥

(१४) राजा को स्वदेश स्वर्ग से भी अधिक प्रिय होना चाहिए :—

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। वेद पुरान विदित जग जाना।
अवध सरिस प्रिय मोंहि न सोऊ। यह प्रसंग जाने कोउ कोऊ ॥

इन उद्धरणों के अतिरिक्त मानस में ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जहाँ राजनीति का वर्णन बड़े सरल शब्दों में घटनाओं के वर्णन में किया गया है। संक्षेप में राजा को प्रजा का निष्पक्ष पालन और दुष्टों का नाश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करना चाहिये। उसे सत्यव्रती, निर्भीक, स्वावलम्बी, मेधावी, पराक्रमी और स्वदेश प्रेमी होना चाहिये।

तुलसीदास और समाज

तुलसीदास ने समाज की मर्यादा पर विशेष लिखा है। धर्म का पालन बिना समाज के मर्यादा पालन के नहीं हो सकता। समाज के दो भाग हैं :—व्यक्तिगत और सार्वजनिक। इन दोनों क्षेत्रों में तुलसीदास ने अपनी असाधारण काव्य शक्ति से महान संदेश दिया है। रामचरितमानस के पात्रों में लोक-शिक्षा का रूप प्रधान रूप से है। पारिवारिक जीवन का आचार मानस में यथास्थान सज्जित हैं। पिता, पुत्र, माता, पति, पत्नी, भाई, सखा, सेवक, पुरजन आदि का क्या पारस्परिक व्यवहार होना चाहिए, इन सब का उत्कृष्ट निरूपण तुलसीदास ने अपनी कुशल लेखनी से किया है। बाल्मीकि रामायण में मानवी भावनाओं के निरूपण के लिए आदि कवि ने अनेक प्रसंग लिखे हैं, जो स्वाभाविक होते हुए भी लोक-शिक्षा के प्रचारक नहीं हैं। लक्ष्मण का क्रोध, दशरथ के वचन आदि औचित्य का अतिक्रमण करते हैं।पर तुलसीदास ने ऐसे एक पात्र की भी कल्पना नहीं की, जिससे दुर्वासनाओं और अनाचारों की वृद्धि हो। उन्होंने तामसी पात्रों को भी सद्गुणों की वृद्धि करते हुये चित्रित किया है। सात्विक भावनाओं से भरे हुये पात्रों के तो उन्होंने मर्यादा का आधार ही अंकित कर दिया है। पारिवारिक जीवन के कुछ चित्र इस प्रकार हैं :—

(राम) बरष चारिदस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि तेखिहौं, मन जनि करसि मलान॥

(लक्ष्मण) उतरु न आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहुत काह बसाइ॥

(सीता) खग मृग परिजन नगर बनु, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल सुखमूल॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(भरत) बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति, जपत स्रवत नयन जल जात।
(विभीषण) जिन्ह पायन्ह के पादुकहि, भरत रहे मन लाइ।
ते पद आज विलौकिहौं, इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

इन पात्रों की चरित्ररेखा के साथ अन्य अनेक पात्रों में तुलसीदास ने जिस आदर्शवाद का अस्तर निर्धारित किया है, वह समाज को संयम शील बनाने में बहुत सहायक हुआ। यही कारण है कि हिन्दू जीवन में मानस के पात्र आज भी उत्साह और शक्ति की स्फूर्ति पहुँचा रहे हैं।

उत्तरकाण्ड में तुलसी ने रामराज्य में समाज का चित्र खींचा है, वह वर्णाश्रम धर्म से युक्त है। जब समाज में इस धर्म का पालन किया जावेगा, तभी उसमें सुख-समृद्धि होगी और वह रामराज्य के समान हो जावेगा।

बालकांड में भी समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदरपूर्ण स्थान का निर्देश है। सीता के स्वयंवर में पुरजनों को यथा स्थान बिठलाने का निर्देश करते समय तुलसीदास ने लिखा है।

तुलसी ने नारी जाति के प्रति बहुत आदर-भाव प्रकट किया है। पार्वती, अनुसुइया, कौशल्या, सीता, ग्राम वधू की चरित्र रेखा पवित्र और धर्मपूर्ण विचारों से निर्मित की गई है। कुछ आलोचकों का कथन है कि तुलसीदास ने नारी जाति की निन्दा की है और उन्हें ढोल, गँवार की श्रेणी में रखा है। किन्तु यदि मानस पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाय तो ज्ञात होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रमाण उसी समय उपस्थिति किये गये हैं, जब नारी ने धर्म के विपरीत आचरण किया है, अथवा निन्दात्मक वाक्य कहने वाले व्यक्ति वस्तुस्थिति देखते हुए नीतिमय वाक्य कहते हैं। ऐसी स्थिति में वे कथन तुलसीदास के न होकर परिस्थिति विशेष में पड़े हुये व्यक्तियों के समझने चाहिये।

पहली उक्ति सागर ने अपनी क्षुद्रता बतलाने के लिये राम से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कही और दूसरी रावण ने अपनी महत्ता बतलाने के लिये मन्दोदरी से कही।

तुलसीदास ने समाज का आदर्श विस्तारपूर्वक लिखा, क्योंकि उन्होंने अपने समय के समाज की दुरवस्था देखी थी। समाज-सुधार के लिये ही उन्होंने रामायण की चरित्र रेखा को अपने मानस में परिष्कृत कर नवीनता के साथ रख दिया। तुलसीदास की यही मौलिकता थी। उन्होंने अपने मानस में तत्कालीन समाज की दशा का चित्रण बहुत स्पष्टता के साथ किया है।

तुलसीदास ने मानस के उत्तरकांड में कलियुग का जो वर्णन किया है वह उन्हीं के समय की तत्कालीन परिस्थिति थी। उस अंश को पढ़ कर ज्ञात होता है कि कवि के मन में समाज की उच्छृङ्खलता के लिये कितना क्षोभ था। इसी क्षोभ की प्रतिक्रिया उनके लोक-शिक्षक समाज-चित्रण के आदर्श में है।

कठिन काव्य के प्रणेता 'केशवदास,

केशवदास हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में हैं। उन्होंने साहित्य की मीमांसा शास्त्रीय पद्धति पर करके काव्य-रचना का पांडित्यपूर्ण आदर्श रखा। उन्होंने जहाँ एक ओर ग्राम-काव्य के अन्तर्गत रामचन्द्रिका की रचना की वहाँ रीति-काव्य के अन्तर्गत कविप्रिया इत्यादि की भी रचना की। साथ ही उन्होंने चारणकाल के आदर्शों को ध्यान में रख कर जहाँगीर-जसचन्द्रिका और वीरसिंह देव चरित भी लिखे। इस प्रकार केशव ने अपने काव्य के आदर्शों में चारणकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल का समुच्चय उपस्थित किया। इसी दृष्टि से केशव के काव्य का महत्व है।

केशवदास सनाढ्य ब्राह्मण श्रीकृष्णदत्त के पौत्र और शीघ्रबोध बनाने वाले श्री काशीनाथ के पुत्र थे। नखशिख वाले प्रसिद्ध कवि बलभद्र उनके बड़े भाई थे। उनका जन्म सम्वत् १६१२ के लगभग टेहरी में हुआ था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केशवदास संस्कृत के आचार्य थे। यद्यपि रीतिशास्त्र का प्रारम्भ मुनिलाल के 'रामप्रकाश' और कृपाराम की 'हिततरंगिनी' से हुआ था, पर उसे व्यवस्थित रूप देने का श्रेय केशव को ही है।

केशव के सात ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं :—विज्ञानगीता, रतनबावनी, जहाँगीर जस-चन्द्रिका, बीरसिंहचरित, रसिकप्रिया, कविप्रिया और रामचन्द्रिका।

केशव की भाषा बुन्देलखंडी मिश्रित व्रजभाषा है। इस व्रजभाषा में उच्चकोटि का स्वाभाविक माधुर्य नहीं आया, क्योंकि केशव ने पांडित्य प्रदर्शन की चेष्टा में भाषा का चमत्कार नष्ट कर दिया है।

केशव का प्रकृति-चित्रण बड़ा व्यापक है। उन्होंने अपने सूक्ष्म निरीक्षण तथा अलंकार के प्रयोग से प्रकृति के दृश्य बहुत सुन्दर रीति से प्रस्तुत किये हैं।

रचना-तिथि

अन्तर्साक्ष्य से ही ज्ञात होता है कि रामचन्द्रिका की रचना कार्तिक शुक्ल सम्वत् १६५८ में हुई थी।

विस्तार

रामचन्द्रिका में ३९ प्रकाश हैं। प्रत्येक प्रसङ्ग में कथा-भाग का नाम देकर उसका वर्णन किया गया है।

छंद

केशवदास ने रामचन्द्रिका में अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। एक गुरु ॥ के श्री छन्द से लेकर केशवदास ने अनेक वर्णों और मात्राओं के छन्दों का प्रयोग किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि केशवदास छन्दों के निरूपण के लिए ही रामचन्द्रिका लिख रहे हैं। छन्दों का परिवर्तन भी बहुत शीघ्र किया है। कथा का तारतम्य छन्द परिवर्तन से बहुत-कुछ भङ्ग हो गया है।

वर्ण्य विषय

केशवदास ने रामचन्द्रिका में राम की समस्त कथा वाल्मीकि रामायण के आधार पर कही है, यद्यपि अनेक स्थलों पर अन्य संस्कृत ग्रन्थों का भी प्रभाव पड़ा है। इन ग्रन्थों में प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक मुख्य हैं। यह प्रभाव प्रकेरी या पताका रूप ही में अधिक हुआ है, सामान्य रूप से कथाका विकास वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही है। कथा का विभाजन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कांडों में न होकर प्रकाशों में है, पर कथा का विस्तार अनियमित है। उसमें प्रबन्धात्मकता नहीं है। प्रारम्भ में न तो रामावतार के कारण ही दिए गए हैं और न राम के जन्म का ही विशेष विवरण है। राजा दशरथ का परिचय देकर और रामादि चारों भाइयों के नाम गिना कर विश्वामित्र के आने का वर्णन कर दिया गया है। ताड़का और सुबाहु बध आदि का वर्णन संकेत रूप में है। हाँ, जनकपुर में धनुष यज्ञ का वर्णन सांगोपांग है। केशव का सम्बन्ध राजदरबार से होने के कारण, यह वर्णन स्वाभाविक और विस्तृत है। ऋतु वर्णन और नखशिख आदि ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक दिए गए हैं, क्योंकि ये काव्यशास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं और केशवदास काव्यशास्त्र के आचार्य हैं। शेष वर्णन कथा-भाग में आवश्यक होते हुए भी प्रायः छोड़ दिए गए हैं जिससे पात्रों की चरित्ररेखा स्पष्ट नहीं हो पाई। रामचरित्र में न तो कोई दार्शनिक और धार्मिक आदर्श है और न लोकशिक्षा का कोई रूप ही, जैसा मानस में है। इसी कारण रामचन्द्रिका मानस की भाँति लोकप्रिय नहीं हो सकी। मनोवैज्ञानिक चित्रण भी उतने विदग्धतापूर्ण नहीं जितने मानस में। मानस में कैकेयी के हृदय का स्पष्ट निरूपण है, उस चरित्र में दैवी भाव रहते हुए भी एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक सत्य है, पर रामचन्द्रिका में यह प्रकरण पूर्ण उपेक्षा से देखा गया है। समस्त प्रसङ्ग कितने क्षुद्र रूप में लिखा गया है :—

दिन एक कहो शुभ शोम रयो। हम चाहत रामहिं राज दयो।
यह बात भरत्थ कि मात सुनी। पठऊँ बन रामहिं बुद्धि गुनी।
तेहि मंदिर में नृप सो विनयो। वरु देहु हतो हमको जो दयो।
नृप बात कही हँसि हेरि हियो। वर माँगि सुलोचनि मैं जो दियो।

कैकेयी— नृपता सुविशेषि भरत्थ लहैं।
बरषें बन चौदह राम रहैं॥
यह बात लगी उर बज्र तूल।
हिय फाट्यो ज्यों जीरण दुकूल॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उठि चले विपिन कहँ सुनत राम।
तजि तात मात तिय बन्धु धाम॥

मानस में यह प्रकरण बहुत विस्तारपूर्वक और मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से वर्णित है। यहाँ सात पंक्तियों में समस्त प्रकरण कह दिया गया है। कैकेयी का चरित्र कितना ओछा है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे कैकेयी यह अवसर ही खोज रही थी। कैकेयी का चरित्र यहाँ मर्यादाहीन है।

केशव ने संवाद अवश्य बहुत लम्बे लिखे हैं, क्योंकि वे स्वयं संवाद का मर्म जानते थे। रामचन्द्रिका में निम्नलिखित संवाद बहुत बड़े हैं :

१. सुमति विमति संवाद (पृष्ठ २९—३२)
२. रावण बाणासुर संवाद (पृष्ठ ३३—३८)
३. राम परशुराम संवाद (पृष्ठ ६९—७८)
४. रावण अंगद संवाद (पृष्ठ १६५—१७५)
५. लवकुश भरतादि संवाद (पृष्ठ ३४४—३४७)

कथा की दृष्टि से रामचन्द्रिका में प्रसङ्गों का नियमित विस्तार नहीं है। जहाँ अलंकार कौशल का अवसर अथवा वाग्विलास का प्रसङ्ग मिला है। वहाँ तो केशवदास ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और जहाँ कथा की घटनाओं की विचित्रता है वहाँ कवि मौन हो गया है। अतः रामचन्द्रिका की कथावस्तु में काव्यचातुर्य स्थान-स्थान पर देखने को तो अवश्य मिलता है, पर चरित्रचित्रण या कथा की प्रबन्धात्मकता के दर्शन नहीं होते। भक्ति की जैसी भावना मानस में स्थान-स्थान पर मिलती है, वैसी रामचन्द्रिका के किसी भी स्थल पर नहीं है। फलतः रामचन्द्रिका में न तो कोई दार्शनिक सिद्धान्त निकलता है और न कोई धार्मिक ही।

रामकाव्य का सिंहावलोकन

राजनीति की जटिल परिस्थितियों में धर्म की भावना किस प्रकार अपना उत्थान कर सकती है यह रामकाव्य ने स्पष्ट कर दिया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अकबर का शासन मुगलकाल में धार्मिक सहिष्णुता का परिच्छेद अवश्य खोलता है, तथापि उसमें धार्मिक उत्थान की भावना नहीं है। उसमें हिंदू धर्म का विरोध इसीलिए नहीं है कि उससे राजनीति की समस्या हल होती है और वह अन्य धर्मों की भाँति सत्य की ओर निर्देश करता है। रामानन्द के बढ़ते हुए प्रभाव ने और कर्मकांड की उपेक्षा के साथ धर्म प्रचार में जनसमूह की भाषा की उपयोगिता ने रामसाहित्य को विकसित होने का यथेष्ट अवसर दिया। तुलसीदास ने अपने महान् और असाधारण प्रतिभा के द्वारा रामकाव्य को धर्म और साहित्य के सर्वोत्कृष्ट शिखर पर पहुँचा दिया। उसी समय वल्लभाचार्य की कृष्ण-भक्ति भी सूरदास के स्वरों में गूँजकर साहित्य का निर्माण कर रही थी। अतः ऐसा ज्ञात होता है कि विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में धर्म क्षेत्र ही में नहीं प्रत्युत साहित्य के क्षेत्र में भी प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी। इसका संकेत चौरासी वैष्णव की वार्ता में भी मिलता है, जहाँ तुलसीदास नन्ददास की कृष्णभक्ति पर आक्षेप कर उन्हें राम की भक्ति करने के लिए प्रेरित करते हैं और नन्ददास कृष्ण-भक्ति की प्रशंसा कर राम-भक्ति की अवहेलना करते हैं।

दोनों काव्यों के दृष्टिकोण भी अलग हैं। रामकाव्य का दृष्टिकोण दास्य भक्ति है और कृष्ण काव्य का दृष्टिकोण है सख्य भक्ति। दोनों की अलग-अलग दो भाषाएँ भी हो जाती हैं। रामकाव्य की भाषा है अवधी और कृष्णकाव्य की व्रजभाषा। किसी भी कृष्ण भक्त ने अवधी में कृष्णकथा नहीं लिखी, किन्तु तुलसी ने अपनी धार्मिक सहिष्णुता से प्रेरित होकर व्रजभाषा में भी राम ही की नहीं वरन् कृष्ण की कथा भी लिखी। अतः तुलसीदास ने राम साहित्य को ऐसा रूप दिया कि वह सच्चे वैष्णव साहित्य का प्रतिनिधि होकर धर्म और साहित्य के इतिहास में अमर हो गया।

रामकाव्य का वर्ण्य-विषय विष्णु के राम रूप की भक्ति ही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस भक्ति के निरूपण में जहाँ दार्शनिक और धार्मिक सिद्धान्तों की विवेचना की गई है, वहाँ राम की विस्तृत कथा भी

वर्ण्य विषय

अनेक रूपों में कही गई है। राम की कथा का स्वरूप अधिकतर वाल्मीकि रामायण और अध्यात्म रामायण के द्वारा निर्धारित किया गया है। रामानन्द के द्वारा प्रचारित विशिष्टाद्वैत की परिभाषा में रामकथा का विकास हुआ है, यद्यपि तत्कालीन प्रचलित धार्मिक सिद्धान्तों का भी निर्देश यथास्थान कर दिया गया है। इस काव्य के सर्वोत्कृष्ट कवि तुलसीदास हुए जिन्होंने रामचरित्र का दृष्टिकोण अध्यात्म रामायण से लेकर राम को पूर्ण ब्रह्म घोषित किया। रामकाव्य के अन्य परवर्ती कवियों ने तुलसीदास को ही अपना पथ-प्रदर्शक मान कर रामकाव्य की रचना की।

रामकाव्य की रचना दोहा-चौपाई ही में अधिक हुई। जो छन्द परम्परा सूफी कवियों ने रामकाव्य लिखने में प्रसिद्ध की थी, उसी छन्द परम्परा को रामकाव्य के कवियों ने भी स्वीकार किया, क्योंकि दोहा-

छन्द

चौपाई में प्रबन्धात्मकता का अच्छा निर्वाह होता है और राम की कथा प्रबन्धात्मकता ही है। दोहा-चौपाई के अतिरिक्त अन्य छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जिनमें प्रधानतः कुंडलिया, छप्पय, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि छन्द हैं। केशवदास ने तो रामचन्द्रिका लिखने में छन्द-शास्त्र का मंथन कर प्रस्तार के अनुसार अनेक छन्दों में रामकथा लिखी। ऐसे छन्द राम की कथा की उतनी अभिव्यक्ति नहीं करते जितनी केशव की काव्यकला की। रामचरित्रमानस में जहाँ श्लोक लिखे गये हैं वहाँ वर्ण-वृत्त छन्दों में भी रचना है, पर वे छन्द एक ही दो बार प्रयुक्त हुए हैं। परवर्ती कृष्णकाव्य के कवियों ने अधिकतर मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग किया है।

रामकाव्य की भाषा प्रधानतः अवधी है क्योंकि उसमें रामकाव्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का आदर्श ग्रन्थ रामचरितमानस लिखा गया। तुलसी ने अवधी के अतिरिक्त ब्रजभाष का प्रयोग भी अपने अन्य ग्रन्थों में किया है। केशवदास ने तो ब्रजभाषा ही में रामचन्द्रिका लिखी है। अतः रामकाव्य की दो भाषाएँ माननी चाहिए अवधी और ब्रजभाषा। इन दोनों भाषाओं के प्रवाह में अन्य भाषाओं की शब्दावली, वाग्धाराएँ और क्रियाएँ आदि प्रयुक्त हुई हैं। ऐसी भाषाओं में बुन्देली, भोजपुरी और फारसी तथा अरबी भाषाएँ हैं। इन भिन्न भाषाओं की सहायता से अवधी या ब्रजभाषा का रूप अधिक व्यापक हो गया है। उनमें सरलता के साथ भावाभिव्यंजना भी हुई है।

भाषा

रामकाव्य में नव रसों का प्रयोग है। राम का जीवन ही इतने भागों में विभाजित है कि उससे सम्पूर्ण रसों की अभिव्यक्ति होती है। वाल्मीकि रामायण महाकाव्य है। राम की समस्त कथा महाकाव्य के रूप ही में मानस में वर्णित है, अतः महाकाव्य के लक्षण के अनुसार सभी रसों का निरूपण होना चाहिये। इसीलिए मानस में सभी रसों का समावेश है। राम चन्द्रिका में भी नवरस वर्णन है। रामकाव्य के अन्य ग्रन्थों में भी विविध रसों का निरूपण है। दास्य भक्ति की प्रधानता होने के कारण संतकाव्य की भाँति रामकाव्य में भी शान्त रस का प्राधान्य है। राम विष्णु के अवतार हैं। वे राजकुमार हैं। उनका सीता से विवाह होता है, अतः उनमें सौन्दर्य और माधुर्य की भावना है। इसीलिए रामकाव्य में शृङ्गार रस भी प्रधान है। शान्त और शृङ्गार इन दो प्रधान रसों से रामकाव्य लिखा गया है। अन्य रस गौणरूप से प्रयुक्त हुए हैं।

रस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छठवाँ प्रकरण

कृष्ण-काव्य

कृष्ण-काव्य का प्रारम्भ विद्यापति से माना जाता है। किन्तु विद्यापति पर गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव का विशेष प्रभाव है। अतः कृष्ण-काव्य के विवेचन में जयदेव पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

जयदेव का जीवन-वृत्त अधिकतर नाभादास के भक्तमाल और प्रियादास द्वारा उसकी टीका से ज्ञात होता है। नाभादास के भक्तमाल में जयदेव का परिचय मात्र है। प्रियादास की टीका में जयदेव के जीवन पर कुछ अधिक प्रकाश डाला गया है। इनके जीवन के विषय में प्रामाणिक रूप से यही कहा जा सकता है कि इनका जन्म किंदुगिल्व (बङ्गाल) में हुआ था। इनके पिता का नाम भोजदेव था। बङ्गाल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबार में इन्होंने बड़ी प्रसिद्धि पाई। लक्ष्मणसेन का समय सन् ११७० (सं० १२२७) है। अतः यही समय जयदेव का मानना चाहिये। सीताराम शरण, भगवान प्रसाद ने जयदेव का समय सन् १०२५ से १२५० के मध्य माना है और मेकालिफ ने बारहवीं शताब्दी माना है। परन्तु वास्तव में जयदेव का समय तेरहवीं शताब्दी मानना चाहिए।

जयदेव

'गीतगोविन्द' की रचना लक्ष्मणसेन के ही राजत्व-काल में हुई थी। 'गीतगोविन्द' में जयदेव ने राधा और कृष्ण का मिलन, कृष्ण की मधुर लीलायें और प्रेम की मादक अनुभूति सरस और मधुर शब्दा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वली में लिखी है। 'गीतगोविन्द' के द्वारा राधा का व्यक्तित्व पहली बार मधुर और प्रेमपूर्ण बनाकर साहित्य में प्रस्तुत किया गया है। 'गीतगोविन्द' की पदावली कोमल और मधुर है। उसमें कामदेव के बाणों की मीठी पीड़ा है। कीथ 'गीतगोविन्द' की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि उसकी शब्दावली इतनी मधुर और भावों के अनुकूल है कि उसका अनुवाद किसी अन्य भाषा में ठीक तरह से हो ही नहीं सकता है।

जयदेव ने संस्कृत में 'गीतगोविन्द' की रचना करके अपने भाषाधिकार और भाव प्रदर्शन की कुशलता का सुन्दर परिचय अवश्य दिया, पर हिन्दी में उन्होंने अपनी यह कुशलता नहीं दिखलाई। अपने अनुपम वाग्विलास से उन्होंने विद्यापति और सूरदास जैसे महान् कवियों को प्रभावित किया। पर वे स्वयं हिन्दी में उत्कृष्ट कोटि की रचना नहीं कर सके।

'गीतगोविन्द' पर आध्यात्मिकता की विशेष छाप नहीं है, लौकिक शृङ्गार में चाहे आध्यात्मिकता का संकेत भले ही मान लिया जाय।

विद्यापति

विद्यापति बङ्गाली कवि नहीं थे। वे मिथिला के निवासी थे और मैथिली में उन्होंने अपनी कविता लिखी। लगभग चालीस वर्ष पूर्व बंगाली विद्यापति को अपना कवि समझते थे पर जब से उनके जीवन की घटनाओं की जाँच-पड़ताल बाबू राजकृष्ण मुकर्जी और डा० ग्रियर्सन ने की तब से बंगाली अपने अधिकार को अव्यवस्थित पाते हैं।

विद्यापति एक विद्वान् वंश के वंशज थे। उनके पिता गणपति ठाकुर अपनी विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध थे। विद्यापति बिसपी के रहने वाले थे। यह गाँव दरभंगे जिले में है और विद्यापति ने इसे राजा शिवसिंह से उपहार-स्वरूप पाया था। विद्यापति के आविर्भाव के सम्बन्ध में डा० उमेश मिश्र लिखते हैं :—"इनके पिता गणपति महाराज गणेश्वर के राजसभासद थे और राजसभा में अपने पुत्र विद्यापति को ले जाया करते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

थे। महाराज गणेश्वर की मृत्यु २५२ ल० सं० में हुई थी। अतः विद्यापति उस समय १०, ११ वर्ष की अवस्था के अवश्य रहे होंगे। इन सभी बातों से अनुमान होता है कि विद्यापति २५२ ल० सं० में लगभग १०, ११ वर्ष के थे।"

विद्यापति की मृत्यु के विषय में डा० मिश्र का अनुमान है कि ३५६ ल० सं० तक वे अवश्य जीवित रहे हैं। इस प्रकार विद्यापति ने १०० वर्ष से अधिक आयु पाई।

विद्यापति की पदावली संगीत के स्वरों में गूँजती हुई राधाकृष्ण के चरणों में समर्पित की गई है। उन्होंने प्रेम के साम्राज्य में अपने हृदय के सभी विचारों को अन्तर्हित कर दिया है। उन्होंने शृङ्गार पर ऐसी लेखनी उठाई है जिससे राधाकृष्ण के जीवन का तत्व प्रेम के सिवाय कुछ भी नहीं रह गया है।

विद्यापति की कविता गीतिकाव्य के स्वरों में है। गीतिकाव्य का यह लक्षण है कि उसमें व्यक्तिगत विचार, भावोन्माद, आशा-निराशा की धारा अबाध रूप से बहती है। कवि के अन्तर्जगत से सभी विचार व्यापार और उसके सूक्ष्म हृदयोद्गार उस काव्य में संगीत के साथ व्यक्त रहते हैं। विद्यापति की कविता में यद्यपि अधिक व्यक्तिगत विचार नहीं हैं पर उसमें भावोन्माद की प्रचंड धारा वर्षाकालीन नदी के वेग से किसी प्रकार भी कम नहीं है। वयःसन्धि, नख-शिख, अभिसार, मान-विरह आदि से कवि की भावना इस प्रकार सम्बद्ध हो गई है मानो नायक नायिका के काय व्यापार कवि की वासनामयी प्रवृत्ति के अनुसार हो रहे हों। विचार इतने तीव्र हो गये हैं कि उनके सामने राधा और कृष्ण अपना सिर झुकाकर उन्हीं विचारों के अनुसार कार्य करते हैं।

विद्यापति की कविता में शृङ्गार का प्रस्फुटन स्पष्ट रूप से मिलता है। भाव, विभाव, अनुभाव, आलम्बन, उद्दीपन इत्यादि उनकी पदावली में सुचारु रूप से चित्रित किये गये हैं। उनके सामने विश्व के शृङ्गार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में राधा और कृष्ण ही की मूर्तियाँ हैं। स्थायीभाव रति तो पदावली में आदि से अन्त तक है। इसके बीच में ईश्वरीय अनुभूति की भावना नहीं मिलती। एक ओर नवयुवक चंचल नायक है और दूसरी ओर यौवन और सौन्दर्य की अपरिमित सम्पत्ति लिये राधा।

विद्यापति ने राधा कृष्ण का जो चित्र खींचा है उसमें वासना का रंग बहुत प्रखर है। आराध्यदेव के प्रति भक्त की भावना इसमें लेश-मात्र नहीं है। सख्य भाव से जो उपासना की गई है उसमें कृष्ण तो यौवन में उन्मत्त नायक की भाँति हैं और राधा यौवन की मदिरा में मतवाली एक मुग्धा नायिका की भाँति। राधा का प्रेम भौतिक और वासनामय है। आनन्द ही उसका उद्देश्य और सौन्दर्य ही उसका कार्य है।

विद्यापति ने जीवन में शृङ्गार की प्रधानता मानी है। विद्यापति ने अन्तर्जगत का उतना हृदयग्राही वर्णन नहीं किया, जितना बहिर्जगत का। विद्यापति का संसार ही दूसरा है। वहाँ सदैव कोकिलाएँ कूजन करती हैं, फूल फूला करते हैं पर उनमें काँटे नहीं हैं। राधा के नेत्रों में रात समा जाती है और उसमें सौन्दर्य के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। विद्यापति के इस बाह्य संसार में भगवत भजन कहाँ, इस वयःसन्धि में ईश्वर की सन्धि कहाँ, सद्यःस्नाता में ईश्वर से नाता कहाँ और अभिसार में भक्ति का सार कहाँ? उनकी कविता विलास की सामग्री है, उपासना की साधना नहीं।

विद्यापति के हृदय का रूप उनकी वासनामयी कल्पना के आवरण में छिप जाता है। वे एक कल्पित राज्य में विहार करते हैं। वे अपनी कल्पना के सौन्दर्य में ऐसे डूब गये हैं कि किसी दूसरी ओर उनकी दृष्टि भी नहीं जाती। यहाँ कवि की कला मात्र है, उसका भक्ति भावमय व्यक्तित्व नहीं। विद्यापति की राधा प्रेम करती है। इस लिए कि वह स्त्री है और स्त्रियाँ प्रेम करना जानती हैं। राधा प्रेम करती है, इसलिये कि कृष्ण सुन्दर हैं और सुन्दरता से प्रेम होना स्वाभाविक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है, पर ऐसे प्रेम में एक दोष आ गया है और वह यह कि इस प्रेम में सदाचार की मात्रा कम है। विद्यापति की राधा सदाचार करना जानती ही नहीं। कवि भक्ति भावना से उत्तेजित होकर नहीं वरन् आनन्द में आकर कहता है।

अधर मंगइते अओध कर माथ। सहए न पार पयोधर हाथ॥

इसका एक कारण है, विद्यापति राजदरबार के बीच कविता पढ़ा करते थे। उन्हें राजसभा और अपनी कला का ही अधिक ध्यान था। उनका तो 'राजासिव सिंह रूप नारायन लखिमा देइ रमाने' की ओर विशेष आकर्षण था। इसीलिए कदाचित् उन्हें अपने संरक्षकों के मनोविनोद का ही अधिक ध्यान था। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षादि अलंकारों और भाव, विभाव, अनुभावादि पर उन्होंने अपनी कविता की नींव खड़ी की। यही कारण है कि उन्होंने अपने कला नैपुण्य प्रदर्शन के लिए साहित्यशास्त्र का मन्थन तो कर डाला, पर जीवन का रहस्य जानने के लिये मनुष्य समाज के अन्तर्रहस्यों की पर्यालोचना नहीं की। विद्यापति की कविता में स्त्रीत्व और पुरुषत्व की भावना जिस प्रबल वेग से बहती है, वैसी हम हिन्दी साहित्य के किसी भी स्थल पर नहीं पा सकते।

शृङ्गारिक कविताओं के अतिरिक्त विद्यापति के भक्ति सम्बन्धी पद बहुत कम हैं। ये पद शिव, दुर्गा और गंगा की भक्ति में लिखे गए हैं। इनमें नचारी पद भी हैं जो शिवजी की भक्ति में नृत्य के साथ गाए जाते हैं। काल सम्बन्धी पद शिवसिंह के राज्याभिषेक और युद्ध आदि पर लिखे गये हैं। इन दोनों वर्गों की कविता में विद्यापति की वर्णनात्मकता ही है कोई विशेष भावविन्यास नहीं। कवि ने अपनी विशेष प्रतिभा राधा-कृष्ण सम्बन्धी पदों में ही प्रदर्शित की है।

महाकवि सूरदास

हिन्दी साहित्य में काव्य का अथाह सागर भरने वाले महाकवि सूरदास का काल-निर्णय अभी तक अन्धकार में है। उनके काल-निर्णय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के लिए अन्तर्साक्ष्य पर ही विचार करना चाहिये। सूर के दृष्टिकूट सम्बन्धी कुछ पद भी उनकी जीवनी पर प्रकाश डालते हैं। सूर ने अपने को 'चन्द' का वंशज माना है। उनके छः भाई थे जो युद्ध में मारे गये थे। एक बार वे कुएँ में गिर पड़े थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें निकाला था।

मुन्शी देवीप्रसाद सूर को ब्राह्मण न मान कर भाट मानते हैं।

यदि दृष्टिकूट सम्बन्धी पद प्रामाणिक हैं तो स्पष्ट होता है कि सूर भाट कुल में उत्पन्न हुए थे।

'सूरसागर' के अतिरिक्त सूर के दो और ग्रन्थ उपलब्ध हैं—'सूर-सारावली' और 'साहित्य लहरी'। ये दोनों ग्रन्थ 'सूरसागर' के बाद बने होंगे क्योंकि उनके पद 'सूरसागर' में नहीं मिलते। 'साहित्य लहरी' में उन्होंने रचना-समय इस प्रकार लिखा है :—

"मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनन्द को लिखि सुवल संवत् पेख॥

[मुनि = ७, रसन = ०, रस = ६, दसन गौरीनन्द = १ = १६०७ संवत्]

अतः स्पष्ट है कि 'सारावली' का रचना-काल सं० १६०७ है। 'सूरसारावली' लिखते समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। यदि हम 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' का रचना-काल एक ही मानें, तो सं० १६०७ में सूर की अवस्था ६७ वर्ष की रही होगी। अर्थात् उनका जन्म सं० १५४० रहा होगा।

सूर ने शिशु और बालजीवन की प्रत्येक भावना का इतना गम्भीर अध्ययन किया है कि वे प्रत्येक परिस्थिति के चित्र बड़ी कुशलता और स्वाभाविकता से उतार सके हैं। उन्होंने बालक कृष्ण और माँ यशोदा के हृदयों की भावनाओं को इतने सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत किया है कि वे चिरन्तन और सत्य हैं। विविध मानसिक अवस्थाओं के जो चित्र खींचे गये हैं वे मानवी भावनाओं के इतिहास

१—मनोवैज्ञानिक चित्रण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में कभी पुराने न होंगे। बालक के सरल से सरल कार्य को वे बालक बनकर ही वर्णन करते हैं और उसका अपार सौन्दर्य पाठकों के समक्ष बिखेर देते हैं।

२—लौकिक आचार

ग्राम वातावरण में लौकिक आचारों के निरूपण से पालक के जीवन में कितनी स्वाभाविकता और सरसता छा जाती है यह 'सूरसागर' के स्थलों से स्पष्ट हो जाता है। जन्म उत्सव, छठी आदि अनेक लौकिक आचारों में में जहाँ कहीं मनोवैज्ञानिक चित्रण की सामग्री है वहाँ ग्राम्य वातावरण की स्वाभाविकता भी वर्णन को उत्कृष्ट बना देती है।

३—साहित्यिक परम्परा

सूर के आराध्य का चित्रण जयदेव तथा विद्यापति कर चुके थे। इन दोनों कवियों ने कृष्ण का चित्रण शृङ्गार की दृष्टि से किया परन्तु सूर का लक्ष्य ही और था। साहित्य परम्परा का प्रभाव सूर पर भी पड़ा। इन्होंने नायक-नायिका के आलम्बन विभाव में श्रीकृष्ण और राधा को खड़ा किया। श्रीमद्भागवत में राधा नहीं हैं सूर ने शृङ्गार के आलम्बन में राधा को प्रेम के उत्कर्ष में उपस्थित किया है, पर उसमें धार्मिक भावना का प्रधान स्थान है। सूर ने धार्मिक भावना के साथ-साथ साहित्यिक आदर्श की रक्षा के लिए राधा को भी कृष्ण के साथ प्रमुख स्थान दिया है।

सूर का कवित्व

सूरदास हिन्दी साहित्य के महाकवि हैं; उन्होंने न केवल भाव और भाषा के दृष्टिकोण से साहित्य को सुसज्जित किया वरन् धार्मिक क्षेत्र में व्रजभाषा के सहारे कृष्ण-काव्य की एक विशिष्ट परम्परा को जन्म दिया। अतः वे केवल व्यक्तिगत काव्य आदर्शों को लेकर ही कवि नहीं हैं वरन् साहित्य क्षेत्र में प्रवृत्तियों को नवीन रूप देने वाले कलाकार भी हैं। उनकी प्रतिभा यद्यपि सर्वतोमुखी नहीं है तथापि जिस विषय पर वे लिखते हैं उसके वे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एकमात्र अधिपति हैं। यदि जीवन की गम्भीर विवेचना में सूर तुलसी से आगे नहीं बढ़ सके तो बाल-जीवन के चित्रण में तुलसी से सूर कहीं अधिक सिद्धहस्त हैं।

भाषा की दृष्टि से सूर प्रथम कवि हैं जिन्होंने भाषा को साहित्यिक रूप दिया है। उस समय की ब्रजभाषा केवल विचार के पारस्परिक आदान-प्रदान ही में व्यवहृत हुआ करती थी पर सौष्ठव की दृष्टि से सम्भवतः भाषा पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया था। सूर के पहले ब्रजभाषा का बड़ा ही साधारण रूप व्यवहार में आया था। पर सूर की भाषा संस्कृत मिश्रित साहित्यिक ब्रजभाषा है।

सूर ने विशेषतः शृङ्गार और शान्त रसों को अपनाया। शान्त रस का वर्णन तो वे उस समय तक विशेष रूप से करते रहे जब तक कि वल्लभाचार्य ने सूर का भजन सुनकर यह नहीं कहा था कि "जो सूर है के ऐसे घिघियात काहे को है, कछू भगवल्लीला वर्णन करि।" वल्लभाचार्य से दीक्षित होकर सूर ने 'भगवल्लीला' का गान किया।

सूर ने शृङ्गार रस के वियोग पक्ष पर अधिक दृष्टि डाली और उसी भावोन्माद में गोपियों का विरह-वर्णन साहित्य में उत्कृष्टता को पहुँचा दिया। संयोग शृङ्गार में भी सूर ने हृदय के भावों को मादकता से भर दिया है। कृष्ण के प्रति माता यशोदा की प्रेम-भावना का मन-मोहक चित्र खींचा है। बालक कृष्ण का पालने में झुलाया जाना, चन्द्र खिलौने के लिए उसका रोना और इसी प्रकार के सैकड़ों बाल-चित्र सूर ने सफलता से अंकित किये हैं।

कृष्ण और राधा का सहारा लेकर सूर ने शृङ्गार रस पर अपनी शक्तिशाली लेखनी उठाई है। इस शृङ्गार में रस का पूर्ण परिपाक होते हुए भी अश्लीलता का अंश नहीं आने पाया। राधा और कृष्ण का शृङ्गार पढ़ते हुए हमें यह ध्यान रहता है कि वे हमारे आराध्य हैं।

सूर की कविता का प्रथम गुण है—माधुर्य। एक तो ब्रजभाषा स्वयं ही मधुर होती है पर सूर की शब्द योजना ने उसे और भी मधुर और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परिष्कृत बना दिया है। सङ्गीत की धारा इतनी सुकुमार चाल से चलती है कि हमें यह ज्ञात होने लगता है कि हम स्वर्ग के किसी पवित्र भाग में मंदाकिनी की हिलती हुई लहरों का स्पर्शानुभव कर रहे हैं।

सूर की कविता में महत्व की एक और बात है। उनमें हमें विश्व-व्यापी राग सुनाई देता है। वह राग मानव-हृदय का सूक्ष्म उद्गार है; उसी राग में मनुष्य जाति की सभी वृत्तियाँ अन्तर्हित हैं। उनकी कविता से मानव के सुख-दुख का तार सदैव हिला है। उनकी कविता मनुष्य जाति के स्वरों में हँसती है और उसी में रोती है।

सूर के कहने का ढंग भी बहुत सुन्दर है। जो बात ये कहते हैं वह इतनी सुन्दरता के साथ कि उसके आगे कुछ कहने को रह ही नहीं जाता।

सूर का काव्य-ज्ञान बहुत ऊँचा था। इतने सुन्दर अलंकारों का प्रयोग साहित्य में बहुत कम हुआ है।

सूर की विशेषता यह है कि उन्होंने मनोवैज्ञानिकता के साथ रस का पूर्ण सामंजस्य स्थापित किया है।

नन्ददास

नन्ददास विठ्ठलनाथ द्वारा स्थापित 'अष्टछाप' के प्रसिद्ध कवियों में से थे। साहित्यिक महत्व के दृष्टिकोण से सूर के बाद कृष्ण-काव्य में इन्हीं का स्थान है। इनका जीवन-चरित्र प्रामाणिक रूप से अभी तक ज्ञात नहीं हो सका। बाह्य साक्ष्य से केवल परिचयात्मक विवरण ही मिलता है।

नन्ददास के ग्रन्थ

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज से नन्ददास के निम्नलिखित ग्रन्थों का पता चला है।

(१) अनेकार्थ भाषामाला (२) अनेकार्थ मञ्जरी (३) जोगलीला (४) दशमस्कन्ध भागवत (५) नाममाला (६) नामचिन्तामणिमाला। (७) नाममंजरी (८) नासिकेत पुराण भाषा (९) पंचाध्यायी (१०) भँवरगीत (११) विरहमंजरी (१२) रसमंजरी (१३) श्यामसगाई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(१४) रुक्मिणी मंगल (१५) राजनीति हितोपदेश (१६) मंजरी नाम माला।

नन्ददास के ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि वे भक्ति के साथ कवित्व में पारंगत भी थे। काव्यशास्त्र में उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। उन्होंने काव्य की अनेक शैलियों में रचना कर अपनी बहुज्ञता और काव्य-ज्ञान का प्रमाण दिया है। रासपंचाध्यायी में उन्होंने भक्तिमय रहस्यवाद का परिचय देते हुये रीतिशास्त्र का पांडित्य भी प्रदर्शित किया। कृष्ण-गोपी-चित्रण में आध्यात्मिक संकेत के साथ शृङ्गार रस के लिए नायक-नायिका का आलम्बन अनेक गुणों के साथ प्रस्तुत किया गया है। उद्दीपन में ऋतु वर्णन है। शैली की दृष्टि से पंचाध्यायी खंड-काव्य की कथावस्तु लिये हुये है। अलंकार और छन्द का उपयुक्त प्रयोग, भावों की अनुगामिनी भाषा का महत्व नन्ददास के कवित्व का गौरव है। अतः ज्ञात होता है कि वे श्रेष्ठ भक्त के साथ ही साथ रीति-शास्त्र के भी आचार्य थे। रस मञ्जरी में उन्होंने नायिका भेद ही लिखा है। उन्होंने केशव की भाँति अपनी प्रतिभा को पांडित्य के कठिन पाश में नहीं जकड़ दिया। नन्ददास पर रीतिशास्त्र का उतना ही प्रभाव है जहाँ तक कि उनकी भक्तिभावना को अनियंत्रित रूप में प्रकट करने की आवश्यकता है। इसके लिये उनका शब्द-चयन और अलंकार-प्रयोग भी सुरुचिपूर्ण है। नन्ददास यमक और अनुप्रास के पंडित हैं, पर उनका अनुप्रास पद्माकर के 'मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे मिले मंद मंद मारुत मुहीम मनसा की है' के समान नहीं है। अनुप्रास प्रवाह का सहायक है, बाधक नहीं। कहीं-कहीं शब्दों का स्वरूप अवश्य विकृत हो गया है। दुराय (तिनके भूत भविष्य कौ' जानत कौन दुराय[1]) 'दूसरे' के अर्थ में, बेकारी (लिये फिरत मुख जोग गाँठ काटत बेकारी[2]) 'व्यर्थ'

---

[1] भँवरगीत, पृष्ठ १६

[2] भँवरगीत, पृष्ठ २३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के अर्थ में तथा हमरो के लिये 'हमार' 'हम्हारो' आदि अप्रयुक्त शब्द देखे जाते हैं।

नन्ददास ने जिस प्रकार काव्य-रचना की है, उससे ज्ञात होता है कि वे गीतगोविंद के रचयिता जयदेव और पदावली के रचयिता विद्यापति से अधिक प्रभावित थे।

अष्टछाप के अन्य कवि

सूरदास और नन्ददास गोसाईं विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के प्रधान कवि थे। इनके अतिरिक्त अष्टछाप के शेष छः कवि निम्नलिखित थे :—

कृष्णदास इनका समय संवत् १६०० माना जाता है। ८४ वैष्णवन की वार्ता में इनका चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णित है। ये वल्लभाचार्य के शिष्य थे। शूद्र होते हुये भी ये-कृष्णभक्ति के कारण वल्लभाचार्य जी के द्वारा बहुत सम्मानित हुये। ये भक्त प्रथम थे और कवि बाद में। इनकी कविता सूरदास अथवा नन्ददास की कविता से हीन है। इन्होंने अधिकतर पद ही लिखे हैं जिनमें अधिकतर संयोग श्रृङ्गार वर्णित है। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं:—'भ्रमर गीत' और 'प्रेम-तत्व निरूपण'।

इनकी 'जुगल मान चरित्र' रचना भक्तों की अधिक मान्य है।

परमानन्ददास इनका समय संवत् १६०७ के आस-पास है। ये श्री वल्लभाचार्य के प्रिय शिष्यों में से थे। इनकी रचना बड़ी मधुर और सरस हुआ करती थी। इनकी कविता का विशेष गुण तन्मयता है। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं : 'ध्रुव चरित्र' और 'दानलीला'। इनके अतिरिक्त इनके पदों का भी एक संग्रह पाया जाता है।

इनका कविता काल भी संवत् १६०७ के लगभग माना जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संसार के गौरव और सम्मान से ये बहुत दूर थे। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के अनुसार एक बार इन्हें अकबर ने फतह-पुर सीकरी बुलाया। लाचार होकर इन्हें जाना पड़ा। किन्तु उन्हें अपनी इस यात्रा का बड़ा खेद रहा। उन्होंने एक पद में लिखा है।

कुम्भनदास

जिनको मुख देखे दुख उपजत, तिनको करिवे परी सलाम।
कुंभनदास लाल गिरधर बिनु, और सबै बेकाम॥

इनका कोई विशेष ग्रन्थ नहीं मिलता। फुटकर पद अवश्य काव्य संग्रह में पाये जाते हैं।

ये कुंभनदास के पुत्र और बिट्ठलनाथ के शिष्य थे। कृष्णलीला का वर्णन ये सूरदास के समान ही करते थे। इनके पद अधिकतर कृष्ण के क्रिया-कलापों से ही सम्बन्ध रखते हैं। इनकी भाषा बहुत स्वाभाविक और सरस है। इनके तीन ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं :—

चतुर्भुजदास

१. द्वादश यश, २. भक्तिप्रताप और ३ हितजू को मंगल।

इनके पदों के अनेक संग्रह हैं, जिनमें भक्ति और प्रेम के सुथरे चित्र मिलते हैं।

इनका कविता-काल संवत् १६१२ माना गया है। पहले ये राजा बीरबल के पंडा थे, बाद में पुष्टिमार्ग में दीक्षित हो गये। ये ब्रजभूमि के बड़े प्रेमी थे और जन्मजन्मान्तर उसी में बसना चाहते थे। इनकी कविता बहुत सरस होती थी। इनके स्फुट पद ही प्राप्त होते हैं, कोई सम्पूर्ण रचना नहीं। अष्ट छाप के कवियों में इनका आदरणीय स्थान है।

छीत स्वामी

इनका कविता-काल भी संवत् १६१२ माना जाता है। बिट्ठलनाथ के शिष्यों में थे और गोवर्द्धन पर्वत पर निवास करते थे। इनके भी स्फुट पद प्राप्त होते हैं।

गोविन्द स्वामी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मीरांबाई

मीरांबाई राजस्थान की कवियित्री थीं। कृष्ण-काव्य में उनकी रचनाओं का विशेष स्थान है। उन्होंने क्रमानुसार कृष्ण की लीलाओं का वर्णन नहीं किया, वरन् दीनता से अपने हृदय की समस्त भावनाओं का भक्ति के सूत्र में बाँध कर कृष्ण की आराधना की। बीच-बीच में कभी उद्धव और राधा आदि का प्रसंग कह दिया है। उन्होंने माधुर्य भाव से अपनी भक्ति-भावना का स्वरूप निर्धारित किया और स्वयं विरहिणी बन कर अपने आराध्य श्रीकृष्ण से प्रणय भिक्षा माँगी। यही कारण है कि मीरां की कविता में गीतकाव्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है।

मीरां की जीवनवृत्त संपूर्ण रूप से विश्वस्त नहीं है। स्त्री होने के कारण उत्तर की राजनीति की रंगभूमि से दूर रहने के कारण आईन अकबरी जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थों में वे स्थान नहीं पा सकीं। मीरां स्वयं राजस्थान की राजनीति से सम्बन्ध रखती हैं, अतः राजस्थान के इतिहास में उनका किसी प्रकार उल्लेख है। किन्तु राजस्थान के इन ऐतिहासिक उल्लेखों में भी कहीं-कहीं भूल है। अतः मीरां की रचनाओं में जो व्यक्तिगत निर्देश हैं, उन्हें ही प्रामाणिक मानना ठीक है। इस क्षेत्र में एक कठिनाई है। मीरां की रचनाओं की प्रामाणिकता बहुत सन्दिग्ध है। जो रचनाएँ मीरां के नाम से मिलती हैं, उनमें बहुत सी प्रक्षिप्त हैं। अतः जब तक मीरां की रचनाओं का कोई प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित न हो जावे तब तक मीरां की रचनाओं का अन्तर्साक्ष्य भी संदिग्ध ही रहेगा। मीरां की अभी तक की प्रकाशित रचनाओं में बेलवेडियर प्रेस प्रयाग की मीरांबाई की शब्दावली सबसे अधिक मान्य है। अतः उसी के आधार पर मीरां के जीवन सम्बन्धी अन्तर्साक्ष्य पर विचार होगा।

जन्म तिथि

कुल

(अ) राठौड़ा की धीयड़ी जी.सीसोद्या के साथ।
ले जाती बैकुण्ठ को म्हारी नेक न मानी बात॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(आ) थे बेटी राठौड़ की थां ने राज दियो भगवान ॥
(इ) बड़ा धरा का छोरु कहावो नाचो दै दै तारी ॥

नाम

(अ) मेड़तियाँ घर जनम लियो है मीरां नाम कहायो ॥
(आ) सब ही लाजै मेड़तियाँ जी थांसू बुरा कहे संसार ॥

जन्मस्थान

(अ) मेड़तिया घर जन्म लियो है मीरां नाम कहायो ॥
(आ) पीहर मेढ़ता छोड़ा अपना, सुरत निरत दोउ चटकी ।
(इ) पीहर लाजै जी थांरो मेड़तो ।
(ई) मारू घर मेवाड़ मेरतो त्याग दियो थांरो सहर ।

माता-पिता

(अ) माता-पिता तुमको दियो तुमहीं भल जानो हो ।

पति-गृह

(अ) बर पायो हिंदुवाणी सूरज, अब दिल में कहाधारी ।
(आ) सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हांरी कांई कर लेसीं ।

गुरु

(अ) गुरु मिलया रैदास जी दीन्हीं ज्ञान की गुटकी ।
(आ) सतगुरु मिलिया सुंज पिछाणी ऐसा ब्रह्म में पाती ॥
(इ) रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी ॥

भक्ति में कठिनाइयाँ

(अ) सांप पिटारो राणा जी भेज्यो दयो मेड़तणी गलडार ।
हँस-हँस मीरां कंठ लगायो यो तो म्हारे नौसर हार ॥
विष को प्यालो राणा जी मेल्यो द्या मेड़तणी ने प्याय ।
कर चरणामृत पी गई रे गुण गोविंदरा गाय ॥
(आ) राणाजी भेजा विष का प्याला सो अमृत कर दीज्यो जी ॥
(इ) (ऊदा) भाभी राणा जी कियो छै थां पर कोप,
रतन कचोले विष घोलियो,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्व भक्तों का निर्देश

(अ) धना भगत पीपा पुन सेवरी मीरां की हू करो गनना।

(आ) पीपा कूँ प्रभु परच्यौ दीन्हौं दिया रे खजीना पूर।

(इ) दास कबीर घर बालद जो लाया नामदेव की छान छबंद।
दास धना को खेत निपजायो, गज की टेर सुनन्द॥

(ई) धना भक्त का खेत जमाया कबिरा बैल चराया।

(उ) सदना और सेना नाई को, तुम लीन्हा अपनाई॥

वैराग्य

(अ) माता पिता परिवार सूं रे रही तिनका तोड़।

(आ) तुम तजि और भतार को मन में नहिं आनौ हो।

(इ) पीहर बसूं न बसूं सास सतगुरु शब्द संगाती।
ना घर मेरा न घर तेरा मीरां हरि रंग राती॥

(ई) तेरी सुरत के का णे धर लिया भंगवा भेस॥

अन्तर्साक्ष्य के इन प्रमाणों से मीरां की जीवनी के सम्बन्ध में निम्न-लिखित बातें ज्ञात होती हैं:—

मीरांबाई राजस्थान के गौरवपूर्ण राठौड़वंश में उत्पन्न हुई थीं। इनकी जन्मभूमि मेड़ता थी, इसीलिये इनका नाम मेड़तणीजी भी था। माता-पिता का वियोग अंतरकाल ही में इन्हें सहन करना पड़ा। इनका विवाह सीसोदिया वंश में हुआ था और इनके पति हिन्दू जाति के सूर्य (हिन्दुवाणी सूरज) थे। इनके हृदय में श्रीकृष्ण की भक्ति स्थान पा गई थी। यह भक्ति रैदास जैसे सतगुरु मिलने से और भी बढ़ गई थी। भक्ति मार्ग में इन्हें अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। इनकी ननद ऊदा-बाई तथा सास ने इन्हें भक्ति मार्ग छोड़ने के लिये बहुत कहा-सुना पर इन्होंने उससे मुख न मोड़ा। ये साधु सत्संग करती ही रहीं। राणा ने राज्य वंश की मर्यादा रखने के लिये मीरां से वैरागियों का साथ छोड़ने के लिये कहा, पर यह मीरां ने अस्वीकार किया। क्रुद्ध होकर मीरां को मारने के लिये राणा ने विष का प्याला भेजा, मीरां ने उसे चरणामृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मान कर पी लिया। उस विष का प्रभाव मीरां पर कुछ भी नहीं हुआ। राणा ने फिर मीरां के मारने को एक पिटारे में सांप भेजा, पर मीरां ने ज्योंही पिटारा खोला, उन्हें उसमें फूल की एक माला मिली। मीरां ने कुल, लज्जा और वंश की मर्यादा भूल कर श्रीकृष्ण की भक्ति में वैराग्य धारण कर लिया।

अंतर्साक्ष्य में मीरां ने अपने वैधव्य का वर्णन नहीं किया। उन्होंने जब श्रीकृष्ण को अपना पति मान लिया था, फिर वैधव्य कैसा। इसी प्रकार उन्होंने अत्याचार करने वाले राणा का नाम भी नहीं लिखा। केवल सीसोद्यो ही कह कर उन्होने राणा का संकेत कर दिया है।

बाह्यसाक्ष्य के अनुसार मीरां का जीवन वृत्त अनेक अलौकिक घटनाओं से पूर्ण है। कहीं-कहीं वह केवल परिचयात्मक है, उसमें तिथि आदि का कोई निर्देश नहीं है।

मीरांबाई के ग्रंथ

मीरांबाई के ग्रन्थों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। मीरांबाई के समकालीन और परवर्ती सन्तों में मीरां के नाम से पद रचना कर मीरां की कविता दूषित कर दी है। आवश्यकता इस बात की है कि मीरां के समय में प्रचलित भाषा के व्याकरण के आधार पर मीरां के उन पदों का संग्रह किया जावे जिनमें मीरां का दृष्टिकोण है। अभी तक की खोज से मीरांबाई के निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाश में आए हैं :

१. गीतगोविन्द की टीका २. नरसी जी का माहरा ३. फुटकर पद ४. राग सोरठ पद संग्रह

गीति काव्य के अनुसार मीरां की कविता आदर्श है। मीरां ने न तो रीतिशास्त्र की गवेषणा की और न अलंकार शास्त्र की। उनके हृदय में निर्झर की भाँति भाव आए और अनुकूल स्थल पाकर प्रकट हो गए। भाव, अनुभाव, संचारी भावों के बादलों में उनकी कविता-चन्द्रिका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं छिपी, वरन् निरभ्र हृदयाकाश से बरस पड़ी। हृदय की भावना मन्दाकिनी की भांति कलकल करती हुई आई और मीरां के कंठस्थ सरस्वती के सङ्गीत धारा में मिल गई। वह भावना सङ्गीत का सार बनी और उसी में मीरां के हृदय को अनुभूति मिली।

मीरां ने गिरधर गोपाल को रिझाया है, उन्हें अपना लिया है। वे गिरधर गोपाल को अपने पति के रूप में देखती हैं :

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।

माधुर्य भाव की उपासना के कारण उन्हें महाप्रभु चैतन्य से प्रभावित कहा जाता है, यद्यपि मीरां की व्यक्तिगत भावना अत्यन्त स्वतन्त्र है।

मीरां ने शृङ्गार रस में अपनी लेखनी डुबा कर अपने भावों का प्रकाशन किया है, पर इस शृङ्गार में वासना की दुर्गन्धि भी नहीं आने पाई। कविता में आत्म-निवेदन है, विरह है, पर वह है आध्यात्मिक; सांसारिक नहीं।

रैन अँधेरी विरह घेरी, तारा गिणत निस जात।
ले कटारी कंठ चीरूँ करूँगी अपघात॥
पाट न खोल्या, मुख न बोल्या, सांझ लाग परभात।
अबोलना में अवध बीती, काहे की कुशलात॥

यह विरह की सच्ची कहानी है। अन्धकारमय रजनी है। प्रियतम मौन है, हृदय में विरह ज्वाला है। बेचारी विरहिणी आकाश के तारों में दृष्टि डाल कर उन्हें गिन रही है। संध्या से प्रभात तक न प्रियतम ने द्वार ही खोला है और न मुख से एक शब्द ही कहा। सारा समय मौन ही में व्यतीत हो गया।

यह एक विरहिणी की स्वाभाविक उक्ति है, पर इसमें आध्यात्मिक तत्व की व्यथा भी सन्निहित है। पाट का अर्थ यदि माया के पर्दे से ले लिया जावे तो सारे पट पर आध्यात्मिक सत्य का प्रकाश पड़ जाता है और भौतिकता में अलौकिकता आ जाती है। यही मीरां की करुणा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है, यही उसकी वेदना है और इसी वेदना के हटाने का उपाय मीरां स्वयं करती हैं :—

मीरां की प्रभु पीर मिटैगी जब बैद समलिया होय।

बात यह है कि मीरां अन्तस्तल से गाती हैं, उन्हें बाह्यशृङ्गार की परवाह नहीं है। वह प्रेम की योगिनी हैं। उनकी कविता प्रकृति के झरने के समान उमड़ पड़ती है।

मीरां एक कोकिला सी बैठ कर अपने गिरिधर गोपाल के गीत गाती हैं। वह पृथ्वी पर नहीं, वृक्ष की सबसे ऊँची डाल पर स्वर्ग के कुछ पास हैं।

मीरांबाई की रचनाओं में दो प्रकार के दृष्टिकोण पाये जाते हैं। पहला दृष्टिकोण तो वह है जिसमें मीरांबाई कृष्ण की भक्ति माधुर्य रूप में करती हैं। वे श्रीकृष्ण को पति मानकर उनसे प्रणय भिक्षा माँगती हैं। 'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई' की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने कुल की कान छोड़ दी है। यह भावना संभव है चैतन्य महाप्रभु के माधुर्य भाव से ली गई हो। किन्तु मीरां का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में इतना स्पष्ट है कि वे अपनी भक्ति भावना में किसी से प्रभावित हुई नहीं ज्ञात होतीं। श्रीकृष्ण से होली खेलने की आकांक्षा उन्हें व्याकुल कर रही है। ऐसी स्थिति में उनकी भावना रहस्यवाद से बहुत मिलती है जिसमें विरहिणी आत्मा प्रियतम ईश्वर के वियोग में दुःखी है।

दूसरा दृष्टिकोण वह है जिसमें उन्होंने सन्त मत के अनुसार ईश्वर की भक्ति की है, सम्भव है। संतों की भक्ति भावना का प्रभाव उन पर पड़ा हो। ऐसे पदों में सन्त मत में प्रयुक्त रूपक और शब्दावली का ही प्रयोग अधिक पाया जाता है, मीरां की रचनां में ऐसे कम पद हैं।

कृष्ण-काव्य का सिंहावलोकन

राम-काव्य के समानान्तर प्रवाहित होते हुए भी कृष्ण-काव्य की धारा राम-काव्य से प्रभावित न हो सकी। राम-काव्य का मर्यादावाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केवल अपने में ही सीमित होकर रह गया। राम-काव्य के दास्य भाव ने भी कृष्ण-काव्य को प्रभावित नहीं किया। कृष्ण चरित्र का रूप इतना अधिक आकर्षक हो गया कि जीवन की पूर्णता केवल कृष्ण के बाल और किशोर जीवन ही में केन्द्रीभूत हो गई।

धार्मिक काल का ह्रास

विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के लगभग धार्मिक काल की पवित्रता नष्ट होने लगी थी। उसमें शृङ्गार के अत्यधिक प्राधान्य ने वासना के बीज बो दिए थे। राधा और कृष्ण की विनय अब कवित और सवैयों में प्रकट होकर नायिका और नायक के भेदों की कौतूहलवर्धक पहेलियाँ सुलझाने लगी थी। उसके कारण निम्नलिखित थे :—

१. राजनीतिक सन्तोष

जहाँगीर और शाहजहाँ के राज्यकाल ने प्रजा की सुख-शान्ति की समृद्धि की। उसमें युद्ध-प्रियता की अपेक्षा कला-प्रियता की ओर शासकों का विशेष आकर्षण था। शाहजहाँ हिन्दुस्तान के बड़े वैभवशाली शासकों में था। उसका साम्राज्य विस्तार में अपने सभी पूर्वजों के साम्राज्य से बड़ा था और उसमें तीस वर्ष तक अखंड शान्ति स्थापित रही। साम्राज्य की आमदनी पहले से अधिक थी और खजाना मालामाल था।

इस भाँति राजनीतिक वातावरण की शांति ने साहित्य में भी कला की सृष्टि की। मुसलमानी अत्याचार अब सीमित थे। हिन्दू हृदय भी मुसलमानी आतंक से स्वतंत्र हो गए थे। मुसलमान भी अपने को इस देश का निवासी समझने लगे थे। अब हिन्दू इस्लाम से त्रस्त नहीं थे और वे संतोष की साँस लेकर विश्राम करने का अवसर चाह रहे थे। अब हिन्दू और मुसलमानों की रक्त से परितृप्त दो तलवारें देश के एक ही स्थान में रक्खी हुई थीं। इस अवकाश काल में भक्ति की अपेक्षा शृङ्गार की मतवाली भावना अपना विकास कर रही थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राजनीतिक शांति के कारण कला की उन्नति तो हो ही रही थी, साथ ही साथ भिन्न-भिन्न राज्यवंश भी स्थापित हो चले थे।

२. राज्य संरक्षण राजनीतिक संतोष के साथ राज्य वैभवशाली हुआ और

३. कला का विकास राज्य के वैभव ने कला को जन्म दिया। शाहजहाँ के गौरवपूर्ण शासन के स्वर्णकाल में कला बहुमुखी होकर विकसित हुई। यह कला केवल साहित्य ही में सीमित होकर नहीं रही वरन् चित्रकला और वास्तुकला में भी प्रकट हुई। जहाँगीर ने अकबर की ललित कला देखी थी और जहाँगीर के आदर्शों ने शाहजहाँ को प्रभावित किया था। जहाँगीर ने चित्रकारों को पुरस्कृत ही नहीं किया, वरन् चित्रकला के अंगों का अध्ययन भी किया। शाहजहाँ ने तो ताजमहल में कला की चरम सीमा उपस्थित की। समय के कपोल पर रक्खा हुआ वह उज्ज्वल अश्रु-बिन्दु शाहजहाँ के कलापूर्ण हृदय की चित्रशाला है। सम्राट् ने अपनी शृङ्गारप्रियता और प्रणय चिन्ह के रूप में ताजमहल की साकार विभूति बाईस वर्षों में निर्मित की, जिसकी नींव विरह के आँसुओं में भरी गई थी। जब राजनीति में कला इतनी व्यापक हो रही थी तो साहित्य में उसका प्रादुर्भाव अनिवार्य था और इसी कला की व्यापकता ने हिन्दी कविता का भक्तिमय दृष्टिकोण भी बदल दिया।

४. कृष्ण भक्ति का स्वरूप महाप्रभु वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण पूजा का जो रूप निर्धारित किया था, वह अत्यन्त आकर्षक था। वात्सल्य और माधुर्य भाव की उपासना में श्रीकृष्ण के शृङ्गारिक पक्ष ही की प्रधानता थी। कृष्ण का सौन्दर्य, गोपियों का प्रेम, कृष्ण और गोपियों का विहार, ये विषय बड़ी कुशलता के साथ प्रतिपादित हुए। किन्तु इन सभी वर्णनों के प्रारम्भ में अलौकिक और आध्यात्मिक तत्व सन्निहित थे। शारीरिक आकर्षण के साथ आध्यात्मिक आकर्षण भी इंगित था, किन्तु यह रूप आगे चल कर स्थिर न रह सका। चैतन्य महाप्रभु ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

माधुर्य भाव से श्रीकृष्ण की उपासना कर कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम के चित्रण की सामग्री प्रस्तुत की। इस प्रेम के अलौकिक रहस्य की धारा अपने वास्तविक रूप में अधिक दूर तक प्रवाहित न हो सकी। उसके आध्यात्मिक स्वरूप का ग्रहण सभी भक्तों और कवियों से एक ही रूप में नहीं हो सका। प्रेम के क्षेत्र में प्रेम ही का पतन हुआ और उसमें सांसारिक और पार्थिव आकर्षण की दूषित गन्ध आ गई। फल यह हुआ कि श्रीकृष्ण सूरदास के प्रभु बाल सँघाती न रह कर गोपियों द्वारा होली खेलने के लिए बार-बार निमंत्रित किए जाने वाले लला, फिर 'आइयो खेलन होरी' वाले श्रीकृष्ण हो गए।

५. भाषा का परिमार्जन

कृष्ण-काव्य की ब्रजभाषा परिमार्जित होकर इतनी मँज चुकी थी कि प्रत्येक प्रकार के भावों का प्रकाशन सरल और अलंकारमय हो गया था। भक्तिकाल के पूर्ववर्ती कवियों ने भाषा में इतनी अधिक भावव्यंजना की थी कि भाषा उनके हाथ में करतलगत आमलक के समान थी। इसी भाषा के परिष्करण ने कवियों को कला चातुर्य प्रदर्शन के लिए आकर्षित किया। कविगण इस लोभ का संवरण नहीं कर सके और उन्होंने भाव की अपेक्षा कला के सौन्दर्य की ओर अधिक ध्यान रक्खा। शब्दालंकार और अर्थालंकार लाने के लिए उन्हें यदि भावों की अवहेलना भी करनी पड़ी तो उन्होंने संकोच नहीं किया। उन्होंने शृङ्गार की भावना को उलट-पुलट कर भाषा के पाश में अपनी कविता को कस दिया। अब कविता जीवन की सन्देश वाहिनी न होकर केवल भाषा-सौन्दर्य की परिधि ही में केन्द्रीभूत हो गई। जीवन की स्वतन्त्र भावना प्रत्येक नायिका के साथ शब्दों की शृङ्खला से बाँध दी गई।

हिन्दी कविता में रीतिकाल की परम्परा जयदेव के गीतगोविन्द से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होकर विद्यापति की कविता में आई थी। विद्यापति की पदावली में नायिका भेद, नखशिख, ऋतु वर्णन, दूती शिक्षा, अभिसार आदि बड़े आकर्षक ढंग में वर्णित हैं।

६. रीतिकाल की परम्परा

कृष्ण-काव्य की यह धारा वास्तव में रीतिशास्त्र से पूर्ण है। पर भक्ति-काल में भावना की अनुभूति इतनी तीव्र थी कि सूर और मीरा ने राधाकृष्ण के शृङ्गारमय गीत गाकर भी उन्हें मर्यादाविहीन नहीं किया। भक्तिकाल की यही मर्यादा है कि विद्यापति की मधुर पदावली सामने रहते हुए भी किसी कवि ने उसका अनुकरण नहीं किया और विद्यापति की रीतिकालीन शृङ्गार भावना लगभग तीन सौ वर्षों तक निश्चेष्ट पड़ी रही। भक्तिकाल की भाव-तीव्रता में कमी आते ही रीतिशास्त्र अपने लौकिक शृङ्गार से सज्जित हो हिन्दी के काव्य क्षेत्र में स्वाभाविक रूप से आ गया।

इन सभी कारणों से भक्तिकाल की कविता का उच्च आदर्श सुरक्षित नहीं रह सका। मुगलकालीन वैभव और राजाओं की सुखसाधना ने उसे काव्य के ऊँचे गौरव से गिरा दिया।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सातवाँ प्रकरण

रीतिकाल

रीतिकाल की अनुक्रमणिका

समय की गति का चक्र सदैव अपने वेग से चलायमान रहता है। भारत की जो परिस्थिति भक्तिकाल में थी वह रीतिकाल के प्रारम्भ तक बहुत परिवर्तित हो गई। भय ने प्रेम का स्थान ग्रहण किया। असहिष्णुता ने सहिष्णुता को जन्म दिया। धार्मिक विरोध ने एकता के लिए स्थान सुसज्जित कर दिया। जाति और वर्ण-भेद के काले रङ्गों के बीच यवन हृदयों में भी एक विशेष परिवर्तन समुपस्थित हुआ। उन्होंने अपने विरोधी हिन्दुओं से तलवारें लड़ाने के बजाय, हृदय मिलाना अधिक उपयुक्त और उपादेय समझा। जायसी और कुतुबन इत्यादि प्रेम-काव्य के लेखकों के लक्ष्यों की पूर्ति होने लगी।

भक्तिकाल की अवसान वेला तक यवनों के हृदय में जो प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी, इस समय धीरे-धीरे शान्त होकर विलीन हो रही थी। यवन सम्राटों की नीति में ऐसा परिवर्तन हुआ जो वास्तव में हिन्दुओं के मूल में तो कुठाराघात था पर ऊपर से देखने में कल्याणप्रद और सुखद प्रतीत होता था। देश में शान्ति का राज्य स्थापित होने लगा। आक्रमणों के भय से हिन्दू जनता और यवन सम्राट् विमुक्त हो गए। उनका निश्चिन्त मस्तिष्क और हृदय कला की ओर स्वयमेव आकृष्ट होने लगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रास, रंग और नृत्य में संलग्न सम्राटों की रुचि का प्रभाव जनता पर पड़े बिना कैसे रह सकता था ? जनता भी उन्हीं के रंग में रँग गई। 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत पूर्णरूपेण चरितार्थ हुई। प्रजा भी यवनों के विलासमय रंग में रँग गई। इस सभ्यता और बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव कवियों पर पड़े बिना न रह सका। कवियों के भावुक कंठों से भी वही गान फूटे जो जनता अनुभव कर रही थी। राजदरबार में आश्रय पाने के कारण उन्हें अपनी सरस्वती (वाणी) को उसी प्रकार नचाना पड़ता था जिस प्रकार उनका आश्रयदाता चाहता था।

रीतिकाल के उदयकाल तक भक्तों के कंठ से निस्सृत उपदेश प्रभावहीन हो चले थे। कबीर और जायसी ने जिस लक्ष्य के पीछे इतना परिश्रम तथा उद्योग किया था वह राजाओं की दुधारी नीति के कारण स्वयमेव पूर्ण हो चला था। यवन सम्राटों ने तलवार से देश पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् हृदयों पर भी विजय प्राप्त की। फलतः धर्म गान निष्फल और सारहीन हो चले।

औरंगजेब की कटु तथा असहनशील प्रवृत्ति के कारण हिन्दुओं में एक बार पुनः धार्मिक विचारों का उत्थान हुआ। चिरकाल से पददलित तथा विमर्दित हिन्दू जनता ने पुनः होश सँभाला। ठीक इसी समय हिन्दू जाति के गौरव वीर महाराज शिवाजी ने बीजापुर, गोलकुण्डा तथा दिल्ली को विमर्दित करके महाराष्ट्र-राज्य स्थापित किया। इसी समय महाराज जसवंतसिंह ने हिन्दूपन के भाव को जागृत करके मुगलों की सेवा करते हुए भी अनेक बार औरंगजेब को पराजित किया और वीर केसरी महाराज शिवाजी से मिलकर शाइस्ता खाँ की दुर्गति कर डाली। इसी समय महाराणा राजसिंह ने यवनों की अधीनता को अस्वीकार करके छः बार रणस्थल में औरंगजेब को अपमानित तथा पराजित किया। इसी समय महाराज जसवंतसिंह के निधन हो जाने पर वीर बाँकुरे राठौर ने प्रायः लम्बे ३० वर्षों तक यवनों से युद्ध किया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और युवराज अजीतसिंह तथा सारे मारवाड़ देश की रक्षा की। इसी समय यवन सिंहासन को हिला देने के लिये और औरङ्गजेब के कुत्सित हृदय को दहला देने के लिए वीर छत्रसाल ने केवल ५ सवार और २५ पैदलों के सहारे विजय प्राप्त की थी। इसी समय हिन्दू जनता के मान, धर्म और व्यक्तित्व की रक्षा करने के हेतु चम्पतराय ने जन्म लेकर पतनोन्मुख समस्त बुन्देलखंड को उत्साहित किया था और वीरोचित कार्य करने के हेतु उद्यत और शक्तिशाली बनाया था। इसी समय शौर्यमूर्ति बालाजी विश्वनाथ और बाजीराव पेशवा ने यवन साम्राज्य को तहस-नहस करके भारत में ५०० वर्षों से विस्तृत आर्य भावनाओं को एक बार पुनः जाग्रत किया था।

इस प्रकार हमारे समक्ष रीतिकाल में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित होती हैं। प्रथम कोटि में चाटुकारिताप्रिय जनता आती है जिसका लक्ष्य अपने सम्राट् को प्रसन्न रखना मात्र था। इस कारण, इस कोटि की जनता के कारण, देश में विशेष शान्ति और आलस्य फैल रहा था और दूसरी कोटि की जनता में उनकी गणना होती है जो औरंगजेब इत्यादि जैसे धर्म-विरोधियों के सतत विमुख और विरोधी बने रहे।

प्रथम कोटि की जनता के प्रतिनिधि-महाराज जयसिंह, वीरबल इत्यादि थे और द्वितीय कोटि की जनता के प्रतिनिधि महाराज वीर शिवाजी छत्रसाल, चम्पतराय, बालाजी विश्वनाथ, राजसिंह तथा जसवंत-सिंह इत्यादि उज्ज्वल रत्न थे।

रीतिकाल में दो प्रकार की विचार-धाराएँ जनता में अविरल रूप से प्रवाहित हुईं। एक विचार-धारा राजदरबार-सेवियों के हृदय से निस्सृत हुई और दूसरी त्रस्त जनता के हृदय से। प्रथम विचार धारा का आधार शृङ्गार और शांति थी और दूसरी विचार-धारा का आधार क्षोभ और प्रतीकार की भावना थी।

रीतिकालीन जनता में जिस प्रकार दो भेद हो गये थे उसी प्रकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जनता के कवियों में भी दो भेद थे। कुछ कवि राजदरबार का आश्रय ग्रहण करके कविता के क्षेत्र में अवतरित हुये और उन्होंने अपने पांडित्य का प्रयोग केवल नायिकाओं के हाव-भाव के चित्रण में किया और कुछ कवियों ने पीड़ित जनता के करुण स्वरों को सुनकर पददलित हिन्दुओं को प्रोत्साहित करने में ही अपने जीवन का कर्तव्य समझा।

रीतिकाल

१७००—१९००

भक्तिकाल में भक्ति-प्रधान भावों की ही अभिव्यंजना हुई। भक्ति-काल में कबीर, सूर, तुलसी, नन्ददास तथा इसी प्रकार के अनेक कवि हुये जिनके निष्काम हृदय से निस्सृत सुन्दर भाव अभिव्यक्त होकर साहित्य में अमर हो गये। इन महात्माओं के हृदय से निकले उपदेशों में कल्याण की अपूर्व भावना निहित थी। उस कल्याण की भावना में इतनी सजीवता थी कि सहस्रों पतनोन्मुख भारतीयों को सद्भविष्य का आभास मिला और उन्हें ढाढ़स हुआ। आशा ने उनके जीवन की विशृङ्खलता को शान्त कर दिया। भक्त कवियों की अनुभूति तथा उदारता के कारण अनेक महान् आदर्शों की स्थापना हुई, जो न केवल धर्म से ही सम्बन्धित थे वरन् लौकिक जीवन से भी निकटतम थे। इन्हीं सब बातों के कारण वे सन्त तथा महात्मा आज भी उतने ही व्यापक तथा मान्य हैं जितने अपने समय में प्रभावशाली थे। उन भक्त कवियों में महत्वाकांक्षा शून्य के बराबर थी। वास्तव में विनय और परोपकार की भावना उनमें इतनी अधिक थी कि उनकी अहम् भावना प्रायः लुप्त-सी हो गई थी। इस नाशवान संसार के नगण्य लोभ तथा भ्रम उनके लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में बाधाएँ उपस्थित न कर सकते थे। लोक में रहते हुये भी उनमें अलौकिक भावनाओं का प्राधान्य था। बाह्याडम्बर को वे इतना हेय समझते थे कि उसे उन्होंने अपनी वाणी में भी स्थान नहीं दिया। जो भी बात वे कहना चाहते थे बड़ी निर्भीकता तथा स्पष्ट हृदय से कह देते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

थे। उनकी आत्मा का सन्देश बाह्य आडम्बर से परिवृत नहीं था। उनकी रचना का विषय लोक-कल्याण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होता था। "प्राकृत जन गुन गाने" को वे सरस्वती का अपमान और तिरस्कार समझते थे।

काव्य-रचना करने पर भी उन्हें अपने महत्व और उच्च आसन का लेश मात्र भी गर्व न था। "कवित विवेक एक नहिं मोरे, सत्य कहौं लिखि कागद कोरे" के लेखक महाकवि गोस्वामी तुलसीदास में कितनी विनय की भावना भरी थी! वास्तव में यही भावना सभी भक्त सन्त कवियों में वर्तमान थी।

भक्तिकाल में रचित साहित्य शब्द-जाल से शून्य है। उसमें अनावश्यक अलंकारों का अभाव है। हाँ, स्वाभाविक रूप से आये हुये अलंकारों की उन्होंने अवहेलना भी नहीं की। इस काल के सृजित काव्य में सत्य तथा कल्याणकारी भावों की अभिव्यक्ति मात्र है। उसमें बाह्य शृंगार लाने का प्रयत्न नहीं किया गया।

वीर तथा भक्ति कालों में अबाध रूप से साहित्य-सृजन हुआ। इन दोनों कालों में रामचरितमानस तथा सूरसागर जैसे अमर काव्य ग्रंथों की रचना हुई; परन्तु इन दोनों युगों में रीति का अभाव था। उन समयों में लक्षण ग्रन्थों के नाम पर एक भी पुस्तक की रचना उपलब्ध नहीं होती। परन्तु इसमें आश्चर्य और खेद का कोई विषय नहीं है। विश्व के प्रत्येक साहित्य का यही नियम है कि पहले लक्ष्य ग्रन्थों की रचना होती है तत्पश्चात् लक्षण ग्रंथों का लेखन-कार्य प्रारम्भ होता है। बिना साहित्य-सृजन के उसके लक्षणों की रचना हो भी कैसे सकती है? पहले काव्य-सृजन होता है और नियमों की रचना उसके पश्चात् धीरे-धीरे होती है।

भक्तिकाल में विशेष रूप से सूर और तुलसी द्वारा अमर साहित्य की रचना हुई। इन दो महाकवियों के अतिरिक्त साहित्य को धनी बनाने का श्रेय अन्य कवियों को भी है। रीतिकाल के प्रारम्भ तक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काव्य-भाण्डार अनेक बहुमूल्य रत्नों से जटित हो चुका था। अतः स्वभावतया रीतिकाल के विद्वानों का ध्यान भाषा और भावों को अलंकृत करने की ओर आकृष्ट हुआ। संस्कृत के रीति ग्रन्थों का आदर्श उनके समक्ष उपस्थित था। भक्तिकाल में भी ऐसे अनेक कवि हो गये थे जिन्हें भाषा और भावों की ओर विशेष रूप से ध्यान रखना रुचिकर था परन्तु जिन्होंने अलंकारों और बाह्य सौन्दर्य को गौण स्थान दिया, प्रधान नहीं। उन्हें साहित्य में कलावाद वहीं तक प्रिय था जहाँ तक उसकी उपयोगिता है। परन्तु रीतिकाल के कवियों के लक्ष्य में महान् परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। रीतिकाल के कवियों के लिए अलंकार सहायक का कार्य नहीं वरन् स्वामी का कार्य करते हैं। उन्हें काव्य-कला ही प्रधान वस्तु प्रतीत हुई। शेष आवश्यक तत्व गौण। रीतिकालीन काव्य पर एक सरसरी निगाह दौड़ाने के पश्चात् पाठकों के मस्तिष्क पर एक अमिट छाप पड़ती है कि उस काल में काव्य की रचना कला की अभिव्यक्ति के लिये ही हुई। काल ने जिस प्रकार चाहा कवियों को घुमाया। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय के कवियों के लिए नवीन भावों का कोई विशेष महत्व नहीं था।

रीतिकाल के उद्भव के अनेक कारण भी हैं। उन सभी कारणों में सर्वप्रथम कारण तो यह था कि रीतिकालीन कवियों के कानों में कृष्ण-भक्त कवियों के रसमय शृङ्गार से ओत-प्रोत गान गुञ्जरित हो रहे थे। कृष्ण-भक्ति परम्परा के कवियों ने राधा और कृष्ण के प्रेम को इतने प्रखर रंग में रँग डाला था कि उसमें भक्ति-भावना का सर्वथा अभाव हो गया था। विद्यापति जैसे भक्तों की नायिका राधा के चित्र ने ही रीतिकाल के कवियों को नायिका-भेद लिखने की ओर प्रेरित किया होगा, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। कृष्ण और राधा का नाम हटा देने से विद्यापति की कविता को कोई भी पाठक रीतिकालीन रचना कह सकते हैं। फिर भला अनुकूल वातावरण पाकर रीतिकाल के कवि अवसर क्यों हाथ से जाने देते? उन्होंने अपने आश्रयदाताओं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के रंगभवन के विलासमय वातावरण को देखकर अवश्य ही अपने को उसी के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया होगा। रीतिकाल में कविता की शृङ्गाररसमयी झाँकी के ही दर्शन होते हैं, अन्य रूप अन्तर्हित से हो गये थे।

हमारे साहित्य में रीति-ग्रन्थों की रचना के पूर्व संस्कृत में रस-सम्प्रदाय, अलंकार-संप्रदाय, वक्रोक्ति-सम्प्रदाय तथा ध्वनि-सम्प्रदाय का निर्माण हो चुका था। वास्तव में हिन्दी रीति-ग्रन्थों की रचना संस्कृत के इन्हीं उपर्युक्त सम्प्रदायों के आधार पर हुई। संस्कृत के इन सम्प्रदायों की सहायता भाषा कविता में यहाँ तक ली गई कि उसे संस्कृत रीति-ग्रन्थों की नकल ही कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। हिन्दी में रस, ध्वनि तथा अलंकार संम्प्रदायों का विशेष रूप से प्रयोग किया गया। आचार्य केशवदास ने अलंकार सम्प्रदाय का अनुसरण किया था।

रीतिकाल के रीति-कवि

केशवदास

टेहरी के एक धनाढ्य परिवार में महाकवि केशवदास का जन्म सं० १६०० वि० के लगभग में हुआ। ये ओरछा नरेश के दरबारी कवि, गुरु एवं मंत्री थे। इन्होंने महाराजा रामसिंह और वीरसिंह देव के छोटे भाई इन्द्रजीतसिंह के दरबार की शोभा बढ़ाई थी। इनकी रचनाओं की सूची निम्नलिखित है :—

(१) कविप्रिया, (२) रसिकप्रिया, (३) रामचन्द्रिका, (४) वीरसिंह देवचरित, (५) विज्ञानगीता, (६) रतनबावनी, (७) जहाँगीर-जसचन्द्रिका और (८) नखशिख।

'कविप्रिया' में काव्य के विविध अंगों का विधिपूर्वक वर्णन है और 'रसिकप्रिया' में शृङ्गार रस का विस्तृत निरूपण है। केशव के ग्रन्थ उन्हें रीति-कवियों की श्रेणी में लाकर बैठा देते हैं। एक बार स्वप्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में केशव को वाल्मीकि जी के दर्शन हुए। केशव ने वाल्मीकि जी से पूछा कि मैं सुख कैसे प्राप्त कर सकता हूँ। वाल्मीकि जी ने उत्तर दिया—

भलो बुरो न तू गुनै,
वृथा कथा कहै सुनै।
न रामदेव गाइ है,
न देव लोक पाइ है॥

जब यह स्वप्न टूट गया तब कवि ने अपनी शक्तिशाली लेखनी से 'रामचन्द्रिका' की रचना की जो उनकी अक्षयकीर्ति की चन्द्रिका है। 'वीरसिंह देवचरित' में वीरसिंह बुन्देला की यशोगाथा है। 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' में जहाँगीर की प्रशंसा है। 'रतनबावनी' और 'विज्ञानगीता' अत्यन्त साधारण कृतियाँ हैं। 'नखशिख' की विषय वस्तु उसके शीर्षक से ही स्पष्ट है। केशव को प्रबन्ध-कवि की प्रतिभा प्राप्त न थी। जहाँ तक स्फुट उक्तियों एवं सूक्तियों का प्रश्न है, केशव के काव्य में वे पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हैं। परन्तु प्रबन्धात्मकता के दर्शन केवश में नहीं होते। 'रामचन्द्रिका' में छन्द-परिवर्तन इतना अधिक हुआ कि प्रवाह और प्रबन्धात्मकता एकदम नष्ट हो गई है और ऐसा प्रतीत होता है मानों केशव छन्दों की एक प्रदर्शनी हमारे सामने लगा रहे हैं। प्रतिपग नूतन छन्दावली में घटनाएँ भी अत्यधिक अस्त-व्यस्त हैं। अधिकतर कवि ने घटना-स्थलों में से कथोपकथन चुन लिए हैं और उन्हें ही सजा कर हमारे सामने रक्खा है। किन्तु ऐसे स्थलों पर नाटकीय चित्र बड़ी सजीवता के साथ चित्रित हुए हैं। इस नाटकीय सौन्दर्य के अतिरिक्त 'रामचन्द्रिका' में अन्य गुण भी हैं। काव्य में सुन्दर सूक्तियाँ हैं और उपमाएँ मौलिक एवं सजीव हैं। कथोपकथन स्वाभाविक, मार्मिक, शिष्ट एवं सरस हैं जो एक दरबारी कवि के सर्वथा योग्य है। परन्तु कवि ने कहीं-कहीं पर अत्यधिक क्लिष्ट कल्पनाएँ की हैं जो 'रामचद्रिका' की स्निग्ध छटा में व्याघात उत्पन्न करती हैं। 'रामचन्द्रिका' न तो रीति-काव्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है, न भक्ति-काव्य और न प्रबन्ध काव्य। इस 'रामचन्द्रिका' की कलाओं का प्रकाश कवि की रुचि के अनुसार कहीं घटा है और कहीं बढ़ा है। ज्ञात होता है कवि ने राम-कथा के रुचिकर प्रसंगों का संकलन-सा करते हुए उनमें इतिवृत्त की महीन रेखा जोड़ दी है। जहाँ भी कवि को आवश्यकता ज्ञात होती है वहाँ वह अपने आचार्यत्व का प्रदर्शन करने लगता है।

काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में केशव ने दंडी के काव्यादर्श से लक्षण लिए हैं। केशव के बाद जो लक्षण-ग्रन्थों की परम्परा हिन्दी में चली वह साहित्यदर्पण, चन्द्रालोक और कुवलयानन्द द्वारा निर्देशित पथ पर आरूढ़ रही। इसी कारण केशव अन्य हिन्दी रीति-काव्यकारों से काव्य-शास्त्र विवेचना प्रणाली में भिन्न हैं।

हिन्दी के सर्वप्रथम महत्वपूर्ण रीतिकाव्यकार केशव अपनी 'रामचन्द्रिका' के कारण हिन्दी साहित्य में सर्वमान्य हैं, रीति-ग्रन्थों के कारण नहीं। परन्तु प्रारम्भिक हिन्दी रीति-काव्यकार होने के नाते उनका महत्व हिन्दी रीति काव्य के क्षेत्र में भी है।

रहीम

रहीम मुगल सम्राट् अकबर के वैभवशाली दरबार के एक रत्न थे। इनके पिता बैरमखाँ खानखाना अकबर के अभिभावक थे। राजनीतिक परिस्थितियों के कारण उन्होंने अकबर का विरोध किया और अपना राजनीतिक जीवन समाप्त किया। अकबर ने रहीम को अपने संरक्षण में ले लिया। सं० १६३३ वि० में ये गुजरात के सूबेदार नियुक्त किए गए। उस समय इनकी अवस्था केवल १९ वर्ष की थी। तीन वर्ष पश्चात् ये फिर दरबार में लौट आए और सुलतान सलीम के शिक्षक नियुक्त किए गये। युद्ध के अति भयंकर क्षेत्रों में इन्होंने अपनी सामरिक प्रतिभा का परिचय दिया। रहीम ने अकबर के विद्रोहियों को कई बार पराजित किया। उन्होंने अकबर की सेवा कई प्रकार से की, कभी किसी प्रान्त के अधिपति रह कर, कभी विद्रोहियों को परास्त कर और कभी नवीन प्रान्त पर विजय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राप्त करके। इतने अधिक राजनीतिक प्रभुत्व का व्यक्तित्व हिन्दी-साहित्य में अद्वितीय है। अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीर के राज्यकाल में रहीम के सौभाग्य का सितारा अस्त हो चला। प्रारम्भ में तो जहाँगीर ने इनका पर्याप्त सम्मान किया, परन्तु जहाँगीर के पराभव काल में विषम राजनीतिक परिस्थितियों के कारण इन्हें अनेक कष्ट सहन करने पड़े। कालान्तर में ये मुगल दरबार छोड़कर जहाँ-तहाँ भटकने लगे।

इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त हैं—

(१) दोहावली, (२) नगर-शोभा, (३) बरवै नायिका, (४) बरवै, (५) शृङ्गार-सोरठ, (६) मदनाष्टक, (७) फुटकर पद, (८) रहीम काव्य, (९) खेट कौतुक जातकम्, (१०) वाकेआत बाबरी, और (११) फारसी दीवान।

'दोहावली' में लगभग २८७ दोहे हैं। ये फुटकर दोहे विविध उपदेशों की सजीवता से अनुरंजित हैं। 'नगर-शोभा' में १४२ दोहों का संग्रह है। इनमें अनेक जाति तथा पेशेवाली स्त्रियों पर उनकी जाति, कर्म या व्यापार के शब्दों को लेकर शृङ्गारिक भाव बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किए गये हैं। 'बरवै नायिका भेद' विशुद्ध अवधी भाषा में नायिका-भेद सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसमें लक्षण नहीं कहे गये, उदाहरण-मात्र दिये गए हैं। 'बरवै नायिका' ग्रंथ में १०१ छन्द हैं। इन छन्दों में कोई क्रम नहीं है। ये शृङ्गार-विषयक स्फुट रचनाएँ हैं। इस ग्रंथ के प्रारम्भ में तो यह मालूम पड़ता है कि कवि किसी बारहमासे की रचना कर रहा है। परन्तु आगे के बरवै इस बात की साक्षी नहीं देते। 'शृङ्गार-सोरठ' का कोई भी अंश अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। संभवतः शृङ्गार विषयक सोरठे ही इस ग्रन्थ में होंगे। संस्कृत के वर्णवृत्त मालिनी छन्द में संस्कृत और खड़ी बोली हिन्दी का सम्मिश्रण कर कुछ छन्द भी रहीम ने लिखे हैं। ये छन्द शृङ्गार के हैं और 'मदनाष्टक' कहलाते हैं। कहा जाता है कि रहीम ने फुटकर पदों में एक 'रासपंचाध्यायी' लिखी थी इसके विशृङ्खलित संग्रह प्राप्त हुए हैं और वे फुटकर पद कहलाते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। रहीम के काव्य में कुछ संस्कृत-श्लोक और कुछ संस्कृत-हिन्दी श्लोक भी हैं। 'खेट कौतुक जातकम्' में कवि ने संस्कृत भाषा में ज्योतिष के नवग्रहों के बारहों स्थानों के फल एक-एक दोहे में दिये हैं। 'वाकेआत बाबरी' बाबर की तुर्की भाषा में लिखी हुई आत्म-जीवनी का फारसी अनुवाद है। 'फारसी दीवान' में इनकी फारसी भाषा में लिखी हुई कविताएँ संग्रहीत हैं। रहीम के विषय में बहुत सी किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं जिनसे पता चलता है कि ये अत्यन्त चरित्रवान, निष्कपट, सच्चे, भावुक, हाजिर-जवाब और कला का सम्मान करने वाले थे। इनके आश्रय में अनीसी, शमलू, मीर मुगरिस माहवी, मुल्ला मुहम्मद रजा नबी आदि कवि थे। कवियों के गुणों का रहीम विशेष सम्मान करते थे। हिन्दी के अनेक कवियों को इन्होने प्रचुर धन देकर उनका सम्मान किया। हिन्दी के उन कलाकारों ने रहीम की प्रशंसा भी की है। केशव दास, गंग, हरनाथ, मंडन, प्रसिद्ध अलीकुली, तारा, होलराय, मुकुन्द आदि कवियों की लिखी हुई रहीम की प्रशंसा-विषयक पंक्तियाँ हमें आज भी प्राप्त हैं।

रहीम के धार्मिक विचार अत्यन्त सहिष्णु थे। ये तो मुसलमात परन्तु इनकी नीति थी :—

"करूँ मैं सिज्दः बुतों के आगे,
तू ऐ बिरहमन खुदा खुदा कर।"

एक मुसलमान की लेखनी से हिन्दुओं के आराध्य श्रीकृष्ण के लिए ये पंक्तियाँ निकलना उसके अत्यन्त गहरे कृष्ण-प्रेम की परिचायिका हैं। मदनाष्टक में जिस श्याम का वर्णन है उसकी छरी तथा मुंदरी तक का अनन्य प्रेम के साथ चित्रण किया गया है। हिन्दू भक्तों की भाँति इन्हें भी कृष्ण पर विश्वास था:—

'रहिमन' कोऊ का करै ज्वारी चोर लबार।
जो पति राखनहार है माखन चाखनहार॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रेम का वर्णन भी कवि ने अत्यन्त व्यापक आत्मानुभूति से किया है। वे प्रेम-पथिक को सचेत करते हुए कहते हैं:—

रहिमन मै न तुरंग चढ़ि, चलिबौ पावक माँहि।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोऊ निबहत नाँहि॥

वे प्रेम का आदर्श बतलाते हैं:—

अन्तर दाव लगी रहै, धुवाँ न प्रकटै सोइ।
कै जिय जाने आपना जा सिर बीती होइ॥

एक अत्यन्त आत्मीय मित्र की भाँति जैसे हमारे कंधे पर हाथ रख कर वे हमें उपदेश देते हैं:—

मान सहित विष खाइ कै शंभु भये जगदीश।
विना मान अमृत पिए राहु कटायौ शीश॥
रहिमन मोहि न सुहाय अमी पिआवत मान बिनु।
बरु विष देइ बुलाइ मान सहित मरिबो भलो॥

इसी प्रकार उन्होंने हमें सैकड़ों उपदेश दिए हैं। रहीम ने विविध भाषाओं में सच्ची अनुभूति की मार्मिकता लेकर जो कविता लिखी है, वह भारती के समुज्ज्वल कंठ में पड़ी हुई माला की एक अत्यन्त सुन्दर मणि है।

चिन्तामणि त्रिपाठी

ये तिकवापुर (जि० कानपुर) के रहने वाले थे। कहा जाता है कि ये चार भाई थे—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर। चारों ही हिन्दी के कवि थे। भूषण और मतिराम का परिचय आगे दिया जायेगा। चिन्तामणि ने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की—

(१) कवि-कुल-कल्पतरु, (२) काव्य विवेक, (३) काव्य प्रकाश, (४) रामायण (५) और पिंगल-विषयक एक ग्रन्थ।

इन ग्रन्थों में कवि ने काव्यशास्त्र के विविध अंगों पर प्रकाश डाला है और साथ ही साथ शृङ्गार विषयक उत्कृष्ट छन्द लिखे हैं। शृङ्गार के साथ भक्ति का संयोग कर चिन्तामणि त्रिपाठी ने अपने काव्यगत-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृष्टिकोण में विस्तार लाने का प्रयत्न किया है। उनकी शृङ्गारिक रचनाओं के उदाहरण तो बहुत हैं, एक भक्ति-विषयक उदाहरण लीजिये :—

येइ उघारत हैं तिन्हैं जे परे मोह-महोदधि के जल-फेरे।
जे इनकी पल ध्यान धरैं मन ते न परैं कबहूँ जम-घेरे॥
राजै रमा-रमनी उपधान अभै बरदान रहै जन नेरे।
हैं बलभार उद्दण्ड भरे हरि के भुजदंड सहायक मेरे॥

महाराज जसवंत सिंह

मारवाड़ के महाराज जसवंतसिंह का जन्म सं० १६८३ में हुआ था। ये सं० १६९५ में गद्दी पर बैठे। अपने समय के ये प्रतापी हिन्दू राजा थे। साहित्य से इन्हें विशेष रुचि थी और इनके दरबार में कवियों और विद्वानों का अत्यधिक सम्मान होता था। इस प्रकार इन्होंने हिन्दी साहित्य की द्विविधि सेवा की—कवि रूप में और आश्रयदाता के रूप में। इनके लिखे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं—

(१) भाषा-भूषण, (२) अपरोक्ष-सिद्धान्त, (३) अनुभव-प्रकाश, (४) आनन्द-विलास, (५) सिद्धान्त-बोध, (६) सिद्धान्त-सार, और (७) प्रबोधचन्द्रोदय नाटक।

इन रचनाओं में भाषा-भूषण सबसे अधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसे चन्द्रालोक का छायानुवाद भी कहा जा सकता है। इस ग्रंथ में छन्द की एक पंक्ति में लक्षण दिया गया है और दूसरी में उदाहरण। भाषा-भूषण पर तीन टीकाएँ रची गईं और आज भी यह ग्रंथ अलंकार विषय पर अपना महत्व रखता है।

बिहारीलाल

बिहारीलाल का जन्म ग्वालियर के पास गोविंदपुर नामक गाँव में सं० १६६० वि० के लगभग माना जाता है। इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखंड में व्यतीत हुई और तरुणावस्था अपनी ससुराल मथुरा में। अपनी प्रतिभा के प्रति सजग होकर वे किसी आश्रयदाता की खोज में निकले और जयपुर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के मिर्जा राजा जयसिंह के दरबार में पहुँचे। उस समय महाराज अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने लीन रहते थे कि राजकाज देखने को भी उन्हें अवकाश नहीं था। सरदारों की सलाह से बिहारी ने यह दोहा महाराज के पास भीतर भिजवाया :

नहि पराग नहि मधुर मधु,
नहि विकास यहि काल।
अली कली ही सों बँध्यो,
आगे कौन हवाल॥

कहते हैं, इस पर महाराज बाहर निकले और उन्होंने बिहारी की प्रतिभा को स्वीकार किया। महाराज की आज्ञा से बिहारी ने इस प्रकार दोहे बनाना आरम्भ किया और प्रत्येक दोहे पर उन्हें एक-एक अशर्फी पुरस्कार स्वरूप प्राप्त हुई। इस प्रकार बनाए गए दोहों की संख्या ७०० से कुछ अधिक है। इनके दोहों का संग्रह 'बिहारी सतसई' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यही ग्रन्थ बिहारी की अमर कीर्ति का स्तम्भ है। शृङ्गार रस की ग्रन्थ माला में यह सुमेरु माना जाता है। विद्वानों और कवियों ने इसकी दर्जनों टीकाएँ लिखी हैं। पद्य में बिहारी सतसई की टीका लिखने की यह परम्परा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक मिलती है और गद्य में आधुनिक कवि जगन्नाथदास रत्नाकर तक।

छोटे-छोटे दोहों में बड़े-बड़े भाव व्यंजित कर बिहारी ने गागर में सागर भरने वाली प्रतिभा का परिचय दिया है। दोहों के सम्बन्ध में बिहारी की यह युक्ति सत्य है, गर्वोक्ति नहीं—

सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर॥

बिहारी ने काव्य-शास्त्र का कोई लक्षण-ग्रन्थ नहीं लिखा परन्तु उनके इस ग्रन्थ को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह रीति-काव्य-परम्परा में केवल उदाहरणों वाला ग्रन्थ है और इसे रीतिकाव्य की परम्परा से अलग नहीं किया जा सकता। कवि अनुभावों और विभावों की अत्यन्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मार्मिक दशाओं का चित्रण करता है। दशाओं के चुनाव और व्यंजना दोनों में कवि ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से काम लिया है :—

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौंहनि हँसे, देन कहै, नटि जाय॥

इस दोहे में बिहारी ने पहले तो गोपिका का आन्तरिक परिचय दिया है और फिर इतने गहरे रङ्ग में उसके अनुभावों अकन किया है कि पाठक का हृदय श्रीकृष्ण के साथ ही उसकी ओर आकर्षित होता है। फिर कवि ने दूसरी पंक्ति में जो छोटे-छोटे उपवाक्य रखे हैं वे उनकी नाटकीयता का भी चित्रण अत्यन्त सजीवता के साथ उपस्थि करते हैं।

नासा मोरि, नचाइ दृग, करी कका की सौंह।
काँटे सी कसके हिये, गड़ी कँटीली भौंह॥

में ५६ फूलों का वर्णन है। इसकी रचना सं० १६७८ से लगभग जहाँगीर की आज्ञा से आगरे में हुई। 'रसराज' में शृगार रसान्तर्गत नायक-नायिका भेद तथा अनुभव आदि का वर्णन है। इसका रचनाकाल लगभग १६९५ वि० माना गया है। यह ग्रंथ मतिराम की प्रसिद्धि का आधार है। मतिराम इसकी रचना के लिए किसी नरेश के कृतज्ञ नहीं थे। 'छन्दसार पिंगल' में पिंगलशास्त्र की विवेचना लगभग १७०५ वि० में श्रीनगर के फतेहशाह बुन्देला के लिए की गई थी। मतिराम की अक्षय कीर्ति का दूसरा आधार 'ललित ललाम' है जो बूँदी के महाराज भावसिंह के प्रश्रय में सं० १७१९ वि० में लिखा गया था। इसमें कवि ने अलंकारों की विवेचना की है। 'मतिराम सतसई' में शृङ्गार और शांत के ७०० दोहों का संग्रह है। इनकी रचना स्फुट रूप में समय-समय पर होती रही। इसका संकलन सं० १७३५ के लगभग हुआ। सं० १७४० वि० के लगभग कवि ने 'साहित्य सार' नामक एक छोटा सा नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा। सं० १७४५ में 'लक्षण शृङ्गार' की रचना भावों और विभावों का वर्णन करने के लिए हुई। १७४७ वि० में कुमायूँ के राजकुमार ज्ञानचंद के लिए कवि ने अपना 'अलंकार पंचा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिका' नामक अंतिम ग्रंथ लिखा। इसमें अलंकारों का वर्णन है। यह संस्कृत के ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया ज्ञात होता है।

परवर्ती कवियों ने मतिराम के 'रसराज' और 'ललित ललाम' का पर्याप्त सम्मान किया। कई कवियों ने इन ग्रन्थों की टीकाएँ लिखीं। मतिराम की भाषा पद्माकर के समान अत्यन्त स्वाभाविक है। इनकी कविता में न तो भावों की कृत्रिमता है और न भाषा की अस्वाभाविकता। चमत्कार के लिए निरर्थक अथवा साधारण शब्दों का प्रयोग कहीं पर भी नहीं हुआ। शब्द-शब्द सोच-विचार कर रखा गया है। भावों को स्वाभाविकतम रूप में रखने के लिए ये बिहारी के समान दूर की अनोखी सूझों के पीछे नहीं भटके। हिन्दी रीति-काव्य के समान हरे भरे और फूले-फले उपवन में मतिराम रूपी पुष्प का सौरभ अतीत के श्यामल पथ को पार कर हमारे पास तक पहुँच रहा है।

भूषण

भूषण तिकवांपुर (जि० कानपुर) के निवासी थे। इनकी जन्म तिथि सं ०१६७० वि० के लगभग मानी जाती है। इनका वास्तविक नाम अज्ञात है। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें कवि 'भूषण' की उपाधि दी थी। तभी से ये भूषण के नाम से प्रसिद्ध हुए। हिन्दी के अन्य शृंगारप्रिय कवियों की भाँति आश्रयदाताओं की खोज में यहाँ-वहाँ भटके थे। इनके आश्रयदाताओं में रुद्र सोलंकी, छत्रसाल बुन्देला, संभाजी, साहूजी, राव बुद्धसिंह, अवधूतसिंह, मिरजा राजा जयसिंह, बाजीराव, दाराशाह उल्लेखनीय हैं। इनके लिखे हुए छः ग्रन्थ कहे जाते हैं :—

(१) शिवराज भूषण (२) शिवा बावनी (३) छत्रसाल दशक (४) भूषण हजारा (५) भूषण उल्लास (७) दूषण उल्लास।

'शिवराज भूषण' में कवि ने अलंकारों की विवेचना की है। इसमें एक सौ नौ अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण हैं। उदाहरणों में शिवा जी के जीवन की घटनाओं तथा उनके प्रभुत्व एवं आतंक का वर्णन है। वीर पूजा की इतनी उत्कृष्ट एवं अनन्य भावना हिन्दी रीति साहित्य में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0..In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्यत्र दुर्लभ हैं। 'शिवा बावनी' में शिवाजी की प्रशंसा संबंधी ५२ छंद संग्रहीत हैं। 'छत्रसाल दशक' में छत्रसाल की प्रशंसा दस छन्दों में है। अन्य ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हो सके। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कवि के लगभग ६० पद और उपलब्ध हुये हैं। इन ६० पदों में ३२ शिवाजी के प्रशंसा-सम्बन्धी, १२ शृङ्गार रस सम्बन्धी हैं। शेष १६ पदों का संबंध विविध व्यक्तियों से है।

भूषण शृंङ्गार काल के अति शृङ्गारिक वातावरण में उत्पन्न होकर भी वीर रस के कवि थे। इनके वीर रस को हम प्रधानतया युद्ध वीर के अन्तर्गत ही रखेंगे। दानवीर और दयावीर के उदाहरण भी इस ग्रंथ में कहीं-कहीं प्राप्त हो जाते हैं। भूषण की कविता आधुनिक दृष्टि से राष्ट्रीय नहीं कही जा सकती। वे भारत राष्ट्र के लिए नहीं, हिन्दू जाति के उत्थान के लिए अपनी प्रतिभा का प्रयोग करते हैं। उस काल में 'राष्ट्रीयता' जैसी भावना का अभाव ही था। भूषण की भाषा मिश्रित है; परन्तु उसमें भावव्यंजना की अपार शक्ति है।

हिन्दी एकमात्र वीर रस मूलक अलंकार का लक्षण ग्रन्थ 'शिवराज भूषण' कला-काव्य का भूषण है।

ये अन्तर्वेद के निवासी थे। इनके लिखे हुए निम्न ग्रंथ मिलते हैं:—

कालिदास त्रिवेदी (१) वरवधू-विनोद (२) जजीराबंद (३) राधा-माधव-बुध मिलन-विनोद।

इन ग्रन्थों में 'वरवधू-विनोद' नायिकाभेद और नख-शिख की पुस्तक है। इन रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने सं० १४८१ से लेकर १६७६ तक के २१२ कवियों के एक हजार पद्यों का संग्रह किया है जो 'कालिदास हजारा' के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी है।

शृङ्गार काव्य के उत्कृष्ट कवि देव का जन्म जन्म सं० १७३० वि०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में इटावा में हुआ था। ये जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके माता पिता के विषय में विस्तृत परिचय नहीं मिलता।

देव ये औरंगजेब के तृतीय पुत्र आजमशाह के राज्याश्रय में थे। १६ वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'भाव विलास' और 'अष्टयाम' की रचना की। गुणग्राहक आजमशाह ने उन्हें सुना और सराहा। संवत् १७६४ में राजनीतिक षड्यन्त्रों में पड़कर आजमशाह मारा गया और उस समय दिल्ली के वैभवशाली दरबार से नाता टूट जाने के कारण ये जहाँ-तहाँ भटकने लगे। इनका यह भटकना भी हिन्दी साहित्य का सौभाग्य बन गया। इन्होंने भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों और नगरों का निरीक्षण किया और वहाँ के निवासियों की वेश-भूषा तथा रहन-सहन को भली-भाँति देखकर इन्होंने 'जाति-विलास' की रचना की। दिल्ली दरबार से अलग होकर ये किसी अन्य सुयोग्य गुणग्राही आश्रयदाता की खोज में रहे। अंत में इन्हें भवानी-दत्त वैश्य का आश्रय मिला और उन्हीं के नाम पर इन्होंने 'भवानी विलास' नामक ग्रन्थ की रचना की। किन्तु अदृष्ट ने अभी तक देव के जीवन में शांति और स्थिरता न आने दी। किन्हीं कारणों से भवानी दत्त वैश्य का आश्रय भी इन्हें छोड़ना पड़ा और ये कुशलसिंह के यहाँ गए। यहीं पर इन्होंने कुशलसिंह के नाम पर 'कुशल विलास' नामक ग्रन्थ बनाया। उसके पश्चात् इन्हें राजा द्वैतसिंह का आश्रय मिला। इनके नाम पर इन्होंने 'प्रेमचन्द्रिका' की रचना की। विशेष बात यह है कि देव ने अपने आश्रयदाताओं का नामोल्लेख तो किया है परन्तु उनकी प्रशंसा में भूषण की शैली की भाँति छन्द नहीं कहे। अपने आश्रयदाताओं के प्रति कवि की यह उदासीनता हिन्दी शृङ्गार-कालीन साहित्य में पर्याप्त महत्वपूर्ण है। सं० १७८३ में देव को राजा भोगीलाल का आश्रय प्राप्त हुआ। इनके नाम पर कवि ने 'रस-विलास' नामक ग्रन्थ रचा। उसमें इन्होंने अपने आश्रयदाता की कुछ प्रशंसा की है। सौभाग्य की यह कड़ी भी निर्बल थी। राजा भोगीलाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का भी आश्रय कवि को छोड़ना पड़ा। उसके पश्चात् देव ने 'शब्द रसायन' की रचना की। बहुत दिनों तक देव को कोई आश्रयदाता नहीं मिला परन्तु इसके अभाव में कवि ने काव्य-रचना में कोई शिथिलता नहीं आने दी। अन्त में उन्हें पिहानी निवासी अकबर अली खाँ का आश्रय प्राप्त हुआ और इन्होंने तब तक बनाई हुई सारी काव्य-रचना 'सुख सागर तरङ्ग' संग्रह नाम देकर अपने इसी अंतिम आश्रयदाता को समर्पित कर दी।

कहा जाता है कि देव ने १२ ग्रन्थों की रचना की परन्तु इनकी प्राप्त रचनाओं की संख्या लगभग ३० है:—

'भाव विलास', 'अष्टयाम', 'भवानी-विलास', 'सुजान-विनोद', 'रागरत्नाकर', प्रेमचन्द्रिका', 'रस-विलास', 'सुख-सागर-तरङ्ग', 'जगदर्शन-पचीसी', 'आत्मदर्शन-पचीसी', 'तत्त्वदर्शन पचीसी', 'प्रेम-पचीसी', 'शृंगार-विलासिनी', 'प्रेम तरंग', 'कुशल-विलास', 'देवचरित्र', 'जाति-विलास'. 'शब्द-रसायन', 'देवमाया-प्रपंच नाटक', 'वृत्त विलास', 'पावस विलास', 'रसानन्द-लहरी', 'प्रेम-दीपिका', 'सुमिल-विनोद', 'राधिका-विलास', 'नख-शिख', प्रेम-दर्शन', 'नीति-शतक', और 'वैद्यक-ग्रन्थ'।

'भाव-विलास' में काव्य के विविध अङ्गों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें ६ प्रकार के भावों और ३४ प्रकार के संचारी भावों का उल्लेख है। देव ने दो प्रकार के रसों की कल्पना की है—लौकिक तथा अलौकिक। अलौकिक रसों को तीन भागों में विभक्त किया है:—

(१) स्वप्न, (२) मनोरथ, और (३) उपनायक।

लौकिक रसों को परम्परागत नौ भेदों में विभक्त किया है।

देव ने कुल ३९ अलंकार माने हैं। पता नहीं १०८ अलंकारों के स्थान पर ३९ अलंकार मानने में देव का कौन सा सिद्धान्त था। 'अष्टयाम' में अनवरत चलने वाले विलास की दिनचर्य्या है। 'भवानी-विलास' में रसों की विशद व्याख्या है। 'सुजान-विनोद' नायिकाभेद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का ग्रन्थ है। 'देव-चरित्र' का विषय पौराणिक है। इसमें कंस-वध का विशेष लम्बा वर्णन है। 'प्रेम-चन्द्रिका' में शृंगार रस का रसराजत्व प्रतिपादित किया गया है। 'जाति-विलास' में भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों की विभिन्न जाति की स्त्रियों का वर्णन है। 'राग रत्नाकर' संगीत ग्रन्थ है। 'रस-विलास' में शृंगार से परिपूर्ण कामिनी का सुन्दर वर्णन किया गया है। 'शब्द-रसायन' में देव आचार्य रूप में हमारे सामने आते हैं। इसमें 'शब्द-शक्ति' पर विचार किया गया है और साहित्य शास्त्र की मार्मिक एवं गम्भीर विवेचना की गई है। 'सुख-सागर-तरङ्ग' में नायिका भेद तथा ऋतु वर्णन है। 'देव-माया-प्रपंच' नाटक में धर्म तथा माया के संग्राम का वर्णन है और जी खोल कर माया की महिमा गाई गई है। 'प्रेमतरङ्ग' में नायिका भेद है। 'दर्शन-पचीसी', 'आत्म-दर्शन-पचीसी', 'तत्व-दर्शन-पचीसी' का विषय उनके नामों से ही स्पष्ट है।

देव ने शृङ्गार रसमयी रचना अधिक की है। प्रेम की सुकुमार अवस्थाएँ मार्मिक अनुभूतियाँ, रस-जनित आनन्द एवं मधुरता का अत्यन्त मनोरम चित्रण देव की कविता में मिलता है। कवि काव्य-शास्त्र के साथ साथ संगीत शास्त्र का भी अच्छा ज्ञाता था। इसी कारण उसकी कविता में शब्दों की योजना अत्यन्त सुथरी एवं कोमल संगीतमय है। जीवन के अन्तिम दिनों में इनका ध्यान भगवद्भक्ति की ओर चला गया ज्ञात होता है। जिस 'देव' ने एक दिन लिखा था—

सखी के संकोच, गुरु सोच, मृगलोचनि,
रिसानी पिय सों जु उन नेकु हँसि छुयो गात।
'देव' वै सुभाय मुसकाय उठि गये, यहिं,
सिसक सिसक निसि खोई, रोय पायो प्रात॥
को जानै री बीर, बिनु बिरही बिरह बिथा,
हाय हाय करि पछिताय न कछू सोहात।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बड़े बड़े नैनन सों आँसू भरि भरि ढरि,
गोरो-गोरो मुख आजु ओरो सो बिलानों-जात ॥

वही अन्त में लिखते हैं—

बरुनी बघम्बर में गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भगोहैं भेख रखियाँ।
बूड़ी जल ही में दिन जामिनि हू जागैं भौं हें,
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ ॥
आँसू ज्यों फटिक माल लाल डोरे सेल्ही पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेली, सङ्ग सखियाँ।
दीजिये दरस 'देव' कीजिये संजोगिनी ये,
जोगिनो ह्वै बैठी हैं वियोगिनी की अँखियाँ ॥

शब्दों को अर्थ की मिठास में डुबा कर एवं व्यंजना के मनोमोहक रङ्गों में रङ्ग कर देव ने हिन्दी कविता को कला की चरमस्थिति तक पहुँचा दिया है।

श्रीपति

ये कालपी के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके लिखे हुए निम्न ग्रन्थ हैं। (१) कविकल्पद्रुम (२) काव्य सरोज़ (३) सरोज-कलिका (४) रस-सागर (५) अलंकार-गङ्गा (६) अनुप्रास-विनोद (७) विक्रम-विलास।

इन ग्रन्थों में कवि ने काव्यशास्त्र के सभी विषयों की विशद विवेचना की है। काव्यगत दोषों का निरूपण करते हुए श्रीपति ने उदाहरणों में केशवदास के बहुत से पद्य रखे हैं। इनका आचार्यत्व अत्यन्त उच्च कोटि का है। भिखारीदास, जिनका वर्णन आगे किया जायेगा, इनके अत्यधिक ऋणी हैं।

अल मुहिबखाँ (प्रीतम)

रीतिकाव्य की परम्परा के विरुद्ध १७८७ वि० में इन्होंने हास्य को आलंबन रूप में रखकर 'खटमलबाईसी' नाम की एक पुस्तक लिखी। इनका यही महत्त्व है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये प्रतापगढ़ के निकट ट्योंगा गाँव के रहने वाले श्रीवास्तव कायस्थ **भिखारी दास** थे। इनके लिखे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ हैं :—

(१) रससारांश (२) छन्दोर्ण पिंगल (३) काव्य-निर्णय (४) शृंगार निर्णय (५) नामप्रकाश (६) विष्णुपुराण भाषा (७) छन्दप्रकाश (८) शतरंज-शतिका (९) अमर प्रकाश।

इन ग्रन्थों में 'काव्य-निर्णय' सब से अधिक प्रसिद्ध है। छन्द, रस, अलंकार, रीति, गुण-दोष, शब्द-शक्ति आदि सभी काव्यांगों की जैसी विस्तृत विवेचन भिखारीदास ने की है वैसी किसी अन्य कवि ने नहीं। इसी कारण हिन्दी रीति काव्य में इनका स्थान अत्यन्त ऊँचा है। परन्तु इनके लक्षण कहीं-कहीं भ्रामक हैं और उदाहरण अशुद्ध।

कविता की दृष्टि से ये एक सफल कवि थे। व्यंजना पर इनको पूरा अधिकार था। जिस बात को जिस शैली में ये कहना चाहते थे, उस बात को अद्वितीय ढङ्ग से कह सकते थे। न ये शब्द-चमत्कार के पीछे दौड़े और न कल्पना के पीछे ही मतवाले हुए। इन्होंने हिन्दी रीति-काव्य के कृष्ण और राधा के विषय में हमें बतलाया है कि :—

आगे के सुकवि रीझि हैं तौ कविताई।
न तो राधिका कन्हाई सुमिरनि को बहानो है॥

ये बिलग्राम (जि० हरदोई) के रहने वाले थे और इनका पूरा नाम सैय्यद गुलाम नबी था। इन्होंने निम्नलिखित

रसलीन ग्रन्थों की रचना की—(१) अंगदर्पण (२) रस प्रबोध।

'अंगदर्पण' में अंगों का चमत्कारपूर्ण ढङ्ग से वर्णन है। आँखों के विषय में यह प्रसिद्ध दोहा इन्हीं का बनाया हुआ है :—

अमी हलाहल मद भरे, स्वेत, स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि झुकि परति, जेहि चितवत इक बार॥

'रस-प्रबोध' में रस, भाव, नायिकाभेद, षट्-ऋतु और बारहमासा आदि अनेक प्रसंगों की विवेचना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये काशीराज महाराज वरिवंडसिंह की सभा के एक रत्न थे। काशीराज नरेश ने इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर इन्हें चौरा नामक एक गाँव दिया था। इनके लिखे चार ग्रन्थ हैं :—

रघुनाथ

(१) काव्य-कलाधर (२) रसिकमोहन (३) जगतमोहन और (४) इश्क-महोत्सव।

'रसिकमोहन' में अलङ्कारों की विवेचना है और 'काव्य-कलाधर' में रस तथा नायक-नायिका भेद है। 'इश्क-महोत्सव' में खड़ी बोली की कविता है।

ये कालिदास के पौत्र थे। इनका बनाया हुआ एक ही ग्रन्थ मिला है—'कविकुल-कंठाभरण'।

दूलह

इस ग्रंथ में अलंकारों की विवेचना है और एक ही छन्द में लक्षण एवं उदाहरणों का कथन है। कवित्त और सवैया जैसे बड़े छन्द लेने के कारण इन्हें लक्षण एवं उदाहरण दोनों के सम्यक् कथन के लिए पर्याप्त अवसर मिला है। इनकी काव्य-प्रतिभा के विषय में निम्नलिखित उक्ति अत्यधिक प्रसिद्ध है :—

और बराती सकल कवि,
दूलह दूलह राय।

परन्तु किसी अनुप्रास प्रेमी की यह उक्ति चमत्कारयुक्त भले ही हो, तथ्ययुक्त नहीं है। हिन्दी के भंडार में सूर और तुलसी जैसे रत्नों के रहते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि दूलह उनसे ऊँचे कवि थे।

ये बैती (जि० रायबरेली) के रहने वाले थे। इनके लिखे हुए निम्न ग्रन्थ हमें मिलते हैं :—

बेनी बन्दीजन

(१) टिकैतराय प्रकाश (२) रसविलास (३) भँड़ौवा-संग्रह।

'टिकैतराय प्रकाश' अलंकार ग्रन्थ है और 'रस विलास' में रसों का निरूपण किया गया है परन्तु इनकी प्रसिद्ध 'भँड़ौवा' के कारण अधिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। औरंगजेब ने एक हथिनी किसी कवि को दी थी। उस पर बेनी ने एक छन्द लिखा है :—

तिमिरलंग लइ मोल, चली बाबर के हलके।
रही हुमायूँ संग फेरि अकबर के दल के॥
जहाँगीर जस लियो, पीठि को भार हटायो।
शाहजहाँ करि न्याव, ताहि पुनि माँड़ चटायौ॥
बल-रहित भई पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर।
औरङ्गजेब करिनी सोई, लै दीन्हीं कविराज कर॥

बेनी प्रवीन

ये लखनऊ के निवासी थे। इनके लिखे निम्न ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।

(१) नवरस-तरङ्ग (२) शृङ्गार भूषण (३) नानाराव प्रकाश।

'नवरस-तरङ्ग' में नायिकाभेद, रसभेद और भावभेद की संक्षिप्त विवेचना है। 'शृंगार भूषण' में शृङ्गारिक छन्दों का संग्रह और 'नाना-राव प्रकाश' में केशव की 'कवि-प्रिया' की शैली पर अलंकारों की विवेचना है। काव्य के दृष्टिकोण से ये कहीं-कहीं पद्माकर और मतिराम के सन्निकट पहुँच जाते हैं।

पद्माकर

पद्माकर तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। सं० १८१० वि० में मध्य प्रदेश के सागर नामक स्थान में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता भी कवि थे और कवि से भी अधिक इनकी प्रसिद्धि अनुष्ठानों और मन्त्र-सिद्धि के सम्बन्ध में थी। इसी कारण राजदरबारों तक इनकी पहुँच थी। किन्तु काव्य-रचना में तो इनका सारा परिवार ही रुचि रखता था और इसी कारण इनके वंश का नाम 'कवीश्वरवंश' पड़ा। पद्माकर के वंशज आज तक थोड़ी बहुत कविता करते हैं और अपने को 'कवीश्वर' लिखते हैं।

पद्माकर ने काव्य-क्षेत्र में विशेष ख्याति अर्जित की। उन्होंने तत्का-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लीन सागर नरेश अप्पा साहब की प्रशंसा में निम्नलिखित छन्द लिखकर सुनाया था :—

सम्पति सुमेर की कुबेर की जु पावै, ताहि
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहै पद्माकर सुहेम हम हाथिन के
हलके हजारन के बितरि बिचारै ना।
गंज गज बक्स महीप रघुनाथ राव
पाय गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना।
याहो डर गिरिजा गजानन को गोइ रही
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना।

कहा जाता है कि इस छन्द पर मुग्ध होकर श्री रघुनाथ राव ने एक लाख मुद्रा पद्माकर को पुरस्कार के रूप में प्रदान की थीं। आज भी यह कवित्त पद्माकर के वंशजों में "लाखिया" के नाम से प्रसिद्ध है।

इनका स्वभाव अत्यन्त स्वच्छन्द था। इसी कारण इनकी अप्पा साहब से शायद अनबन हो गई और ये अपने मूल निवास-स्थान बाँदा चले गए। वीर अर्जुनसिंह से भी इनका कुछ सम्बन्ध था। कहा जाता है कि 'अर्जुन रायसा' नामक वीर काव्य उन्होंने उन्हीं की प्रशंसा में लिखा था। इसके परचात् ये दतिया के महाराज के दरबार में गए और वहाँ पर निम्नलिखित छन्द प्रशस्ति के रूप में सुनाया :—

जप तप कै चुको लै चुको सकल सिद्धि
दै चुकौ चुनौती चित्त चिंतन के नाम को।
कहै पद्माकर महेश मुख जोइ चुको।
ढोइ चुको सुखद सुमेरु अभिराम को।
भूपमनि पारीछत रावरो सुजस गाइ,
लाइ चुको इन्दरा उमंग निज धाम को।
ध्याइ चुको धनद कमाइ चुको कामतरु,
पाइ चुको पारस रिझाय चुको राम को।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहा जाता है कि पद्माकर को इस कवित्त पर जागीर मिली थी। दतिया से होकर यह रजधान के हिम्मत बहादुर के यहाँ गए और उनकी प्रशंसा में 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' नाम का वीर-काव्य लिखा। यहाँ से ये सितारे में श्री राघोबा के दरबार में पहुँचे। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर राघोबा ने इन्हें एक लाख रुपया और दस गाँव दिये। सितारे से ये फिर सागर के रघुनाथ राव के दरबार में गए और वहाँ से लौट कर बाँदा आए। बाँदे से जयपुर के सवाई महाराजा प्रताप-सिंह के यहाँ गए और उनकी मृत्यु हो जाने पर फिर बाँदे लौट आए। उसके पश्चात् ये फिर जयपुर गए और महाराजा जगतसिंह के दरबार में रहे। महाराजा जगतसिंह को तीतर-बटेर की लड़ाई में अत्यन्त रुचि थी। पद्माकर ने उसका भी वर्णन अत्यन्त उत्साह के साथ किया है। जयपुर से यह महाराणा भीमसेन के दरबार में उदयपुर गए। इसके अनन्तर इन्होंने तत्कालीन ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया के दरबार की शोभा बढ़ाई।

जयपुर में इनके शरीर में श्वेत कुष्ट हो गया था। कालान्तर में अत्यधिक उपचार के बाद वह अच्छा तो हो गया परन्तु हिन्दी साहित्य के भाग्य में इस अत्यधिक प्रतिभावना कवि की और अधिक सेवायें नहीं लिखी थीं। कानपुर में सं० १८६० वि० में पद्माकर का देहावसान हो गया।

पद्माकर प्रतिभावान होने के कारण अत्यन्त स्वछन्द स्वभाव के थे और इसीलिए इन्हें सारे जन्म भटकना ही पड़ा। जयपुर में इन्हे कुछ दिनों तक शान्ति का जीवन मिला। इस समय ये राजसी वैभव में रहते थे। यात्रा के लिये ये बड़े लाव-लश्कर के साथ निकलते थे। एक बार जयपुर से बाँदा जाते समय इनके लाव-लश्कर को देखकर किसी नरेश को भ्रम हुआ कि हमारे ऊपर कोई नरेश चढ़ाई करने आ रहा है। पद्माकर ने उनका भ्रम निम्नलिखित छन्द सुनाकर दूर किया :—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूरत के शाह कहैं, कोऊ नरनाह कहैं,
कोऊ कहैं ये मालिक मुलुक दराज के।
राव कहै कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहै,
कोऊ कहै ये साहब सुखद समाज के।
देख असबाब मेरे भरमे नरेन्द्र सबै,
तिन सों कहे मैं बैन सत्य सिरताज के।
नाम पद्माकर डराउ मत कोऊ भैया,
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के॥

इनके लिखे ग्रन्थों में इनकी निम्नलिखित कृतियाँ प्रमुख हैं :—

(१) हिम्मत बहादुर विरुदावाली (२) पद्माभरण (३) जगत विनोद (४) प्रबोध-पचासा (५) गंगालहरी (६) रामरसायन (७) आलीजा प्रकाश।

इन ग्रन्थों में 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' एक प्रबन्ध-काव्य है। इसमें हिम्मत बहादुर और अर्जुनसिंह के बीच हुए एक युद्ध का वर्णन है। युद्ध के वर्णन में कवि ने कथा-नायक की प्रशंसा अत्युक्ति और अतिशयोक्ति के सहारे की है। वर्णन में सांगोपांगता और मार्मिकता का अभाव है। 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' में हमें ऐसा कोई गुण नहीं मिलता जो पद्माकर की अन्य सरस रचनाओं के समकक्ष रखा जा सके।

'पद्माभरण' में अलंकारों की विवेचना है। इसमें संस्कृत के चन्द्रालोक का सहारा लेकर अलंकारों के लक्षण लिखे गए हैं और उदाहरणों में भी उसी से सहायता ली गई है परन्तु अधिकतर उदाहरण मौलिक ही हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि पद्माकर ने अपना ग्रन्थ बैरी साल के 'भाषाभरण' नामक रीतिग्रन्थ को देखकर बनाया था। प्रारम्भ ही में इनका यह ग्रन्थ भाषाभरण के अनुकरण में लिखा गया ज्ञात होता है।—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहुँ पदतैं कहुँ अर्थ ते कहूँ दुहूँ तें जोइ,
अभिप्राय जैसो जहाँ अलंकार तेऊ होइ।
अलंकार तेहि ठौर में जो अनेक दरसाई,
अभिप्राय कांव को जहाँ सो प्रधान तिनमाइ ॥

भाषाभरण

सब्दहु ते कहुँ अर्थ तें कहुँ दोउ तैं उर आनि,
अभिप्राय जेहि भाँति जहँ अलंकार सो मानि।
अलंकार एक थलै में समझ परै जु अनेक,
अभिप्राय कवि को जहाँ वहै मुख्य गंत एक ॥

पद्माभरण

इन छन्दों की तुलना करने से हमें पद्माभरण पर भाषाभरण का ऋण ज्ञात हो जाता है।

पद्माकर अपने 'जगद्विनोद' में किसी विशेष पुस्तक के कृतज्ञ नहीं हैं। हिन्दी की रूढ़िगत परम्परा का पालन पद्माकर ने नायक-नायिका भेद में अवश्य किया है।

पद्माकर की भक्ति-विषयक कविता के मूल में संसार की जटिलताओं और कवि की अपनी विकट परिस्थितियों की करुण-कथा है। कहीं क्षुधा की ज्वाला से झुलसे व्यक्तियों के चित्र हैं तो कहीं चिर-अतृप्त सांसारिक तृष्णा का और वैर का वर्णन है। 'गङ्गा लहरी' पंडितराज जगन्नाथ की संस्कृत भाषा में लिखी गंगालहरी के आदर्श पर लिखी गई है। किंतु पद्माकर ने अपनी अनुभूति का चित्रण मौलिक ढङ्ग से किया है। इनकी गङ्गालहरी इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि कवि ग्वाल ने उसी के अनुकरण पर 'यमुना लहरी' लिखी और कवि लछिराम ने 'सरयू लहरी'। ये दोनों ग्रंथ पद्माकर की रचना से ही अनुप्राणित हुए हैं। पद्माकर की भाषा अत्यन्त परिष्कृत है। शुद्ध वर्णनात्मक प्रसङ्गों में ये अनुप्रासों से भाषा का बड़ा आकर्षक शृङ्गार करते हैं और शब्द-ध्वनि से ही अर्थ का संकेत करते हैं। रस-निरूपण में शब्द-योजना की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपेक्षा ध्वनियों की कोमलता तथा भाषा की शास्त्रीयता प्रधान गुण हो गया है। प्रवाह एवं स्वच्छन्द वाग्विलास इनकी प्रौढ़ भाषा के आभूषण हैं।

ग्वाल कवि

ये मथुरा निवासी सेवाराम के पुत्र थे। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना सं० १८७६ से सं० १९१८ तक की :—

(१) यमुनालहरी (२) रसिकानन्द (३) रसरङ्ग (४) कृष्ण जू को नखशिख (५) दूषण दर्पण (६) हमीर हठ (७) गोपी पच्चीसी (८) राधा-माधव-मिलन (९) राधा अष्टक (१०) कवि हृदय विनोद (११) भक्त भावना।

'यमुनालहरी' में यमुना की विशेषताओं की विवेचना के साथ-साथ नवरस और षट्ऋतु का निरूपण भी है। 'रसिकानन्द' में अलंकार की विवेचना है। इन्होंने ठेठ पूर्वी हिन्दी, गुजराती तथा पंजाबी भाषा में भी कुछ कवित्त-सवैये लिखे। चलती हुई किन्तु व्यवस्थित भाषा इन्होंने प्रयोग किया। अपनी भाषा की सरसता के कारण ही ये विशेष लोकप्रिय हुए।

प्रताप साहि

ये रत्नेश बन्दीजन के पुत्र थे और महाराज विक्रम शाहि के यहाँ रहते थे। इनकी लिखी निम्न रचनाएँ प्राप्त हैं :—

(१) व्यंग्यार्थ-कौमुदी (२) जैसिंह प्रकाश (३) काव्य-विलास (४) शृङ्गार-मञ्जरी (५) शृङ्गार-शिरोमणि (६) अलंकार चिन्तामणि (७) काव्य-विनोद (८) रसराज की टीका (९) रत्नचन्द्रिका (१०) जुगल नखशिख (११) बलभद्र नखशिख की टीका।

सं० १८८० से सं० १९०० वि० तक उन्होंने इन ग्रन्थों की रचना की। इस सूची में कुछ तो इनकी मौलिक कृतियाँ हैं और कुछ टीकाएँ। मौलिक कृतियों के शीर्षक ही इस बात के द्योतक हैं कि ये कितने बड़े आचार्य थे। व्यंजना पर इन्होंने एक अलग ग्रन्थ लिखा था जिसका नाम 'व्यंग्यार्थकौमुदी' है। रस एवं नायिकाभेद का अद्भुत सम्मिश्रण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्होंने किया है। कवित्व एवं आचार्यत्व दोनों को यदि एक में मिलाकर देखा जाय तो ये मतिराम, तथा भिखारीदास से श्रेष्ठ हैं।

रीतिकाव्य की पृष्ठभूमि में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि कृष्ण-भक्ति-काव्य में रीति ग्रन्थों की रचना के बीज मिलते हैं। विक्रम की १९वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में इसके उदाहरण में रसिक गोविन्द की रचनाएँ उपस्थित की जा सकती हैं। श्री रसिक गोविन्द निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

रसिक गोविन्द

(१) रामायण सूचनिका (२) रसिक गोविंदानन्दघन (३) लछिमन चन्द्रिका (४) अष्टदेशभाषा (५) पिंगल (६) समय प्रबन्ध (७) कलि-जुग रासो (८) रसिक गोविन्द (९) युगल रस माधुरी।

इन ग्रन्थों में 'रसिक गोविन्दानन्दघन' में रस नायक-नायिका भेद, अलङ्कार, गुण एवं दोष की विस्तृत विवेचना है। स्थान-स्थान पर संस्कृत के ग्रन्थ प्रमाणस्वरूप उद्धृत भी किये गए हैं। 'पिंगल' में पिंगल की विवेचना है और 'रसिक गोविन्द' भाषा-भूषण या चन्द्रालोक की शैली की एक छोटी सी पुस्तक है। शेष ग्रन्थों की विषय-वस्तु उनके शीर्षकों से ही स्पष्ट है।

संक्षेप में प्रमुख हिन्दी रीति-काव्यकारों का परिचय यही है। इन कवियों के अतिरिक्त बेनी (असनी), मंडन, कुलपति मिश्र, सुखदेव मिश्र, रामनेवाज, श्रीधर, सूरति मिश्र, कवीन्द्र, वीर, कृष्ण, रसिक, गंजन, भूपति, तोपनिधि, सोमना, कुमारमणि, शम्भुनाथ, शिवसहायदास, रूप-साहि ऋषिनाथ, बैरीसाल, दत्त रतन कवि, नाथ, मनीराम, चंदन, देवकी नंदन, महाराज रामसिंह, भान, यशोदानन्दन, करन, गुरदीन, ब्रह्मदत्त आदि और भी कवि हुए।

रीतिकाल के साहित्य का परिशिष्ट

कलाकाल में रीति-काव्य धारा प्रमुख थी परन्तु कुछ ऐसे साहित्य की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी रचना हुई जिसे रीति-काव्य नहीं कहा जा सकता। ऐसे साहित्य में अधिकतर इतिवृत्तात्मक निरूपण मिलते हैं।

इस इतिवृत्तात्मक निरूपण में प्रबन्ध-काव्य तथा मुक्तक-काव्य दोनों हैं, तो भी प्रबन्ध-काव्य कहीं तो धार्मिक कथानकों को लेकर लिखे गए हैं और कहीं ऐतिहासिक कथानकों को। धार्मिक कथानकों को लेकर प्रबन्ध-काव्यों की रचना की परम्परा हिन्दी में भक्तिकाल में उत्कर्ष पर थी। यह धारा इस काल में साहित्य एवं धार्मिक दोनों दृष्टिकोणों से हीन रही। उत्कर्ष के बाद पतन के स्वाभाविक नियम का यह एक प्रकार का अचेतन पालन था। इन काव्यों में न तो बहुत उच्चकोटि की धार्मिकता मिलती है जो शान्त रस की उत्पत्ति कर सके और न वह साहित्यिकता मिलती है जो उसे ऊँचे काव्य की श्रेणी में बिठला सके। साधारण भक्तों द्वारा भक्ति की अभिव्यंजना की एक परम्परा का पालन-सा ही इन काव्यों में मिलता है। ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य आश्रित कवियों के द्वारा लिखे गये। इन काव्यों की परम्परा हिन्दी में चारणकाल से चली आ रही थी। कलाकाल के इस साहित्य में प्रक्षिप्तांशों की बहुत कमी है, इस कारण इस साहित्य का ऐतिहासिक महत्व पर्याप्त है। इन प्रबन्ध-काव्यों के वर्णन प्रायः लम्बे-लम्बे और सूचियों के रूप में हैं। यदि बारात का वर्णन है तो घोड़ों की सैकड़ों जातियों के नाम हैं, यदि भोजन का प्रसङ्ग है तो सैकड़ों मिठाइयों, पकवानों और मेवों के नाम हैं, और यदि वस्त्रों की बात आई है तो पचासों प्रकार के कपड़ों के नाम कवियों ने गिनाए हैं। इन सूचियों का साहित्यिक महत्व भले ही कुछ न हो परन्तु ये सूचियाँ अपने समय की संस्कृति और सभ्यता पर सुन्दर प्रकाश डालती हैं।

मुक्तक-काव्य में शृङ्गारिक, धार्मिक और नैतिक तीन प्रकार के काव्य मिलते हैं। शृङ्गारिक काव्य में संयोग की माधुरी से भरे छन्द हैं और धार्मिक काव्य में ब्रह्मज्ञान तथा वैराग्य की बातें कही गई हैं। कुछ कवियों ने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद पुराने भक्तों की शैली पर लिखे हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नीति के फुटकर पद्य लिखने की शैली भी प्रचलित रही। इसमें कभी-कभी बात कहने के ढङ्ग में चतुरता दिखाई पड़ती है, परन्तु काव्यात्मक सरसता का अपेक्षाकृत अभाव ही दृष्टिगत होता है।

इस काल में कुछ गद्य की रचनाएँ भी हुईं, उनका उल्लेख आधुनिक काल में गद्य का विकास दिखलाते हुए किया जायेगा।

रीतिकाल के अन्य कवि

सबलसिंह चौहान

ये इटावा के किसी गाँव के जमींदार थे। इन्होंने सारे महाभारत की कथा दोहा-चौपाई शैली में लिखी। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त इनके तीन ग्रन्थ और भी मिलते हैं :—(१) 'ऋतुसंहार' का भाषानुवाद (२) रूपविलास और (३) पिंगल। परन्तु ये तीनों ग्रन्थ काव्यात्मकता की अपेक्षाकृत कमी होने के कारण प्रसिद्ध न हो सके। सीधी-सादी भाषा में सरल ढङ्ग से कथा कहने के कारण इनकी 'महाभारत' रचना ही प्रसिद्ध हो सकी।

वृन्द

ये मेड़ता (जोधपुर) के रहने वाले थे। अपनी नीति-विषयक ७०० दोहों की सतसई के कारण इन्हें लोक प्रियता प्राप्त हुई। 'शृङ्गार-शिक्षा' तथा 'भावपंचाशिका' नामक इनकी दो पुस्तकें और प्राप्त हुई हैं परन्तु वे विशेष प्रसिद्ध नहीं हैं।

आलम

ये जाति के तो ब्राह्मण थे परन्तु शेख नाम की रँगरेजिन के प्रेम में पड़ कर मुसलमान हो गये थे। कहा जाता है कि एक बार आलम ने शेख को अपनी पगड़ी रँगने के लिए दी। इसकी खूँट में कागज में लिखी हुई एक दोहे की पंक्ति बँधी हुई चली गई—

"कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन"

शेख ने इस पंक्ति के नीचे एक और पंक्ति लिख कर दोहे की पूर्ति कर दी—

"कटि को कञ्चन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन्ह।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और कागज ज्यों का त्यों पगड़ी में बाँध कर लौटा दिया। आलम ने उसे पढ़ा और शेख की प्रतिभा से प्रभावित होकर उससे प्रेम बढ़ाया। शेख ने पता नहीं आलम की पगड़ी अच्छे-बुरे, कच्चे-पक्के कैसे रँग में रँगी थी परन्तु स्वयं आलम को उसको ऐसे रँग में रँग दिया जो अत्यधिक पक्का सिद्ध हुआ और आलम के जीवन पर से उसकी चटक मृत्यु-पर्यन्त कम न हुई।

आलम की कविता में प्रेम की असीम तन्मयता के चित्र हैं। उसमें शृङ्गार का उन्माद है जो पाठक को भाव-विभोर कर देता है। हृदय-तत्व की इतनी प्रधानता रसखान और घनानन्द में ही मिलती है।

गुरुगोविंद सिंह

ये सिक्खों के दसवें और अंतिम गुरु थे। इनका जन्म १७२३ वि० में और सत्यलोकवास १७६५ विक्रमी में हुआ। इन्होंने सिक्ख धर्मावलम्बियों में शास्त्र-ज्ञान के प्रचार का उद्योग किया। ये शास्त्र ज्ञान के साथ-साथ शास्त्र-ज्ञान को भी महत्व देते थे और आर्य संस्कृति की रक्षा के लिये समस्त जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहे। इनके लिखे हुये निम्नलिखित ग्रंथ मिलते हैं—

(१) सुनीति प्रकाश (२) चंडी चरित्र (३) प्रेम सुमार्ग (४) सर्वलोह प्रकाश (५) बुद्धि सागर

ओज ही इनकी कविता का विशेष गुण था और भाषा प्रौढ़ साहित्यिक ब्रज थी।

गोरेलाल

ये मऊ (बुन्देलखंड) के रहने वाले थे। अपने आश्रयदाता महाराज छत्रसाल की गाथा इन्होंने 'छत्र प्रकाश' नामक ग्रंथ में लिखी। इस ग्रंथ में सं० १७६४ तक की राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन है। सम्भवतः या तो लाल कवि का परलोकवास १७६४ में हो गया था या यह ग्रंथ अधूरा प्राप्त हुआ है। इस ग्रंथ का महत्व साहित्य की अपेक्षा ऐतिहासिक अधिक है। साहित्यिक दृष्टिकोण से इसमें विशद वर्णन और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओजस्वी भाषण महत्वपूर्ण हैं। कथानक में प्रबन्ध कौशल है जो दोहा-चौपाई शैली में घटित है। कवि उक्ति-चमत्कार के पीछे नहीं भटका। सरलता एवं स्वाभाविकता इस काव्य का विशेष गुण है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से छत्रसाल के व्यक्तित्व पर इस काव्य के द्वारा स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। लाल कवि का एक ग्रंथ और मिलता है। उसका नाम है, 'विष्णुविलास' इसमें नायक-नायिका भेद है परन्तु वह महत्वहीन है।

घन आनन्द

घन आनन्द का जन्म संवत् १७४६ के लगभग हुआ था और उनकी मृत्यु सं० १७९६ में हुई। ये मुहम्मदशाह के मीर मुन्शी थे। मुहम्मद शाह के दरबार की 'सुजान' नामक वेश्या से ये अत्यधिक प्रेम करते थे। उसके प्रेम से निराश होने पर इन्हें संसार से वैराग्य हो गया। ये वृन्दावन में आकर निम्बार्क संम्प्रदाय में दीक्षित हो गए और पूर्ण विरक्त जीवन व्यतीत करने लगे। इनके लिखे निम्न ग्रंथ मिलते हैं :—

(१) सुजान-सागर (२) विरहलीला (३) कोकसार (४) कृपाकांड (५) रसकेलिवल्ली।

घन आनन्द ने अत्यन्त प्रवाहमयी और मधुर व्रजभाषा में सांसारिक प्रणय की जो निराशा और कृष्ण-प्रेम की जो निर्मल आकांक्षा चित्रित की है वह अनुभूति की तीव्रता के कारण अत्यन्त मर्मस्पर्शिणी है। इनकी अधिकांश कविताएँ लौकिक प्रेम की हैं, परन्तु सच तो यह है कि घन आनन्द के लिए लौकिक और अलौकिक प्रेम में अन्तर ही न था। उनके अनुसार विशुद्ध प्रेम सभी परिस्थितियों में मान्य है। प्रेम की इतनी गहरी अनुभूति विरले जनों को ही प्राप्त होती है। चुभती हुई वचन-वक्रता, चमत्कारपूर्ण विरोधाभास और नाद-व्यञ्जना इनके काव्य में विशेष मिलती हैं।

इनके लिखे ये दो सवैये प्रसिद्ध हैं :—

पर कारज देह को धारे फिरौ,
परजन्य ! जथारथ ह्वै दरसौ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निधि नीर सुधा के समान करौ,
सब ही विधि सुन्दरता सरसौ ॥
घन आनन्द जीवनदायक हौ,
कबौं मेटियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के,
आँगन भी अँसुवान को लै बरसौ ॥

× × ×

अति सूधो सनेह को मारग है,
जहँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चलें तजि आपनपौ,
झिझकैं कपटी जो निसांक नहीं ॥
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ,
इत एक तैं दूसरो आक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हौ लला,
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥

इनका नाम पृथ्वीसिंह था। बिहारी के अनुकरण पर इन्होंने 'रत्न हजारा' नामक दोहों का एक ग्रंथ बनाया। ये शृङ्गार के कवि थे और इनकी कविता में बिहारी की वाग्धारा तथा फारसी की शृङ्गारिक उक्तियाँ विशेष मात्रा में मिलती हैं। इनकी कविता रसिकों के मर्म को स्पर्श करने वाली है और कवि के नाम को सार्थक करती है।

रसनिधि

ये रीवाँ के नरेश थे। इन्होंने हिन्दी साहित्य की सेवा स्वयं कविता लिख कर तथा कवियों को आश्रय देकर—दोनों प्रकार से—की। इनकी रचनाओं की सूची निम्न-लिखित है :—

महाराज विश्वनाथसिंह

(१) अष्टयाम आह्निक (२) आनन्द-रघुनन्दननाटक (३) उत्तम काव्य प्रकाश (४) गीता-रघुनन्दन शतिका (५) रामायण (६) गीता-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रघुनन्दन प्रमाणिका (७) सर्वसंग्रह (८) कबीर बीजक की टीका (९) विनयपत्रिका की टीका (१०) रामचन्द्र की सवारी (११) भजन (१२) पदार्थ (१३) धनुर्विद्या (१४) आनन्द-रामायण (१५) परधर्म-निर्णय (१६) शान्ति-शतक (१७) वेदान्त-पंचक शतिका (१८) गीतावली पूर्वार्द्ध (१९) ध्रुव अष्टक (२०) उत्तम-नीतिचंद्रिका (२१) अबोध-नीति (२२) पाखंड-खंडिनी (२३) आदि मङ्गल (२४) बसन्त-चौंतीसी (२५) चौरासी रमैनी (२६) ककहरा (२७) विश्वभोजन-प्रसाद (२८) ध्यान-मंजरी (२९) विश्वनाथ-प्रकाश (३०) परमतत्व (३१) संगीत रघुनन्दन।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने कुछ और ग्रन्थों की भी रचना की है। इनके पूर्वज कबीर पंथ के आदि-प्रवर्त्तक धर्मदास के शिष्य थे। इनके 'ककहरा' 'रमैनी' आदि ग्रन्थ निर्गुण संत मत की परम्परा के द्योतक हैं परन्तु वैयक्तिक रूप से इनकी सगुण राम की उपासना प्रसिद्ध है। इन्होंने कबीर के बीजक की टीका करते हुये कबीर के निर्गुण ब्रह्म को सगुण राम प्रमाणित किया। इनका 'आनन्द रघुनन्दन' हिन्दी का सर्व-प्रथम नाटक है। इस कारण हिंदी साहित्य के इतिहास में इनकी रचना स्मरणीय है।

नागरीदास

इस नाम के कई कवि हिन्दी साहित्य में हुये हैं, परन्तु हमारा तात्पर्य सं० १७५६ वि० में उत्पन्न महाराज सावंतसिंहजी से है। पारिवारिक कलह से विरक्त होकर इन्होंने घर छोड़ कर वृन्दावन में निवास किया। इनकी लिखी हुई ७३ छोटी बड़ी पुस्तकें हैं परन्तु उनमें कुछ के आकार बहुत छोटे हैं और एक पुस्तक के विचार और भाव प्रायः दूसरी में दोहराये गये हैं। साहित्य की अपेक्षा भक्ति ही इनका चरम लक्ष्य था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ये गौण ब्राह्मण बालकृष्ण के पुत्र थे। इन्होंने सं० १८७५ वि० में 'हम्मीर रासो' नामक एक प्रबन्ध काव्य की रचना की। काव्यात्मकता के पीछे चलने के कारण इसकी कथा कहीं-कहीं ऐतिहासिक इतिवृत्त से दूर हो गई है। वैसे इनकी रचना में ओज पर्याप्त मात्रा में है।

जोधराज

इनका जन्म सं० १७६५ वि० में हुआ था। राधावल्लभीय गोस्वामी हितरूप जी के शिष्य थे। कहा जाता है कि इन्होंने एक लाख पद बनाए थे परन्तु उनमें बीस हजार के लगभग ही पद्य मिलते हैं। परिमाण में इतनी अधिक रचना होने पर भी इनकी रचना शिथिल नहीं हो सकी।

हित वृन्दावनदास

इनका जन्म सं० १७७० माना गया। इनके जीवन वृतान्त के विषय में कुछ अधिक ज्ञात नहीं है। इनकी प्रसिद्धि नीति की कुण्डलियों के कारण है। सरल स्वाभाविक भाषा में जीवन के अनुभूति तथ्यों की जो विशद व्यंजना इन्होंने की है वह और कवियों में कम मिलती है। जीवन के दिन प्रतिदिन के लोक-व्यवहार में इनकी कुण्डलियाँ पथ-प्रदर्शिका हैं।

गिरिधर कविराज

सं० १८०० वि० में राजा अकबर अली खाँ के आश्रय में इन्होंने श्री हर्षकृत 'नैषध काव्य' का हिन्दी में अनुवाद किया। यही ग्रन्थ इनकी कीर्ति का आधार है। 'कृष्ण चन्द्रिका' 'छन्दाटवी' तथा 'रस नायिका भेद' आदि कुछ अन्य ग्रन्थों की रचना करने वाले गुमान-मिश्र हैं। ये बुन्देल-खण्ड में महोबा नामक गाँव के रहने वाले थे।

गुमान मिश्र

ये मथुरा के चौबे थे और भरतपुर के महाराज सुजानसिंह उपनाम सूरजमल के दरबार में रहते थे। सूरजमल में सूदन को एक सच्चा वीर चरित्र-नायक मिला और इन्होंने उसका वीरतापूर्ण चरित्र लेकर 'सुजान चरित्र' नामक काव्य की रचना की। 'सुजान चरित्र' में सं० १८०२ से लेकर १८१०

सूदन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तक की घटनाओं का वर्णन है। इस प्रकार इस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता अक्षुण्ण तथा निर्विवाद है। कवि ने प्रायः लम्बी-लम्बी सूचियाँ तथा निरर्थक शब्दावली एवं देश-देशान्तरों की भाषा का प्रयोग कर अपने व्यापक ज्ञान का प्रदर्शन किया है। इन दोषों के होते हुए भी काव्य में ओज की कमी नहीं है। यदि सूदन कुछ संयत रहते तो हिन्दी के वीर गाथाकारों में उनका स्थान और भी ऊँचा होता।

बोधा ये राजापुर (जि० बाँदा) के रहने वाले थे। इनका जन्म १८०४ वि० में हुआ था। इनकी लिखी हुई दो पुस्तकें मिलती हैं:—

(१) विरह-वारीश और (२) इश्कनामा।

कहा जाता है कि पन्ना दरबार में ये सुभान नाम की एक वेश्या पर अनुरक्त हो गए। फलस्वरूप पन्ना नरेश ने इन्हें ६ महीने के लिए देश निर्वासन का दंड दे दिया। इन्होंने वे ६ महीने बड़े कष्ट से बिताए। सुभान-विरह से व्यथित होकर इन्होंने 'विरह-वारीश' नामक पुस्तक लिखी। 'विरह-वारीश' में माधवानल काम-कंदला की वियोग भरी कथा है। 'इश्कनामा' में शृंगार रस के छन्द हैं। बोधा प्रेम की अनुभूति से परिचित थे और उसी के गीत मार्मिक व्यंजना के सहारे आजीवन गाते रहे।

ठाकुर (असनी वाले प्रथम) इन्होंने सं० १७०० के लगभग प्रवाह मयी स्वच्छ भाषा में शृङ्गारिक छन्दों की रचना की।

ठाकुर (असनी वाले द्वितीय) इन्होंने सं० १८६१ वि० में बिहारी सतसई की टीका लिखी और उसके अतिरिक्त कुछ स्फुट शृङ्गारिक छन्द भी लिखे।

ठाकुर ये हिन्दी के सुप्रसिद्ध ठाकुर नामक कवि थे। इनका जन्म सं० १८२३ वि० में हुआ था। बिजावर के राजा ने एक गाँव (बुन्देलखंडी) देकर इनका सम्मान किया था। अन्य रीतिकालीन कवियों की भाँति इन्होंने बहुत से दरबारों में प्रवेश किया। दरबार में कवि का क्या स्थान होता है, यह इन्होंने एक छन्द में बतलाया है:—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सेवक सिपाही हम उन राजपूतन के,
दान जुद्ध जुरिबे में नेक जे न मुर के।
नीति देनवारे हैं महि के महिपालन को,
हिये के बिसुद्ध हैं, सनेही सांचे उर के॥
ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के।
चोजिन के चोजी महा, चोजिन के महाराज,
हम कविराज हैं, पै चाकर चतुर के॥

इनकी कवितायें स्फुट छन्दों के रूप में ही मिली हैं। वैसे ये न तो व्यर्थ के शब्दाडम्बर में पड़ते थे और न स्वाभाविकता के विरुद्ध ऊँची उड़ान भरते थे। लोकोक्तियों का प्रयोग ठाकुर में विशेष रूप से मिलता है।

चन्द्रशेखर

इनका जन्म १८५५ वि० में जिला फतेहपुर में हुआ। पहले ये दरभंगा, फिर जोधपुर और अन्त में पटियाला के राज दरबार के आश्रय में रहे। इन्होंने निम्नलिखित ग्रंथों की रचना की:—

(१) हम्मीरहठ (२) विवेक-विलास (३) रसिकविनोद (४) माधवी बसन्त (५) गुह पंचाशिका (६) नखशिख (७) हरिभक्ति-विलास (८) वृन्दावन-शतक (९) ताजक ज्योतिष।

इनके ये ग्रन्थ वीर और शृङ्गार रस के हैं, यद्यपि इन्हें सफलता इन दोनों रसों में मिली तथापि इनकी विशेष प्रसिद्धि 'हम्मीरहठ' के कारण ही हुई। 'हम्मीरहठ' में वीर रस के स्थायी भाव उत्साह की जैसी विशद व्याख्या हुई है वैसी ही प्रवाहमयी और ओजमयी भाषा का प्रयोग किया गया है। भाव और भाषा के इतने सफल मिश्रण में हिन्दी के कम कवि सफल हुए हैं। इन्होंने न तो व्यर्थ की शब्दावली का प्रयोग किया और न वर्णनों को अनावश्यक विस्तार ही दिया। अपनी इस प्रौढ़ रचना के कारण चन्द्रशेखर की कीर्ति अक्षय है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाबा दीनदयाल गिरि

इनका जन्म काशी में सं० १८५६ में हुआ था। ये विशेषतः गायघाट वाले मठ में रहा करते थे। गोसाईं इनकी पारिवारिक उपाधि थी। इनकी अन्योक्तियाँ हिन्दी साहित्य में अद्वितीय हैं। सरल, मनोरंजक, रुचिकर और गम्भीर शैली में नित्यप्रति के जीवन में घटित होने वाली आदर्श-मूलक सिद्धान्तों की इन्होंने जो व्याख्या की है वह अत्यन्त मर्म-स्पर्शिनी है। कहीं-कहीं ये श्लेष और यमक का भी सहारा लेते हैं परन्तु अपनी रचनाओं में इन्होंने चमत्कार प्रवृत्ति का प्रवेश नहीं होने दिया। इनकी लिखी हुई निम्न पुस्तकों का पता मिलता है :—

(१) अन्योक्ति-कल्पद्रुम (२) अनुराग-बाग (३) वैराग्य-दिनेश (३) विश्वनाथ-नौरत्न (५) दृष्टान्त-तरंगिणी।

इनकी रचनाओं में नैतिक उपदेशों के अतिरिक्त कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन तथा शिव की स्तुति भी है। परन्तु इनकी ये रचनाएँ प्रसिद्धि प्राप्त न कर सकीं।

गिरधरदास

ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता थे। इनका जन्म सं० १८६० वि० और मृत्यु सं० १९१७ वि० में हुई। कहा जाता है इन्होंने ४० ग्रन्थों की रचना की है परन्तु इनमें हमें कुछ रचनायें नहीं मिलतीं। प्राप्त रचनाओं की सूची निम्नलिखित है :—

(१) जरासन्धवध महाकाव्य (२) भारतीभूषण (३) भाषा-व्याकरण (४) रसरत्नाकर (५) ग्रीष्मवर्णन (६) मत्स्यकथामृत (७) वाराहकथामृत (८) बलरामकथामृत (९) कल्कि-कथामृत (१०) बुद्धकथामृत (११) नहुष नाटक (१२) एकादशी माहात्म्य (१३) नृसिंहकथामृत (१४) वामनकथामृत (१५) परशुरामकथामृत (१६) रामकथामृत (१७) छन्दार्णव (१८) वाल्मीकि रामायण (अनुवाद) (१९) अद्भुत रामायण (२०) लक्ष्मी-नखशिख (२१) गया-यात्रा (२२) कीर्तन (२३)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिवस्त्रोत्र (२४) गोपालस्त्रोत्र (२५) भगवत्स्त्रोत्र (२६) राधास्त्रोत्र (२७) रामाष्टक (२८) कालियकालाष्टक।

इनकी रचनाओं में कहीं पर सरस स्वाभाविकता और कहीं अलंकारों से लदी हुई कृत्रिमता मिलती है। ये केवल २७ वर्ष की आयु ही पा सके अन्यथा इनके द्वारा भारती का श्रृङ्गार और भी हुआ होता।

इन कवियों के अतिरिक्त बनवारी, छत्रसिंह, वैताल, श्रीधर, हसराज, किशोरीशरण, अलवेली अलि, भगवत रसिक, गोकुलनाथ, मणिदेव, रामचन्द्र, मधुसूदन, कृष्णदास, खुमान, ललकदास, पजनेस, द्विजदेव आदि कवि भी इस युग में हुए।

रीति-काल का सिंहावलोकन

रीति-काल की कविता के वर्ण्य विषय को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वह साहित्य जिसे रीतिकाल कहा जा सकता है और द्वितीय वह साहित्य जिसे रीति मुक्तक काव्य कहा जाता है। इन दोनों प्रकारों के साहित्य में कवियों ने श्रृङ्गारी भावना को प्रधानता दी। पूरा रीतिकालीन साहित्य नायक-नायिकाओं के प्रेम की कथा है। रीतिकाल के साहित्य में नायिका भेद बहुत खुल कर लिखा गया है। नायिकाओं के जितने भेदोपभेद इस समय किये गये हैं उतने भेद शायद ही विश्व के किसी साहित्य में हुए हों। पूरे साहित्य में नायक-नायिका प्रेमोन्मत्त दृष्टिगत होते हैं। रीतिकालीन साहित्यकारों ने अपने साहित्य में राधा और कृष्ण की बड़ी छीछालेदर कर डाली है। राधा और कृष्ण इनके साहित्य में कामुक निर्लज्ज नायिका और नायक के रूप में उपलब्ध होते हैं। रीतिकालीन काव्य ने जीवन की क्षणभंगुरता को सौंदर्य-प्रेरणा के आगे उभारने नहीं दिया। वहाँ न शैशव है न वृद्धावस्था। वयः संधि से लेकर प्रौढ़ावस्था तक सौन्दर्य और आनन्द (वासना पूर्ण) अभिव्यक्ति की इस साहित्य में हुई है। सांसारिक वैभवों के बीच की कामिनी की कमनीयता ही उनके नयनों का अमृत है। वहाँ गुलाब के पुष्पों में काँटे

वर्ण्य विषय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं हैं, जीवन अपने समस्त पार्थिव सौन्दर्य को नारी के साहचर्य में केन्द्रित किये हुए है। पूरा साहित्य ऐन्द्रियिक मूलक शृङ्गार से ओत-प्रोत है।

रस

रीति-काल में निम्नलिखित रसों की प्रधानता रही :—शृङ्गार, हास्य। इसी समय भूषण ने वीर रस की रचना भी की। इनके काव्य में रौद्र तथा वीभत्स रसों की भी अभिव्यंजना हुई है।

छन्द

रीतिकाव्य में प्रधानतः तीन प्रकार के छन्दों का प्रयोग होता था :—

१. कवित्त
२. सवैया
३. दोहा

ये तीनों छन्द रीतिकाल से पूर्व भी हिन्दी में प्रयुक्त हो चुके थे। इस समय के नीतिकार कवियों ने दोहा को अपने काव्य का माध्यम बनाया। सामान्यतया सवैया इस समय का सबसे अधिक प्रिय छन्द था।

अलंकार

रीतिकाव्य में अलंकारों का बड़ा महत्व है। इस समय अलंकारों पर ग्रन्थ के बाद ग्रन्थ लिखे गये। अलंकारों के पीछे कविगण हाथ धोकर पड़ गये। एक-एक अलंकार के सैकड़ों उदाहरण लिए जाने का फैशन-सा चल पड़ा। इस समय उपमा, श्लेष, अपह्नुति, प्रतीप, आदि सर्वप्रिय अलंकार थे।

इस समय की काव्य भाषा ब्रजभाषा थी।

विशेष

रीति-काल का समस्त साहित्य देखने के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :—

१. इस काल में साहित्यशास्त्र की विशेष विवेचना हुई और रसराज 'शृङ्गार' रस की समस्त अनुभूतियों के सरस चित्रण प्रस्तुत किये गये। इस क्षेत्र में आचार्यों और कवियों को संस्कृत-साहित्य के रीति-ग्रन्थों से बड़ी सहायता मिली। रसवाद, अलंकारवाद और वक्रोक्तिवाद का आश्रय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लेकर हिन्दी कवियों ने जीवन की अनेक शृङ्गारपूर्ण भावनायें उपस्थित कीं। समस्त कलाकाल की रचनाओं को मिलाकर देखने से ज्ञात होगा कि संस्कृत के काव्यशास्त्र का हिन्दी में रूपान्तर हो गया है। भक्तिकाल में भक्ति-विषयक संस्कृत रचनाओं का समस्त भाव-विन्यास हिन्दी के माध्यम से प्राप्त हो ही गया था, शेष जो रह गया था, वह कलाकाल के कवियों ने अपनी सरस अनुभूतियों से जोड़ कर हिन्दी साहित्य में उपस्थित किया। संस्कृत साहित्य का जो सम्बन्ध हिन्दी साहित्य से है उसे देखते हुए संस्कृत के काव्य-साहित्य का अनुवाद हिन्दी साहित्य में होना आवश्यक ही था।

२. इस काल में कवित्त और सवैया शैली को विशेष प्रश्रय मिला। साथ ही साथ दोहा शैली में भी रचनायें हुईं। प्रथम शैली में स्फुट-काव्य लिखा गया और द्वितीय शैली में सतसई साहित्य का निर्माण हुआ। इन दोनों शैलियों के अतिरिक्त दोहा-चौपाई की प्रबन्धात्मक शैली भी देखने को मिलती है। इसमें ऐतिहासिक इतिवृत्त भी अधिक लिखे गए और चारणकालीन साहित्य को अधिक प्रगति मिली।

३. इस काल में यद्यपि साहित्य का केन्द्र राजाओं के दरबारों में हो चला था और नागरिक जीवन का चित्रण प्रमुखता प्राप्त करने लगा था तथापि कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति आँखें नहीं मूँद लीं। ऋतु वर्णन में प्रकृति में की विविधता कवियों की लेखनी से उतर कर इन्द्रधनुषी बन रही थी। प्रकृति में यद्यपि उद्दीपन की सामग्री अधिक थी तथापि इसमें जीवन की नवीनता और सजगता थी। ऋतु वर्णन पढ़ कर पाठकों के हृदय में संसार के विषाद को दूर करने की क्षमता उत्पन्न होती थी।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आठवाँ प्रकरण

आधुनिक काल की अनुक्रमणिका

रीतिकाल में काव्य-सरिता का जो अबाध प्रवाह केशवदास, चिन्तामणि तथा मतिराम इत्यादि ने प्रवाहित किया था वह पद्माकर के समय तक क्षीण तथा मन्द पड़ चुका था। आचार्यत्व के फेर में पड़ कर रीतिकाल के प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने जो कुछ लिखा वह पिष्ट-पेषण मात्र था। उनकी रचना से साहित्य की मात्रा में वृद्धि भले ही हुई परन्तु साहित्य विभिन्न प्रकार का सृजित न हुआ। नायिकाभेद और उनके सौन्दर्य ने कवियों की लौह लेखनी की गति को धीमी कर दिया। नायिकाओं के नखशिख-सौन्दर्य वर्णन में वे अपने जीवन, देश, समाज और आवश्यकताओं को भूल गये। उनकी आँखें कोमलांगियों के सौन्दर्य से चकाचौंध हो उठीं। लौकिक तथा विनाशशील वस्तुओं में फँस कर कवि-समुदाय कविता का महान् तथा अलौकिक गुण भूल ही गया। जीवन के सत्य से सम्बन्धित उच्च भावनायें तिरोभूत हो गईं। कवि अपने सीमित प्रदेश में ही रह गए। परन्तु धीरे-धीरे परिस्थितियों में परिवर्तन समुपस्थित हुआ। देश की दशा वैसी न रही जैसी पहिले थी। आधुनिक काल के प्रारम्भ तक देश की दशा में महान् तथा गम्भीर परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। अंग्रेजों के राज्य के साथ ही साथ उनकी सभ्यता भी भारत पर छा गई। टेक्स, अकाल तथा राजकीय अत्याचारों ने उन्हें सुषुप्ति से जाग्रतावस्था में ला ढकेला। पेट की आग ने शृङ्गार की कोमल भावनाओं का हवन कर डाला। दासता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की लौह हथकड़ियों तथा बेड़ियों ने हृदय तथा मस्तिष्क की शान्ति को समूल नष्ट कर दिया। राजकीय प्रवंचनाओं का अनुभव भारतवासी हृदय से करने लगे। मानव सुलभ प्रतीकार की भावनाओं ने एकाग्र-चित्तों को व्यग्र कर दिया। हृदय के भाव लेखनी के सहारे कोरे कागज पर अभिव्यंजित होने लगे। शृङ्गार स्वप्नों ने जाग्रति के गीतों को जन्म दिया। जाग्रति के गीतों ने नवराष्ट्र-निर्माण की भावनाओं को विकसित किया।

इस प्रकार आधुनिक काल में विचार-धाराओं में बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है। यही परिवर्तन साहित्य में भी प्रतिबिम्बित हुआ।

खड़ी बोली का रोचक विकास इस युग की बड़ी विशेषता है। खड़ी बोली का जन्मस्थान मेरठ था। यह भाषा सर्वप्रथम वहीं बोली जाती थी। मेरठ और उसके पार्श्ववर्ती स्थानों को छोड़ कर अन्यत्र यह अपरिचित थी। परन्तु यवनों के आगमन के साथ ही यह भाषा दिल्ली में भी प्रचलित हो गई। अरब और फारस से आये हुए नये सिपाहियों को यहाँ के निवासियों से वार्तालाप करने में बड़ी कठिनाई होती थी। इनमें पारस्परिक भावों के आदान-प्रदान का एक माध्यम नहीं था, यही सबसे बड़ी कठिनाई थी। फलतः मुसलमानों ने हिन्दवी के कुछ शब्दों को सीख कर और अपनी भाषा के शब्दों में मिला कर एक मिश्रित भाषा को जन्म दिया। सर्वप्रथम यह केवल बाजार में बोली जाने वाली भाषा थी परन्तु समय के प्रवाह के साथ इसका महत्व और भी बढ़ता गया और धीरे-धीरे यह जन-साधारण के व्यवहार की भाषा बन गई।

कुछ समय के पश्चात् इसी खड़ी बोली के तीन स्वरूप हो गये (१) हिन्दी (२) उर्दू (३) हिन्दुस्तानी।

अकबर के दरबारी कवियों में नीतिकार गंग का महत्वपूर्ण स्थान है। सर्वप्रथम गंग ने ही खड़ी बोली में "चन्द छन्द बरनन की महिमा" लिखा था। इसके पूर्व खड़ी बोली गद्य में कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। सन् १६८० में जटमल ने 'गोरा बादल की कथा' खड़ी बोली में लिखी थी। मुन्शी सदासुख ने हिन्दी में सुखसागर की रचना की। इसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाद इन्शाउल्लाखाँ की रचना में शुद्ध तद्भव शब्दों का प्रयोग मिलता है। लल्लूलाल के प्रेमसागर में सदल मिश्र के नासिके तोपाख्यान की भाषा अधिक पुष्ट तथा सुन्दर है। डा० गिलक्राइस्ट के प्रयत्नों से हिन्दी का रूप कुछ अधिक विकसित हुआ।

गद्य-उपन्यास

आदि काल से मानव मनोरंजन के लिए कथा-साहित्य में रुचि रखता आ रहा है। मनुष्य की इस कल्याणकारी रुचि ने साहित्य-सृजन में बड़ी सहायता प्रदान की है। कथा-साहित्य का आदि स्वरूप हमें आज भी ऋग्वेद, उपनिषद्, जैन तथा बौद्ध साहित्य के ग्रंथों में देखने को मिलता है। हितोपदेश, सिंहासन बत्तीसी इत्यादि इसी कथा साहित्य के विकसित रूप हैं। हिन्दी-साहित्य के प्रारम्भिक युग में काव्य का आधिक्य होने के कारण कथा-साहित्य की ओर कविगण अथवा साहित्यिक अधिक आकृष्ट नहीं हुए।

हिन्दी गद्य-साहित्य के जन्म का इतिहास ही कथा-साहित्य का इतिहास है। कथा-साहित्य रूपी नवजात शिशु के दर्शन हमें इंशाउल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' में होते हैं। तत्पश्चात् सन् १८०३—१८०६ में लल्लू लालजी ने 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'शकुन्तला' तथा 'प्रेमसागर' की रचना की और सदल मिश्र ने सन् १८०३ में 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की। सन् १८२३ के लगभग जटमल ने 'गोरा बादल की कथा' तथा राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने 'राजा भोज का सपना' नामक कथाएँ लिखीं। परन्तु इनमें उपन्यास कला निर्जीव-सी है और ये केवल मनोरंजन के हेतु लिखी गई थीं।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से विविध आन्दोलनों का जन्म हुआ। इसी समय गद्य साहित्य की भी आशातीत उन्नति हुई।

कुछ समय तक हिन्दी में उर्दू तथा संस्कृत के उपन्यासों का अधिक चलन रहा। जनता में शुक बहत्तरी, सारंगा सदावृक्ष, किस्सा तोता मैना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किस्सा साढ़े तीन यार तथा चहार दर्वेश आदि कथाओं का मान रहा परन्तु शीघ्र ही भारतेन्दु के जन्म के बाद हिन्दी में मौलिक उपन्यासों की रचना आरम्भ हुई। भारतेन्दु बाबू ने 'पूर्व प्रकाश और चन्द्रप्रभा' नामक हिन्दी का सर्व प्रथम सामाजिक उपन्यास लिखा था। किशोरीलाल गोस्वामी ने भारतेन्दु बाबू के पश्चात् 'त्रिवेणी', 'स्वर्गीय कुसुम', 'हृदय हारिणी' तथा 'लवंलता' आदि उपन्यासों की रचना की। गोस्वामीजी का उपन्यास-लेखकों में वही स्थान है जो नाटककारों में भारतेन्दु बाबू का है। इसके पश्चात् सन् १८८८ ई० में राधाचरण गोस्वामी का 'विधवा-विपत्ति', हनुमन्त सिंह कृत 'चन्द्रकला' तथा देवीप्रसाद खत्री कृत 'जया' उपन्यास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सन् १८९० ई० में राधाकृष्णदास ने 'निःसहाय हिन्दू' उपन्यास लिखा जिनमें मुसलमानों की धर्मान्धता और हिन्दुओं की हीनावस्था का चित्रण है।

उपन्यास-कला में विशेष सहायता प्रदान करने वालों में बालकृष्ण भट्ट कृत 'नूतन-ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान का एक सुजान', रत्नचन्द्र कृत 'नूतनचरित्र' किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'सुख शर्वरी', श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षा गुरु', मेहता लज़्जाराम कृत 'स्वतन्त्रता' और 'परतन्त्र लक्ष्मी', गोपालराम गहमरी कृत 'बड़ा भाई', कार्तिक प्रसाद खत्री कृत दीनानाथ' विशेष उल्लेखनीय हैं।

सन् १८९१ ई० में देवकीनन्दन खत्री लिखित 'चन्द्रकान्ता' तथा 'चन्द्रकान्ता संतति' का प्रकाशन हुआ। 'चन्द्रकान्ता' और 'सन्तति' उर्दू के बोस्तान-इ-ख्याल और 'दस्तान-इ-अमीर हाजा' के रूपान्तर से प्रतीत होते हैं। परन्तु इनमें वासना की वह दुर्गन्ध नहीं है जिससे उर्दू के उपन्यास ओत-प्रोत हैं। देवकीनन्दन खत्री की देखा-देखी हिन्दी में अनेकानेक तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों की रचना की गई।

सन् १८९६ ई० के लगभग हिन्दी में अनुवादित उपन्यासों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाहुल्य दिखाई देता है। रेनाल्ड्स, कोनन डायल आदि सस्ते उपन्यासों का अनुवाद पर्याप्त मात्रा में होने लगा।

हिन्दी के द्वितीय तथा तृतीय उत्थान में उपन्यास-साहित्य ही सबसे अधिक समृद्ध हुआ। प्रेमचन्दजी ने नूतन विकास में जितनी सहायता प्रदान की उसके लिए साहित्य उनका चिर ऋणी है। प्रेमचन्द के अतिरिक्त सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, पं० विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जैनेन्द्र कुमार, प्रतापनारायण श्रीवास्तव जैसे सामाजिक उपन्यासकार तथा वृन्दावनलाल वर्मा जैसे ऐतिहासिक उपन्यासकारों की लेखनी से साहित्य का कोष सुसज्जित हुआ।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि से कथा-वस्तु के स्वरूप और लक्ष्य के अनुसार हिन्दी के अपने वर्तमान उपन्यासों में ये भेद हो सकते हैं :—

(१) घटना-वैचित्र्य-प्रधान अर्थात् केवल कुतूहल (जैसे जासूसी और वैज्ञानिक आविष्कारों का चमत्कार दिखाने वाले)। इनमें साहित्य का गुण अत्यन्त अल्प होता है—केवल इतना ही होता है कि कुतूहल और आश्चर्य जाग्रत करते रहें।

(२) मनुष्य के अनेक पारस्परिक सम्बन्धों की मार्मिकता पर प्रधान लक्ष्य रखने वाले। जैसे प्रेमचन्द का 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गोदान' विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' का 'माँ', 'भिखारिणी', प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'बिदा', 'विकास' तथा चतुरसेन शास्त्री का 'हृदय की प्यास'।

(३) समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों की परस्पर स्थिति और उनके संस्कार चित्रित करने वाले। जैसे प्रेमचन्द का 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', प्रसाद जी का 'कंकाल', 'तितली'।

(४) अन्तर्वृत्ति अथवा शील-वैचित्र्य और उसका विकास क्रम अंकित करने वाले। जैसे प्रेमचन्द का 'गबन', जैनेन्द्र कुमार का 'तपोभूमि' तथा 'सुनीता'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५) भिन्न-भिन्न जातियों और मतानुयायियों के बीच मनुष्यता के व्यापक संबंध पर जोर देने वाले। जैसे राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का 'राम रहीम'।

(६) समाज के पाखंड पूर्ण कुत्सित पक्षों का उद्घाटन और चित्रण करने वाले जैसे पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'दिल्ली का दलाल', 'सरकार तुम्हारी आँखों में' तथा 'बुधुआ की बेटी'।

(७) बाह्य और आभ्यंतरिक प्रकृति की रमणीयता का समन्वित रूप में चित्रण करने वाले सुन्दर और अलंकृत पद-विन्यास-युक्त वाले। जैसे स्वर्गीय श्री चंडीप्रसाद हृदयेश का 'मंगल प्रभात'।

जीवन-चरित्र साहित्य

जीवन-चरित्रों से हिन्दी साहित्य का इतिहास चिर परिचित है। धर्म प्रधान इस देश में राम और कृष्ण के जीवन-चरित्र का लेखन कार्य बहुत पहले से होता आ रहा है। भक्तों के सरल हृदय से अपने आराध्य के गुणगान फूट पड़ना कौन आश्चर्य की बात है? वीरगाथा काल में वीरों के चरित्र गाए गए थे। परन्तु वह गद्य में न होकर पद्य में लिखे गए थे। नाभादास कृत 'भक्तमाल' और बाबा वेणीमाधवदास कृत 'गोसाईं चरित्र' के सदृश जीवन-चरित्रों का भी इस साहित्य में अभाव नहीं है।

रीवाँ के महाराज रघुराज सिंह जू देव ने सन् १८५७ ई० में 'भक्त-माल' की शैली पर रामरसिकावली ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग चार खंडों में विभाजित है। सन् १८६३ ई० में युगलदास कृत 'बघेल वंशागम निर्देश', सन् १८७७ ई० में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' और सन् १८८६ ई० में राधाचरण गोस्वामी कृत 'नव भक्तमाल' नामक ग्रन्थों की रचना साहित्यिक शैली के आधार पर हुई।

सन् १८८२ ई० से हिन्दी में आधुनिक रीति से जीवनियों की रचना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रारम्भ हुई। भारतेन्दुजी ने चरितावली में छोटे-छोटे जीवन-चरित्र हिन्दी जनता के सामने आदर्श स्वरूप रक्खे।

भारतेन्दु के पश्चात् कार्तिक प्रसाद खत्री ने 'मीराबाई का जीवन चरित' सन् १८९३ ई०, 'महाराणा छत्रपति शिवाजी का जीवन चरित' सन् १८९४ ई०, 'अहल्याबाई का जीवन चरित' सन् १८९७ ई०, राधाकृष्ण दास ने 'श्री नागरीदासजी का जीवन चरित' सन् १८९४ ई०, 'कविवर बिहारीलाल' सन् १८९५ ई०, 'सूरदास' सन् १९०० ई०, गोकुलनाथ शर्मा ने 'श्रीदेवीसहाय चरित' सन् १८९७ ई०, जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (सन् १८६६—१९३२ ई०) ने 'पोप कवि का जीवन चरित' सन् १८९७ ई०; रेवेरेंड एडविन ग्रीव्स ने 'गुसांई तुलसीदास का जीवन चरित' सन् १८९९ ई०; मुंशी देवीप्रसाद मुंशिफ ने 'पृथ्वीराज कछवाहा' 'पूरणमल', 'राजाभीम', 'रतनसिंह', 'हिंदूपति महाराणा उदयसिंहजी' सन् १८९३ ई० जैसे प्रमुख साहित्यिकों ने जीवन चरित साहित्य के रिक्त भण्डार की पूर्ति की।

इसके अनन्तर राजा शिवप्रसाद कृत 'वामा मनोरंजन', काशीनाथ खत्री कृत 'भारतवर्ष के अनेक ज्ञानियों का जीवन चरित' सन् १८७९ ई०—आदि का प्रकाशन हुआ।

आचार्य शुक्ल जी के मत से साहित्यिक मूल्य रखनेवाले महत्वपूर्ण चार जीवन चरित निकले—पं० माधव प्रसाद मिश्र की 'विशुद्ध चरितावली तथा बाबू शिवनन्दन सहाय लिखित 'बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित', 'गोस्वामी तुलसीदासजी का जीवन चरित' और 'चैतन्य महाप्रभु का जीवन चरित'।

हिन्दी के इस तृतीय उत्थान में जीवन चरित साहित्य के नवीन शैली का आधार लेकर साहित्यिकों ने मौलिक रचनाएँ लिखी हैं। नवीन शैली के प्रतिपादक महाकवि निरालाजी हैं। उनके 'कुल्ली भाट, और 'बिल्लेसुर बकरिहा' न केवल मौलिक रचनाएँ हैं, वरन् साहित्य के लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गर्व की कृतियाँ हैं। इतनी रोचक तथा तथ्यपूर्ण रचनाएँ इसके पूर्व नहीं दिखाई देतीं।

आख्यायिका का साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। मनोविज्ञान की दृष्टि से कहानी मानव का सर्वप्रिय साहित्य है। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि हमारे साहित्य में कहानी का प्रारम्भ बहुत देर में हुआ। सूफी कवियों के उदय के पश्चात् कहानी साहित्य की वृद्धि प्रारम्भ हुई। सूफी कवियों की कहानी यद्यपि पद्य में होती थी तथापि उसमें ऐतिहासिकता तथा कल्पना का सुन्दर समन्वय रहता था। सम्भवतः जायसी हमारे साहित्य के काव्य में प्रथम मौलिक कहानीकार थे। जायसी के पश्चात् उनके अनुगामी अन्य सूफी कवियों ने भी प्रेम-कहानी की रचना की और कहानी साहित्य की मन्द धारा को गति देकर साहित्य को लाभान्वित किया। गद्य में कहानी लिखने वालों में सर्व-प्रथम हमें इंशा अल्लाखाँ का नाम लेना पड़ता है। 'रानी केतकी की कहानी' गद्य में लिखित हमारे साहित्य की प्रथम मौलिक कहानी है।

आख्यायिका

भारतेन्दु-युग हिन्दी साहित्य की उन्नति का युग था। उस समय साहित्य की बहुमुखी प्रतिभा विकसित और प्रकाशित हुई। साहित्य के प्रत्येक रिक्त अंग की पूर्ति भी इसी युग में की गई। इसी समय लाला श्री, निवासदास ने 'परीक्षा गुरु', बाबू राधाकृष्णदास ने 'निःसहाय हिन्दू, और पं० बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' नामक उपन्यासों की रचना की। इन रचनाओं ने कहानी साहित्य को नवीन स्फूर्ति प्रदान की।

इसके पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की 'राजा भोज का सपना' जैसी कथात्मक रचनाएँ मिलती अवश्य हैं परन्तु उनमें कहानी के विशेष तत्व नहीं हैं। उसे हम 'अनुभव का वर्णन' अवश्य कह सकते हैं।

सरस्वती के प्रथम वर्ष (सं० १९५७) में पं० किशोरी लाल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी का प्रकाशन हुआ। यह कहानी अपने ढंग की प्रथम कहानी थी। इसमें कहानी के गुण और तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। सरस्वती में कहानियों का निरन्तर प्रकाशन होता रहा। परन्तु वे सभी हिन्दी की मौलिक कहानियाँ नहीं थीं, उनमें अनुवाद का आधिक्य था। ये कहानियाँ बंगला साहित्य से अनुवादित होती थीं। बंगाली भाषा से अनुवाद करने वालों में गिरजाकुमार घोष तथा 'बंग महिला' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अनुवादों ने हमारे साहित्य में कहानी के नवीन आदर्शों की स्थापना की और साहित्यिक जनता का ध्यान हिन्दी के इस नवीन साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ। 'बंग महिला' ने हिन्दी में कुछ मौलिक कहानियों की रचना की जिनमें से 'दुलाई वाली' जो सं० १९६४ की सरस्वती में प्रकाशित हुई थी उल्लेखनीय है।

सं० १९६८ 'इन्दु' पत्रिका में बाबू जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' नामक कहानी प्रकाशित हुई। उसके पश्चात् प्रसाद जी ने कहानी साहित्य को अनेक रत्न दिये जो न केवल उसके लेखक के लिये गौरव की वस्तु है वरन् साहित्य की अमर निधि है। तृतीय उत्थान में प्रसाद जी की 'आकाशदीप', 'बिसाती' 'प्रतिध्वनि', 'स्वर्ग के खण्डहर', 'चित्र मन्दिर', 'पुरस्कार' कहानियाँ प्रकाशित हुईं जो भावुकता और कल्पना की साक्षात् मूर्ति सी प्रतीत होती हैं।

संवत् १९७५ के लगभग प्रेमचन्द जी कहानी-लेखन की अद्वितीय कला लेकर साहित्य के प्रांगण में अवतरित हुये। इनकी मौलिक कहानियों के दर्शन सर्वप्रथम हमें 'लक्ष्मी' और 'सरस्वती' पत्रिकाओं में होते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर प्रकाश डालती हुई इनकी कहानियों में यथार्थ का जो मजबूत आधार है वह अन्य लेखकों की कहानियों में दुर्लभ है। 'प्रसाद' और 'निराला' की कहानियों में भावुकता और कल्पना का प्रखर रंग है परन्तु प्रेमचन्द ने कवित्वमय जगत की ओर से दृष्टि हटा कर दैनिक जीवन के अभावों की ओर लगाई। प्रेमचन्द जी की कहानियों में हृदय तथा मस्तिष्क को प्रभावित करने की अद्वितीय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शक्ति है। चरित्र-निर्माण का जो सिद्धहस्त कौशल प्रेमचन्द्र में था वह आज के कहानियों में उपलब्ध ही नहीं होता। त्याग और ओजपूर्ण 'रानी सारंधा' का चरित्र साहित्य के लिये अप्रतिम है। प्रेम के आकर्षण की जो अभूतपूर्व व्यंजना उनकी छोटी सी कहानी 'कामना तरु' में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में अवध की नवाबी के अन्तिम दिनों की ऐतिहासिक परिस्थिति का सुन्दर चित्रण है। 'ईदगाह' में दीन बालक के हृदय के मनोरथों का सुन्दर तथा स्वाभाविक विश्लेषण है।

प्रेमचन्द की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है चरित्रों का स्वाभाविक चित्रण। किसी भी कहानी को ले लीजिये उसमें पात्रों के चरित्र की स्वाभाविकता ही लक्षित होती है।

प्रेमचन्द की कहानियों में अद्भुत कौशल प्रतिबिम्बित होता है। वास्तव में जो सफलता प्रेमचन्द को कहानी-लेखन में मिली वह उपन्यास की रचना में भी नहीं मिली।

प्रेमचन्द से पूर्व प्रायः सं० १९६८ के लगभग जी० पी० श्रीवास्तव तथा पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' का नाम हिन्दी के कहानीकारों में आता है। परन्तु इनमें उस कला का अभाव है जो प्रेमचन्द के साहित्य में ओत-प्रोत है।

श्री गुलेरी लिखित हिन्दी की अद्वितीय कहानी 'उसने कहा था' सन् १९१५ में सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्य्यादा के भीतर भावुकता का चरम उत्कर्ष निपुणता के साथ संपुटित है। घटना इसकी ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है। पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है।

तृतीय उत्थान के कहानीकारों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं सर्व श्री निराला जी, जैनेन्द्र कुमार, विनोदशंकर व्यास, राय कृष्णदास, ऋषभचरण जैन, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उग्र, अन्नपूर्णानन्द, सुदर्शन, भगवतीचरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्तमान हिन्दी कहानी लेखकों में श्री निराला तथा श्रीयशपाल मिश्र ने विशेष रूप से रचनात्मक कार्य किया। इनकी कहानियों में नवीन गुण दिखाई देते हैं जो हमारे साहित्य के हेतु कल्याणकारी तथा शुभ हैं।

आचार्य शुक्ल जी के मत से हिन्दी में जो कहानियाँ लिखी गई हैं, वे इन निम्नलिखित प्रणालियों पर चल रही हैं:—

(१) सादे ढंग से केवल कुछ अत्यन्त व्यंजक घटनायें और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्र गति से किसी एक गम्भीर संवेदना या मनोभाव में पर्यवसित होने वाली, जिसका बहुत ही अच्छा नमूना है गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था'। पं० भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'निंदिया लागी' और 'पेंसिल स्केच' नामक कहानियाँ भी इसी ढंग की हैं। ऐसी कहानियों में परिस्थिति की मार्मिकता, अपने वर्णन या व्याख्या द्वारा हृदयंगम कराने का प्रयत्न लेखक नहीं करता। उसका अनुभव वह पाठक पर छोड़ देता है।

(२) परिस्थितियों के विशद और मार्मिक—कभी-कभी रमणीय और अलंकृत—वर्णनों और व्याख्याओं के साथ मन्द मधुर गति से चलकर किसी एक मार्मिक परिस्थिति में पर्यवसित होने वाली। उदाहरणार्थ, स्व० चंडीप्रसाद की 'उन्मादिनी', 'शान्ति निकेतन' ऐसी कहानियों में परिस्थिति के अन्तर्गत प्रकृति का चित्रण भी प्रायः रहता है।

(३) उक्त दोनों के बीच की पद्धति ग्रहण करने वाली, जिसमें घटनाओं की व्यंजकता और पाठकों की अनुभूति पर पूरा भरोसा न कर के लेखक भी कुछ मार्मिक व्याख्या करता चलता है। उदाहरणार्थ प्रेमचन्द की कहानियाँ।

(४) घटना और संवाद दोनों में गूढ़ व्यंजना और रमणीय कल्पना के सुन्दर समन्वय के साथ चलने वाली। उदाहरणार्थ, प्रसादजी की कहानियाँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५) किसी तथ्य का प्रतीक खड़ा करने वाली लाक्षणिक कहानी। उदाहरणार्थ, बेचन शर्मा उग्र की 'भुनगा' कहानी।

वस्तु-समष्टि के स्वरूप की दृष्टि से भी बहुत से वर्ग किये जा सकते हैं जिनमें मुख्य ये हैं:—

(१) सामान्यतः जीवन के किसी स्वरूप की मार्मिकता सामने लाने वाली। अधिकतर कहानियाँ इसी वर्ग के अन्तर्गत आयेंगी।

(२) भिन्न-भिन्न वर्गों के संस्कार का स्वरूप सामने रखने वाली। उदाहरणार्थ, 'शतरञ्ज के खिलाड़ी'।

(३) किसी मधुर या मार्मिक प्रसंग की कल्पना के सहारे किसी ऐतिहासिक कला का खंड-चित्र दिखलाने वाली। प्रसाद की 'आकाशदीप' कहानी।

(४) देश की सामाजिक तथा आर्थिक दशा से पीड़ित जनसमुदाय की दुर्दशा सामने लाने वाली। उदाहरणार्थ, भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'निदिया लागी'।

(५) राजनीतिक आन्दोलन में सम्मिलित नवयुवकों के स्वदेश-प्रेम, त्याग, साहस और जीवनोत्सर्ग का चित्र खड़ा करने वाली। उदाहरणार्थ, उग्र की 'उसकी माँ'।

(६) समाज के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के बीच धर्म, समाज-सुधार, व्यापार व्यवसाय, सरकारी काम, नई सभ्यता की ओट में होने वाले पाखंडपूर्ण पापाचार के चटकीले चित्र सामने लाने वाली कहानियाँ। उदाहरणार्थ, उग्र की कहानियाँ।

(७) सभ्यता और संस्कृति की किसी व्यवस्था के विकास का आदिम रूप झलकाने वाली। जैसे राय कृष्णदास की 'अन्तःपुर का आरम्भ'।

(८) अतीत के किसी पौराणिक या ऐतिहासिक कला-खंड के बीच अत्यन्त मार्मिक और रमणीय प्रसंग की व्याख्या करने वाली। जैसे श्री विन्दु ब्रह्मचारी की कहानियाँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निबन्ध साहित्य

निबन्ध-साहित्य का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। यह साहित्य का नवीनतम स्वरूप है।। इसके जन्मदाता भारतेन्दु और उनके प्रतिभावान् सहयोगी थे। भारतेन्दु-युग के पूर्व हिन्दी में निबन्धों का अभाव था। संस्कृत साहित्य में भी इस प्रकार के निबन्ध नहीं लिखे गये थे जैसे हिंदी साहित्य में भारतेन्दु युग, द्विवेदी-युग अथवा आजकल लिखे जा रहे हैं। आधुनिक निबन्ध साहित्य पाश्चात्य शैली से प्रभावित है।

यदि कहा जाय कि परिस्थितियों ने ही निबन्ध-साहित्य को जन्म दिया तो असंगत न होगा। भारतेन्दु और उनके समकालीनों का युग संकट, अनिश्चितता और विशृंखलता का समय था। राजनैतिक अत्याचार और ईश्वरीय प्रकोप ने भारत में असंतोष और जाग्रति का बीज बो दिया। फलतः विचारों की अभिव्यक्ति के हेतु केवल एक माध्यम—निबन्ध ही उपयुक्त साधन ठहराया जा सका।

जिस प्रकार भारतेन्दु बाबू ने हिंदी-साहित्य के सभी उपेक्षित अंगों की पूर्ति करके उसे परिमार्जित किया, उसी प्रकार निबन्ध साहित्य को भी धनी बनाने में उन्होंने कोई प्रयत्न शेष नहीं रक्खा। भारतेन्दु बाबू हिंदी साहित्य के सर्वप्रथम निबन्धकार थे जिन्होंने प्रायः ८० पृष्ठों का लम्बा तथा गम्भीर 'नाटक' निबन्ध लिखा था। इस निबन्ध में उन्होंने नाटक की परिभाषा, तत्व, चरित्र, हिन्दी में नाटकों का अभाव, उसे दूर करने के कुछ उद्योग, संस्कृत नाटक, उनसे हिन्दी नाटकों की तुलना, अँग्रेजी नाटकों की आलोचना आदि विषयों पर गम्भीर विचार प्रकट किये थे।

भारतेन्दुजी के पश्चात् श्री बालकृष्ण भट्ट उल्लेखनीय हैं। भारतेन्दु जी की भावात्मक शैली को अपने निबन्धों के अनुकूल मोड़कर उन्होंने उसे पूर्णता प्रदान की। भट्ट जी ने उत्कृष्ट निबन्धों की रचना के हेतु ही लेखनी उठाई थी। उनका मत था कि "प्रोज (गद्य) हिन्दी का बहुत ही कम और पोच है। सिवा एक प्रेमसागर सी दरिद्र रचना के इसमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ और है ही नहीं, जिसे हम इसके साहित्य के भण्डार में शामिल करें। दूसरे उर्दू इसकी ऐसी एंड़ मारे हुए है कि शुद्ध हिंदी तुलसी, सूर इत्यादि कवियों की पद्य रचना के अतिरिक्त और कहीं मिलती ही नहीं है।"

भट्टजी के इन विचारों से स्पष्ट है कि गद्य को वे कितनी हीन और दरिद्रावस्था में देखते थे। वास्तव में हिंदी गद्य और निबन्ध के स्तर और कोटि को सुधारने के हेतु ही उन्होंने हिन्दी प्रदीप की स्थापना की थी।

भट्टजी भावात्मक निबन्धों के लेखक थे। उनके निबन्ध यद्यपि भावात्मक होते थे परन्तु उनमें व्यंग्य और हास्य की मात्रा भी पर्याप्त रहती थी। 'कुआर के दस दिन', 'पंच महाराज', 'मिडिल क्लास की परीक्षा', 'ईश्वर भी क्या ठठोल है', 'भकुआ कौन कौन है', 'परिश्रम', 'माँगा रोटी मिला पत्थर', 'आँसू' 'चन्द्रोदय', 'बातचीत', तथा 'नीयत', आदि उनके उल्लेखनीय भावात्मक निबन्ध हैं जिन्होंने हिन्दी निबन्ध-साहित्य में अग्रदूत का कार्य किया।

भारतेन्दु युग के उज्ज्वल रत्न श्री पं० प्रताप नारायण मिश्र का हिन्दी निबन्ध साहित्य में महत्वपूर्ण कलात्मक सहयोग है। भट्ट जी की भाँति मिश्र जी भी एक भावुक कलाकार थे। आपके भावात्मक निबन्ध हमारे साहित्य के लिये एक देन हैं। मिश्रजी भारतेन्दु बाबू के पत्र 'कवि-वचन सुधा' में प्रकाशित निबन्धों से बहुत प्रभावित थे। उनके स्वभाव और फक्कड़पन की प्रतिच्छाया उनके निबन्ध साहित्य पर भली-भाँति पड़ी है। अपने 'ब्राह्मण' में मिश्रजी सामाजिक, राजनैतिक आदि विषयों पर लेख लिखा करते थे। 'भौ' 'जवानी की सैर', 'मरे को मारै शाहमदार', 'इसे रोना समझो चाहे गाना', 'शिवमूर्ति' आदि इनके भावात्मक निबन्ध उच्चकोटि के हैं।

अन्य भावात्मक निबन्धकारों में पं० माधव प्रसाद, सरदार पूर्णसिंह, पं० पद्मसिंह शर्मा, श्री वियोगी हरि तथा रायकृष्णदास का उल्लेख भी आवश्यक है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतेन्दु-युग में भावात्मक निबन्धों के अतिरिक्त विचारात्मक वर्णनात्मक, विवरणात्मक निबन्धों की रचना भी हुई।

विचारात्मक निबन्धकारों में 'प्रेमघन', पं० अम्बिकादत्त व्यास पं० गोविन्दनारायण मिश्र तथा वर्णनात्मक निबन्धकारों में अग्रदूत बाबू बालमुकुन्द गुप्त हैं।

सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ-साथ लेखकों ने जीवन के विविध अंगो पर लेखनी उठाई। पं० माधव मिश्र ने होली, रामलीला, व्यासपूजा आदि हिन्दू धर्म के त्यौहारों पर निबन्ध लिखे। आचार्य शुक्ल जी ने क्रोध, ग्लानि, श्रद्धा आदि मनोभावों पर लेखनी उठाई और साथ ही 'कविता क्या है', जैसे गम्भीर विचारात्मक विषयों पर भी निबन्धों की रचना की। कृष्ण-बल्देव वर्मा ने 'बुन्देल खण्ड पर्यटन', चतुर्भुज औदीच्य ने 'कवित्व', यशोदा नन्दन अखौरी ने 'इत्यादि की आत्म-कहानी', चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने 'मारेसि मोहिं कुठाईं' आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'आकाश की निराधार स्थिति', पूर्णसिंह ने 'कन्यादान' आदि अनेक प्रकार के निबन्ध लिखे।

निबन्ध साहित्य का विकास चरित्रांकन के रूप में भी हुआ यथा 'इत्यादि की आत्म कहानी', 'दीपक देव का आत्मचरित्र' इत्यादि।

हिन्दी के द्वितीय उत्थान और तृतीय उत्थान में बाबू श्याम सुन्दर-दास, आचार्य मिश्रबन्धु, ठाकुर जगमोहन सिंह, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जयशंकरप्रसाद, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, इलाचन्द्र जोशी, नलिनी मोहन सान्याल, कृष्ण बल्देव वर्मा इत्यादि ने निबन्ध-साहित्य में सराहनीय रचनात्मक कार्य किया।

वर्तमान काल में बाबू गुलाबराय, डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पं० नन्ददुलारे बाजपेयी, शांति प्रिय द्विवेदी, रामचन्द्र वर्मा, डा० राम-कुमार वर्मा, डा० केसरी नारायण शुक्ल तथा शम्भुप्रसाद बहुगुना इत्यादि निबन्ध साहित्य के सफल रचयिता हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पूर्व हिन्दी में अधिक से अधिक एक दर्जन नाटकों की रचना हुई थी। परन्तु उनमें नाटकीय तत्वों का नितांत अभाव था। भारतेन्दु जी के पिता ने एक मौलिक नाटक की रचना की थी परन्तु उसे पूर्ण कृति कहना नाट्य कला के साथ अन्याय और अत्याचार करना होगा।

नाटक

संवत् १९३० में भारतेंदु जी ने न केवल अपना पहला, वरन् हिन्दी साहित्य का प्रथम मौलिक नाटक लिखा। भारतेंदु जी के इस नाटक का नाम 'वैदकी हिंसा हिंसा न भवति' है। इसके अनन्तर उनके 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी', 'नीलदेवी', 'प्रेमयोगिनी' इत्यादि नाटक प्रकाश में आये। भारतेन्दु बाबू के समकालीन दिल्ली निवासी श्रीनिवास दास ने 'रणधीर-प्रेममोहिनी', 'संयोगिता-स्वयम्बर', 'तप्त संवरण' नामक तीन नाटकों की रचना की। इसी समय पं० बदरी नारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' ने 'भारत सौभाग्य' नाटक की रचना की और पं० प्रताप नारायण मिश्र ने 'गो संकट' तथा 'कलि कौतुक' आदि नाटकों की रचना की।

भारतेन्दु-युग में नाटकों की बाढ़ आ गई। उस समय शायद ही कोई ऐसा साहित्यिक रुचि का मनुष्य रहा हो जिसकी नाट्यकला से रुचि न रही हो अथवा जिसने स्वयं नाटकों की रचना न की हो। इस जाग्रति के प्रवर्तक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र थे। उन्हीं की प्रेरणा का यह फल है कि भारतेन्दु-युग के नाटकों द्वारा साहित्य के अभाव की पूर्ति की जा सकी। भारतेन्दु युग के अंतिम वर्षों में बाबू राधाकृष्णदास ने 'महाराणा प्रतापसिंह', 'महारानी पदुमावती' तथा 'दुःखिनी बाला' नाटकों की रचना की। भारतेन्दु-युग के सफल नाटककारों में बाबू राधाकृष्ण दास का प्रतिष्ठित स्थान है।

नाटक और रंग-मंच के द्वारा हिन्दी का अच्छा प्रचार हुआ। भारतेन्दु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जी, पं० प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि प्रतिष्ठित कुलवान् साहित्यिक केवल हिन्दी की उन्नति के हेतु रंग-मंच पर उतरते थे।

भारतेन्दु-युग के पश्चात् नाटक रचना की गति धीमी पड़ गई। जनता को उपन्यास का काल्पनिक तथा कौतूहलपूर्ण जगत अधिक रमणीय प्रतीत हुआ। उस युग के पश्चात् कुछ समय तक अनुवादित नाटकों का अधिकार रहा। पं० सत्यनारायण कविरत्न ने भवभूति के उत्तर रामचरित तथा मालती माधव के अनुवाद किये। लाला सीताराम ने नागानन्द, मृच्छकटिक, महावीर चरित, उत्तर रामचरित, मालती माधव, मालविकाग्निमित्र, इत्यादि का संस्कृत से अनुवाद किया। पुरोहित गोपीनाथ जी ने 'रोमियो जूलियट' का हिन्दी में अनुवाद किया। इसी समय के अन्तिम वर्षों में पं० रूपनारायण पांडे तथा रामकृष्ण वर्मा ने द्विजेन्द्रलाल राय के कई नाटकों का अनुवाद किया।

इनके अतिरिक्त राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' पं० नारायण प्रसाद 'बेताब' तथा पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने कुछ मौलिक नाटक भी लिखे परन्तु उनमें नाट्य-कला का पूर्ण विकास नहीं मिलता।

नारायण प्रसाद बेताब, पं० राधेश्याम कथावाचक, पं० हरिकृष्ण जौहर तथा आगा हश्र इत्यादि की रचनाएँ पारसी नाट्य-कला से बहुत प्रभावित थीं। साथ ही साथ वे साहित्यिक लक्ष्य से लिखी भी नहीं गई थीं, इसी कारण उनका विशेष उल्लेख नहीं हो सका।

द्विवेदी-युग के अन्तिम समय में भी 'जयशंकर प्रसाद' नवीन तथा मौलिक आदर्शों को लेकर नाट्य-कला की ओर अग्रसर हुये। प्रसाद जी ने अपमी प्रतिभा के बल पर प्राच्य और पाश्चात्य नाट्य शैली के सम्मिश्रण से एक नवीन शैली को जन्म दिया। उनकी शैली में पुरानी और नई शैली का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है।

प्रसाद जी के नाटकों की वस्तु ऐतिहासिक अथवा पौराणिक ही होती है। पुराणों की बात को इन्होंने नवीन दृष्टि से देखा है। इनका 'नागयज्ञ' इसका ज्वलंत उदाहरण है। इनके चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, अजातशत्रु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाटकों में इतिहास की तगड़ी पृष्ठभूमि है और सबसे बड़े संतोष का विषय यह है कि उनमें अपने काल की रीति, सामाजिक संस्करण तथा कार्य-कलाप का वही चित्रण है, जो स्वाभाविक तथा उचित है। श्री जयशंकर 'प्रसाद' हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं।

प्रसाद जी के पश्चात् उग्र जी, गोविंदवल्लभपंत, माखनलाल चतुर्वेदी, पं० बदरीनाथ भट्ट, पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, श्री मिलिन्द, सुदर्शन जी० पी० श्रीवास्तव इत्यादि नाटककार भी हुए परन्तु उनमें नाटक-कला का वह परिपाक नहीं, जो प्रसाद जी के सभी नाटकों में सुलभ है।

समय के अनुसार साहित्य में भी परिवर्तन होता रहता है। सन् १८५७ ई० की जाग्रति से पूर्णरूपेण प्रकट हो जाता है कि जनता को रीतिकालीन कविता ग्राह्य न थी। सौंदर्यपूर्ण तथा अलंकारमयी कविता धीरे-धीरे अपना प्रभाव खोने लगी और उसके स्थान पर नवीन चेतना युक्त, यथार्थवाद की सहायता लेकर साहित्य में नवीन कविता का सृजन होने लगा। इस कविता का मुख्य ध्येय था यथार्थ चित्रण। जनता की करुण दशा का पूर्ण रूप से चित्रण होता था। भारतेन्दु युग में इस प्रकार के काव्य का अधिक सृजन हुआ है।

भारतेन्दु-युग में कवि जनता के अधिक सम्पर्क में आये। रीतिकाल में कवि जनता से अधिक दूर रहे थे। उन्हें अपने आश्रयदाताओं के गुणगान तक ही सीमित रहना पड़ा। भारतेन्दु-युग के लेखकों का आदर्श था भावानुभूति की सचाई। इस युग में समाज तथा देशगत सभी अवस्थाओं का पूर्ण तथा यथार्थ चित्रण हुआ है। कवि तथा अन्य लेखक मूक जनता के भावों को व्यक्त करने में सफल रहे हैं।

रीतिकालीन कवियों को लोकसत्ता महत्वहीन थी पर भारतेन्दु-युग के लेखकों तथा कवियों का जनता के भावों में अवगाहन करना ही ध्येय था। कवियों को परितोष की इच्छा न थी, उन्हें जनता से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रशंसा की आशा थी। संक्षेप में यों कहना चाहिये कि कवियों का उत्तरदायित्व अब जनता के प्रति था। प्रजातंत्रात्मक विचारों ने कवियों को अपने चारों ओर की परिस्थितियों का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कराया। इस यथार्थवादिता ने जीवन में घनिष्टता बढ़ाई। भारतेन्दु-युग का यह परिवर्तन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यह प्रजातंत्रात्मक विचार केवल राजनीतिक विचारों के कारण ही न था वरन् देशवासियों की नव जागरित चेतना का विशद तथा प्रकाश्य रूप था। समग्र देश में जाग्रति की लहर दिखाई देती थी। जनता के समक्ष नवीन धार्मिक तथा सामाजिक समस्यायें खड़ी हो गईं। आर्य समाज का आन्दोलन हिन्दुओं की धार्मिक कुप्रथाओं का तीव्र रूप से प्रतिवाद स्वरूप था।

भारतीय इतिहास की यह आश्चर्यपूर्ण घटना है कि राजनैतिक परिवर्तन सदा धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का अनुगामी रहा है। हिन्दुओं के सामाजिक एवं धार्मिक पुनरुत्थान से ही भारत के आधुनिक राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ है। इस प्रकार भारतेन्दु युग के सामाजिक आन्दोलन जनता की राजनीतिक चेतना के अग्रदूत थे। एक बार जो सुधार की भावना उत्पन्न हुई थी वह जीवन के सभी अंगों पर छा गई। देश की भावना तथा विचारों में अत्यन्त परिवर्तन हो रहे थे। साहित्य में इसकी झलक मिलना स्वाभाविक ही है। अब शृंगार के गीतों से साहित्य सन्तुष्ट नहीं था। सामाजिक विचारों से अभिनव काव्य का निर्माण हुआ।

हिन्दी काव्य तथा साहित्य के नव निर्माण का सारा श्रेय भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र को है। इनके तथा इनके सहयोगियों के कठिन परिश्रम से कविता जनता की वाणी बनी। जीवन तथा साहित्य का सम्बन्ध जो रीतिकाव्य में शिथिल हो चला था, उसमें भारतेंदुजी ने फिर से घनिष्टता लाने का प्रयत्न किया और उन्हें इस कार्य में सफलता प्राप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुई। इस युग की कविता में देश की समस्या तथा निवासियों की भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

भारतेन्दु के आगमन के पूर्व साहित्य रीतिकाल की परम्परा का ही अनुसरण कर रहा था। इस समय प्रभावशाली व्यक्तित्व की आवश्यकता थी, जो साहित्य में नव जीवन का संचार कर सकता। भारतेंदु ऐसी ही प्रतिभा के मनुष्य थे। इन्होंने कविता में प्राचीन रूढ़ियों को हटाया और नवीनता का संचार किया।

शिक्षित जनता की मनोवृत्ति के परिवर्तन का श्रेय बाबू हरिश्चन्द्र को ही है। शिक्षित जनसमुदाय का पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करना ही ध्येय रह गया था। अपने गौरव को भूलकर पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोग भारतीय संस्कृति को हीन दृष्टि से देखते थे। अशिक्षित जनसमुदाय 'ईसाई मिशनरों' द्वारा धर्म से च्युत किये जाते थे। इस प्रकार शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों ही हीनावस्था को प्राप्त थे।

भारतेंदु ने इस समय अनुकूल और गुणकारी प्रयोग का विनियोग किया। उन्होंने अपनी रचना में भारत के अतीत गौरव के सुन्दर चित्र खींचे और जनता को भारत के गौरव-पूर्ण इतिहास की ओर उन्मुख किया उन्होंने अपनी कविता द्वारा समाज की कुरीतियों को हटाने का प्रयत्न किया। हर्ष है कि वह अपने प्रयत्न में सफल रहे। उनकी राजनीतिक कविता ने उसमें अच्छी राजनीतिक चेतना जागरित की। भारतेन्दु बाबू तथा उनके सहयोगियों ने भारत की जनता को उसके गौरव की ओर संकेत करके प्रदर्शित किया कि वह किसी प्रकार हीन नहीं है।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र की कविता में सर्वप्रथम परिवर्तन के संकेत मिलते हैं। अन्य कवियों ने इन्हीं से उत्साह प्राप्त किया। इस प्रकार कवियों का एक नवीन समुदाय स्थापित हुआ। इसे "भारतेन्दु मण्डल" कहा जा सकता है। इस मण्डल का कविताकाल आधुनिक काव्यधारा का 'प्रथम उत्थान' कहा जाता है। 'प्रथम उत्थान' का काल विस्तार ई० संवत् १५६५ से १९०० तक माना जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आधुनिक काव्यधारा का यह समय 'भारतेंदु-युग' के नाम से विख्यात है। इसका यह नाम विवेचनात्मक दृष्टि से उपयुक्त ही ज्ञात होता है। भारतेन्दु बाबू ही सदियों की जमी हुई मोह निद्रा को हटाने में समर्थ हुए थे। इन्होंने ही काव्य में सर्वप्रथम नवीन विचारों का समावेश किया था। जनता में देशभक्ति का संचार करने का भी श्रेय इन्हीं को है। भारतेन्दु बाबू ने ही आगे बढ़ कर जीवन तथा साहित्य के टूटे संबंध-सूत्र को फिर से जोड़ा है। साहित्य पर भारतेन्दु का व्यापक प्रभाव पड़ा है। समस्त कवियों को भारतेन्दु से उत्साह मिलता रहा है।

प्रश्न हो सकता है कि इन परिवर्तनों का कारण क्या है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस युग की जाग्रति का कारण अँग्रेजी शिक्षा का प्रसार है। कतिपय मनीषियों का विचार है कि इन परिवर्तनों के कारण सामाजिक आन्दोलन हैं जो पूर्णतया भारतीय थे।

सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक समस्या ऐसी संवादिनी है कि एक पर उँगली रखते ही दूसरे के तार स्वतः झंकृत हो जाते हैं। किसी एक समस्या को सुलझा लेना असंभव सा ज्ञात होता है। सामाजिक समस्या सुलझाते समय आर्थिक कठिनाई हमारे ध्यान को बरबस खींच लेती है और तत्पश्चात् राजनीतिक समस्या की ओर उन्मुख कर देती है।

इसमें संदेह नहीं कि अँग्रेजी शासन तथा शिक्षा का सहयोग इन परिवर्तनों में रहा है। उपर्युक्त तत्वों से अवगत हो जाने पर नवीन हिंदी काव्य की आधुनिकता के समझने में अधिक सहायता मिलेगी। देश में नवीन व्यवस्था की प्रतिष्ठा हुई और नवीन कविता ने उसकी अभिव्यंजना की। फलतः हमारी राजनीतिक चेतना तथा सामाजिक मनोदृष्टि अधिक व्यापक तथा उदार बन गई है।

भारतेन्दु-युग के काव्य की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति एकनिष्ठ सत्ता से लोकनिष्ठ सत्ता की ओर झुकना है। इस समय के कवियों ने कल्पना जगत को छोड़कर वास्तविक जीवन की अभिव्यञ्जना की है।

इस युग के काव्य में राजनीतिक तत्व की प्रमुखता नवीन वस्तु है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह राजनीतिकता का आरम्भ राजभक्ति से उठकर धीरे-धीरे देशभक्ति में परिणित हुआ।

प्रथम उत्थान की आधुनिकता केवल विचारों की मौलिकता में है। कविता का माध्यम—भाषा तथा छन्द पुराने ढंग का ही था। उस समय देश के जीवन तथा परिस्थिति में परिवर्तन का आरम्भ हुआ था। यह नवीनता इतनी व्यापक न थी कि प्राचीनता का निराकरण कर देती। इसलिये कहा जा सकता है कि इस युग में प्राचीन तथा नवीन परम्परा का सम्मिश्रण था।

विविध प्रवृत्तियों के बीच में हमें प्रथम उत्थान से जिस महत्वपूर्ण लक्षण का आभास होता है वह है सामंजस्य की भावना। इस समय के कवि नवीनता का स्वागत अवश्य कर रहे थे, पर प्राचीनता को अपदस्थ भी नहीं करते थे। सामंजस्य की इस भावना के कारण प्रथम उत्थान की कविता में राजभक्ति, देशभक्ति, कट्टरता तथा उदारत के दर्शन साथ-साथ होते हैं। संक्रान्ति युग के कारण सामंजस्य की भावना स्वाभाविक ही है।

आधुनिक काव्यधारा के प्रथम उत्थान की इन प्रवृत्तियों में सर्वप्रथम राजनीतिक चेतना का वर्णन करना उपयुक्त होगा। क्योंकि यह भारतेन्दु-युग की प्रधान प्रवृत्ति है।

राजनीतिक चेतना

सन् १८५७ के विप्लव का भारत में बड़ा प्रभाव पड़ा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से शासन की बागडोर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने अपने हाथ में ले लिया था। विक्टोरिया की घोषणा का जनता ने अभिनन्दन किया। देशवासियों को पूर्ण विश्वास हो गया कि घोषणा के वचन पूरे होंगे। अतः जनता आशान्वित होकर राजनीतिक सुविधाओं के स्वप्न देखने लगी। उक्त उत्साह, आशा तथा उत्सुकता भारतेन्दु-युग की राजनीतिक चेतना के आरम्भिक रूप के अन्तर्गत है।

जनता की इस राजनीतिक उत्सुकता को भारतेन्दु-युग के कवियों ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बराबर सजीव बनाए रखा। प्रायः सभी प्रमुख पत्रिकाओं में उपयोगी लेख लेखकों द्वारा निकाले जाते थे। देश की जाग्रति में इन पत्रिकाओं का विशेष योग रहा है। ये लेखक राजनीतिक जीवन में पत्रकार के नाते प्रवृत्त हुये थे पर साथ ही साथ इनका कवि रूप भी था, जिससे इनका कार्य और भी महत्वपूर्ण हो गया था। उपयुक्त अवसरों पर जनता के भावोन्मुख होने पर, ये कवि कविताएँ लिखा करते थे। विक्टोरिया की जयन्ती, वायसराय, ड्यूक और गवर्नरों के आगमन पर इन्हें अनेक उपयुक्त अवसर मिलते रहे हैं। इन अवसरों की कविता जनता के भावों से सम्बन्धित रहती थी और साथ ही साथ पूर्णरूप से प्रभावित भी करती थी।

इन रचनाओं में देशभक्ति के स्वर झंकृत होते थे। इस प्रकार जनता में राजनीतिक चेतना के प्रसार का प्रयास किया जा रहा था। इस चेतना का प्रथम स्पष्ट रूप शासक तथा उसके प्रतिनिधियों के प्रति राजभक्ति का प्रदर्शन था। इस समय की कविताएँ राजभक्ति से ओत-प्रोत थीं। भारतेन्दु रचित 'भारत भिक्षा', 'भारत वीरत्व', 'विजयवल्लरी', तथा 'विजयनी विजय-वैजयन्ती' में राजभक्ति और कृतज्ञता के उद्घाटन हैं। 'प्रेमघन', के 'आर्याभिनन्दन', 'भारत बधाई' तथा अम्बिकादत्त व्यास का 'देवपुरुष दृश्य' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। आज हमें ऐसी राजभक्तिपूर्ण उक्तियाँ खटकती हैं। पर यह उद्गार स्वाभाविक है। जनता सन् सत्तावन के विप्लवमय वातावरण से ऊब उठी थी। उसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन से घृणा होने लगी थी। देशवासियों ने विक्टोरिया के राजकीय घोषणा का हृदय से स्वागत किया। जनता को विश्वास था कि घोषणा के वचन पूरे किये जायँगे। यद्यपि युग के अन्तिम वर्षों में इन कवियों में असन्तोष की लहर उठने लगी थी तथापि अपनी आशाओं की विफलता के चटकीले दृश्यों से इनकी दृष्टि दूर थी, इसलिये ये राजभक्तिपूर्ण उक्तियाँ केवल चाटुकारिता नहीं कही जा सकतीं। इनमें देशवासियों की सच्ची भावना की अनुभूति की झलक दिखाई देती है।

भारतेन्दु-युग के कवि 'अंग्रेजराज' को 'ईश कृपा' का फल मानते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। हरिश्चन्द्र तथा 'प्रेमघन' देशवासियों को उन्नति के लिये सचेत करते हैं। राजभक्त तथा शासन प्रशंसक होते हुये ये कवि देश की स्थिति से भली प्रकार परिचित थे। देशवासियों की दशा इन कवियों को क्षुब्ध बनाये रहती थी। देश की दरिद्रता, कर का अधिक लादना इत्यादि कवियों को असन्तुष्ट बनाये हुए थे। इन कवियों ने शासन के अभावों की आलोचना भी की है।

इस आलोचना के मूल में राजनीतिक चेतना का प्रसार स्पष्ट लक्षित होता है। ये कवि स्वतन्त्र ब्रिटेन की पराधीन भारत से तुलना करते थे और भारत की हीनावस्था पर असन्तोष प्रकट करते थे। हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को प्रेस ऐक्ट तथा आर्म्स ऐक्ट से असन्तुष्ट पाते हैं। शासकों ने भारतीय जनता की प्रार्थनाओं पर कान न दिया फलतः असन्तोष की भावना बढ़ती गयी।

बालमुकन्द गुप्त—जो भारतेन्दु-युग के अन्तिम तथा द्विवेदी युग के आदि कवि थे—उनकी कविता में हमें असन्तोष की इस भावना के दर्शन होते हैं।

द्विवेदी-युग में भारतेन्दु-युग के असन्तोष को संक्षिप्त कर उसे आंदोलन का रूप देने की चेष्टा की गई और आगे चलकर वही असन्तोष देश-भक्ति में परिवर्तित हो विदेशी शासन से देश की स्वतन्त्रता के लिये मोरचा ले रहा था। कांग्रेस की स्थापना से जनता के समक्ष कुछ ध्येय तथा निश्चित आदर्श आये। कांग्रेस की स्थापना प्रेमघन के अन्तिम काल में हुई थी। बालमुकुन्द गुप्त कांग्रेस के आन्दोलन के समर्थक थे। उन्होंने लार्ड कर्जन पर बहुत सी व्यंगपूर्ण राजनीतिक रचनाएँ की हैं।

भारतेन्दु-युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जाग्रति दृष्टिगोचर होती है। जीवन और साहित्य के क्षेत्र में व्यापकता और उदार भावना समान रूप से भारतेन्दु और उनके समकालीनों ने

आर्थिक स्थिति

देश की आर्थिक पराधीनता को दूर करने का महान् प्रयत्न किया। इस काल के कवियों के लक्ष्य बड़े

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विस्तृत थे परन्तु सबके अन्त और मूल में देशोन्नति का भाव निहित था। देशवासियों की आर्थिक उन्नति भी इनका ध्येय था। इसीलिये इस युग के कवि जनता को औद्योगिक काम सीखने के हेतु प्रोत्साहित करते थे। भारतेन्दु जी का स्वयं यही कहना था कि पठनपाठन का सम्बन्ध पेट पालन से न होकर यदि ज्ञान वृद्धि से हो तो कल्याणकारी होगा।

भारतीय वस्तुओं की उपेक्षा और विदेशी वस्तुओं से प्रेम देखकर इस समय के कवि चिन्तित हो उठते थे और उन व्यंग बाणों की वर्षा करने लगते थे। समय के साथ ही साथ इस युग के कवियों की सहानुभूति अधिक व्यापक हो गई थी। श्रमजीवी किसान-मजदूरों तथा इसी प्रकार के अन्य वर्गों के साथ भी इनकी सहानुभूति हो गई थी।

सर्वप्रथम भारतेन्दु बाबू को आर्थिक उन्नति की आवश्यकता प्रतीत हुई। प्रयत्नशील होने पर भी साधन न दिखाई दिया। अतः अन्त में परिस्थिति से निराश होकर भारतेन्दु ईश्वर-सहायता की याचना करते थे। (भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ० ६८४)।

'प्रेमघन' अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त आदि सभी ने तो देश की आर्थिक दशा के करुण चित्र खींचे थे और उसकी उन्नति के हेतु प्रयत्नशील हुए थे।

देशभक्ति की भावना

कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारतेन्दु-युग में देश-भक्ति की भावना अत्यन्त प्रबल तथा उत्कर्ष पर थी। वे 'सुराज्य' दोनों के अभिलाषी थे।

भारतेन्दु की देश-भक्ति की अधिकांश रचनाओं में भारत के अतीत गौरव की ओर संकेत है। भारत के विगत महापुरुष का चित्रण करके वर्तमान दुर्दशा की ओर संकेत इस बात का द्योतक है कि वे अपनी दशा से कितने असंतुष्ट थे। राधाकृष्णदास, अम्बिकादत्त व्यास इत्यादि ने भारत के प्राचीन रत्नों की याद करके आँसू बहाए थे।

१८५७ का विप्लव भारतीय इतिहास और संस्कृति के लिए बड़ी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सामाजिक तथा धार्मिक भावना महत्वपूर्ण घटना है। इस विप्लव ने हमारे राज-नैतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक जीवन में क्रान्ति समुपस्थित कर दी।

अंग्रेजी शिक्षा तथा स्वामी दयानन्द के प्रभाव ने सामाजिक परिस्थितियों में क्रान्ति का समावेश कर दिया। हिन्दी-काव्य स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के प्रभाव से न बच सका। इस समय की कविता में सामाजिक सुधार की भावना प्रत्यक्ष स्पष्ट होती है। प्रायः सभी कवि इस भावना से प्रभावित दिखाई देते हैं।

राधाचरण गोस्वामी को केवल समाज की अधोगति ही दिखाई पड़ती है और इस. दुर्दशा का कारण वे भारत के दुर्भाग्य को ठहराते हैं। विधवा-विवाह जैसे सुधारों के यद्यपि वे विरोधी थे परन्तु, फिर भी उन्नति के आकांक्षी थे।

बालमुकुन्द गुप्त को वर्णाश्रम धर्म की अवहेलना बहुत खटकती थी। वे उनसे अत्यन्त असंतुष्ट थे जो इस प्रकार की सुधार भावना से युक्त थे। गुप्त जी भी विधवा-विवाह तथा स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध थे।

परन्तु भारतेन्दु जी सुधारवादी, उदार भावना प्रधान साहित्यिक थे। भारतेन्दु जी स्त्री शिक्षा, विधवा-विवाह इत्यादि के समर्थक थे और प्रेमघन भी इसी भावना के सहायक थे। उन्होंने समाज के दोषों को दूर करने के लिए जनता से प्रार्थना तक की है।—प्रतापनारायण मिश्र स्वयं कान्यकुब्ज थे फिर भी उन्हें कान्यकुब्जों की विधवाओं से सहानुभूति थी।

पश्चिम की आँधी को उस युग के साहित्यिक बड़ी सन्देह की दृष्टि से देखते थे।

द्वितीय उत्थान

भारतेन्दु-युग अथवा दूसरे शब्दों में प्राचीन आवरण में नवीन कविता का युग समाप्त हो चुका है। वह आन्दोलन साहित्यसेवियों के उस दल के द्वारा प्रारम्भ हुआ जो साहित्य क्षेत्र में दो भाषाओं का उपयोग समीचीन नहीं समझता था। यह दल पद्य की भाषा को हटा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर खड़ी बोली को अपनाना चाहता था। ऐसी दशा में वाद-विवाद होना आरम्भ हुआ जिसमें श्रीधर पाठक, पं० प्रताप नारायण जी मिश्र और श्री राधाचरण गोस्वामी ऐसे व्यक्तियों ने साथ दिया। जब खड़ी बोली पद्य भाषा में परिणत की गयी तभी से नवीन कविता में नूतन उत्थान का आरम्भ होता है; इसे द्वितीय उत्थान कहा जा सकता है।

द्वितीय उत्थान में ही हिन्दी के कवियों ने कविता में खड़ी बोली का प्रयोग करना शुरू किया। इस समय के कवि खड़ी बोली को काव्य-भाषा बनाने में सफल रहे। ब्रजभाषा के प्रेमियों का कथन है कि काव्य के क्षेत्र में खड़ी बोली असफल होगी। यह मानने योग्य नहीं था; क्योंकि ये कवि इसे मिथ्या प्रमाणित करना चाहते थे।

आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस सम्बन्ध में सबसे अधिक कार्य किया। आपने भाषा की स्थिरता प्रदान की। साथ ही साथ लोगों को व्याकरणसम्बन्धी और मुहावरेदार भाषा लिखने के लिये उत्साहित किया। हिन्दी-क्षेत्र में द्विवेदी जी भाषा की व्यवस्था और श्री वृद्धि के लिये प्रसिद्ध हैं। गद्य तथा पद्य की भाषा का भेद कम करने का इनका विशेष आग्रह था। इसी से तो कल्पना तथा सांकेतिकता दोनों का लोप हो गया। अभिव्यंजना को प्राचीन प्रणाली से नवीन भाषा में कुछ भी सरसता न आई। इससे यह हुआ कि कविता इतिवृत्तात्मक हो गई।

इस समय कवियों ने संतोष, आशा, साहस, दृढ़ता आदि विषयों पर कविता लिखना आरम्भ किया। इन रचनाओं की प्रवृत्ति विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक है। इसका सबसे बड़ा दोष कल्पना का अभाव है। इस प्रकार हमें भाषा और भाव दोनों ही रूखे प्रतीत होते हैं। ऐसी दशा में पाठकों की हिन्दी कविता में भी मुक्तक गीतों की सांकेतिकता की इच्छा अत्यन्त स्वाभाविक थी। वे कोरे पद्य-निबन्ध के स्थान पर वास्तविक कविता चाहते थे। उनकी साहित्यिक भावनायें अत्यन्त उच्च थीं और वे हिन्दी में भी उनका समावेश चाहते थे।

द्वितीय उत्थान के आरम्भिक वर्षों की कविता वर्णनात्मक तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आख्यानात्मक दोनों ही हैं। कवियों ने राजा रवि वर्मा जी के सरस्वती में प्रकाशित चित्र के आधार पर कवित्तों की रचना की। इसी प्रकार 'सुकेशी', 'वसन्त सेना', 'राधाकृष्ण' आदि चित्रों पर सौंदर्यपूर्ण रचनाएँ हुईं। 'प्रिय प्रवास' में राधा और कृष्ण परम्परा से प्राप्त प्रेमिका और प्रेमी के रूप में नहीं चित्रित किये गये। कृष्ण केवल राधा के प्रेमी न बनकर देश के महान् नेता के रूप में उपस्थित किये गये और साथ ही साथ इनके दैवी कार्यों का बौद्धिक समाधान किया गया।

इस उत्थान के कवि मानवतावादी हैं। इनकी दृष्टि अत्यंत व्यापक तथा उदार है और ये सत्य तथा न्याय-समर्थक हैं। ये सामाजिक और राजनीतिक दासता तथा धार्मिक सांप्रदायिकता की समान रूप से कड़ी आलोचना करते हैं। द्वितीय उत्थान की परिस्थिति भी परिवर्तित है। इस काल में कवियों की मनोवृत्ति भी बदली हुई है। देश के सम्बन्ध में हरिश्चन्द्र की नैराश्यपूर्ण मनोदृष्टि इस समय लुप्त सी हो चुकी है। द्वितीय उत्थान में यहाँ से वहाँ तक आशा की लहर दौड़ती है। यह मैथिलीशरण जी के दृढ़ विश्वास और सतत उद्योग का परिणाम है; आपका विश्वास है कि सत्य पर अटल रहने से ही विजय होती है।

जैसा पहिले कहा जा चुका है, काव्य-क्षेत्र में खड़ी बोली का विकास सन् १९०० में सरस्वती पत्रिका के जन्म से ही आरम्भ होता है।

भारतेन्दु-युग में साहित्य की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। काव्य के साथ गद्य की उन्नति इसी समय हुई। गद्य की भाषा खड़ी बोली थी। पत्र-पत्रिकाओं के कारण गद्य की और भी अधिक उन्नति हुई। गद्य की उन्नति के साथ ही साथ खड़ी बोली का प्रचार और परिष्कार हुआ। भारतेन्दु-युग के अन्तिम वर्षों में खड़ी बोली का भी प्रयोग ब्रजभाषा के साथ प्रचलित हो चुका था।

भाषा की समस्या

सन् १८८७ में बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली की कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित किया। ब्रजभाषा प्रेमियों को खड़ी बोली आन्दोलन रुचिकर न प्रतीत हुआ। प्रतापनारायण मिश्र तथा राधा-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चरण गोस्वामी ने इसका बड़ा विरोध किया। हरिश्चन्द्र भी यद्यपि विरोधी न थे पर समर्थक व्रजभाषा के ही थे परन्तु विरोध में खड़ी बोली की प्रगति में बाधा उपस्थित नहीं की। खड़ी बोली में लगातार काव्य-रचनाएँ होती ही रहीं।

छन्द की समस्या

व्रजभाषा के समर्थक प्रतापनारायण मिश्र आदि के पत्रों को ध्यान पूर्वक पढ़ने से प्रतीत होता है कि इन कवियों का खड़ी बोली के विरोध का कारण छन्द भी था। इनकी यह धारणा थी कि खड़ी बोली हिन्दी और संस्कृत छन्दों में उपयुक्त नहीं है, वरन् उर्दू फारसी के छन्दों में ढाली जा सकती है। यही आशंका राधाचरण गोस्वामी को भी थी।

खड़ी बोली के लिए छन्दों का चुनाव एक गम्भीर समस्या थी। कवियों ने नये नये प्रयोग किये और विभिन्न छन्दों में खड़ी बोली को ढाल कर उसके सौन्दर्य की अभिवृद्धि की। श्रीधर पाठक ने अपने भावों को भिन्न-भिन्न छन्दों में अभिव्यक्त किया। इन्होंने लावनी छन्दों का प्रयोग आरम्भ किया। परन्तु इसका प्रयोग भारतेन्दु-युग में भी हो चुका था। उर्दू छन्दों का प्रयोग करने वालों में 'सनेही' तथा लाला भगवान-दीन मुख्य हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृत वृत्तों को लोकप्रिय बनाया। 'पूर्ण', मैथिलीशरण गुप्त तथा रूपनारायण पांडे ने भी द्विवेदी जी का अनुकरण किया और सबसे अधिक सफलता 'हरिऔध' को 'प्रिय' प्रवास' की रचना में प्राप्त हुई।

सामाजिक कविता

द्वितीय उत्थान के कवि सामाजिक जीवन से विमुख नहीं थे। सामाजिक सुधार में उस युग के कवियों की वाणी सदैव निरत थी।

इसमें सन्देह नहीं है कि द्विवेदी युग में भारतेन्दु-युग से कुछ भिन्न परिस्थितियाँ थीं। सुधार के विषय वे ही थे जो भारतेन्दु युग में थे।

श्रीधर पाठक विधवा-समस्या पर विशेष चिंतित थे और गुप्त जी अछूतों से भी सहानुभूति रखनेवाले कवियों में 'अग्रगामी' थे। हरिऔध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिलक चंदन की आलोचना करते हुए (सरस्वती १९१६) सुधार के इतने अभिलाषी थे कि विवाह का आधार कुलीनता आवश्यक नहीं समझते थे (सरस्वती १९०८)।

नाथूराम शर्मा तो जाति-पाँति के प्रश्न को मिटा ही देना चाहते हैं (सरस्वती १९०८)। गोपालशरण सिंह भी शिक्षा के घोर पक्षपातियों में थे (सरस्वती १९०७)।

इस प्रकार रूपनारायण पांडे तथा मैथिलीशरण गुप्त भी समाज के विविध अंगों में उन्नति के आकांक्षी थे।

द्वितीय उत्थान में देश भक्ति सम्बन्धी रचना का क्षेत्र भारतेन्दु-युग की देश-भक्ति विषयक कविता से अधिक व्यापक है। इस समय कवियों का ध्यान अतीत से अधिक वर्तमान की ओर रहा। इस युग के कवि देशवासियों को मातृ-भूमि की उन्नति के लिये आमन्त्रित करते हैं और क्रांतिवादी कविता जो आगे चलकर तृतीय उत्थान में अधिक विकसित हुई, इसी युग के कवियों की देन है।

देश-भक्ति की कविता

देश-भक्त कवियों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं श्रीधर पाठक। रामनरेश त्रिपाठी को तो उस देश में जन्म लेने का अभिमान है, 'जिसके तीनों ओर महोदधि' है। गोपालशरणसिंह तथा मैथिलीशरण गुप्त भारत की दुर्दशा देखकर व्यग्र हो उठते हैं।

'पूर्ण', 'सनेही', रूपनारायण पांडे न केवल वर्तमान दुर्दशा देख कर सन्तप्त हो उठते हैं वरन् भविष्य को उज्ज्वल तथा आशायुक्त देखते हैं।

इसका उल्लेख हो चुका है कि द्वितीय उत्थान के अन्तिम वर्षों में मुक्तक गीतों की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। प्रक्रिया और भावना दोनों ही में यह प्रवृत्ति भिन्न और नवीन थी। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक शैली का विरोध भी लक्षित कराया गया है। इन गीतों का आरम्भ सन् १९१४ से होता है। स्वानुभूति निरूपक व्यक्तित्व प्रदर्शक मुक्तक गीतों की रचना

तृतीय उत्थान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्विवेदीयुग के अंत में होने लगी थी, जिनका विकास आजकल हो रहा है। वर्तमान काव्य-युग प्रधानतया मुक्तक गीतों का युग है। परन्तु, निराला, प्रसाद, रामकुमार वर्मा तथा महादेवी वर्मा ने बड़े रुचिर गीतों की रचना की है।

द्विवेदी-युग की धार्मिक कविता की उपासना तथा आत्मसमर्पण की भावना का विकास इन कवियों में नवीन ढंग से हुआ। द्विवेदी-युग की साधना तथा उपासना को आज के कवियों ने रहस्यवाद का परिधान पहना दिया है। आजकल रहस्यवाद का बड़ा चलन है। यही प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इस उत्थान में रहस्यवादी कविता लिखना एक फैशन सा बन गया और जिन्हें कविता लिखना भी न आता था वे भी कवि बन बैठे। आशंका हुई कि ऐसा न हो कि इस युग की कविता भी जीवन के क्षेत्र से दूर जा पड़े, पर कुछ देशभक्त कवियों ने इसका विरोध किया। इनमें उल्लेखनीय हैं, 'भारतीय आत्मा', 'नवीन' तथा सुभद्राकुमारी चौहान।

आज के हमारे कवियों ने काव्य विषय के लिये प्रेम को भी अपनाया और अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रेम की अभिव्यक्ति कर रहे हैं। इनकी प्रेम की कविता स्वानुभूति निरूपिणी है। परन्तु प्रेम के क्षेत्र में फँसकर, कवियों ने प्रकृति को नहीं भुला दिया। प्रेम और प्रकृति को समान रूप से हृदय से लगाने वालों में निराला, डा० रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा, नैपाली, दिनकर, नरेन्द्र तथा पन्त हैं।

वर्तमान युग मुक्तक गीतात्मक है। द्वितीय उत्थान के साथ आख्यानात्मक काव्यों का भी अन्त हो गया। इसी कारण मैथिलीशरण गुप्त सफल महाकाव्यकार न बन सके। गुरुभक्त सिंह की 'नूरजहाँ' में भी महाकाव्यत्व न आ सका। 'सिद्धार्थ' एक असफल महाकाव्य है पर प्रसाद जी की प्रतिभा ने 'कामायनी' को जन्म देकर उन्हें महाकवि सिद्ध कर दिया।

नवीन भावना और प्रक्रिया के कारण ही आज की कविता द्वितीय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu